॥ओ३म्॥

॥मातृ देवो भव॥

॥माता मदालसा॥

पूज्यपाद ब्रह्मर्षि ब्र. कृष्णादत्त जी महाराज

पूर्वजन्म के श्रृंगी ऋषि जी की आत्मा के योगमुद्रा में प्रकथित प्रवचनों से संग्रहीत

पूज्यपाद महर्षि कृष्णादत्त जी महाराज संहिता

भाग-57

संकलन-सम्पादन

डॉ. अशोक आर्य

सम्पादक- आर्यावर्त केसरी

आर्यावर्त कालोनी, अमरोहा, ज्योतिबाफुलेनगर (उ.प्र.)

सुमन कुमार 'वैदिक'

गुरुकुल आर्ष कन्या विद्यापीठ

श्रवणपुर, नजीबाबाद

बिजनौर (उ0प्र0)

'माता मदालसा'

प्रकाशकाधीन

प्रथम संस्करण संगणक संस्करण २०१६

प्रकाशक :

वैदिक अनुसंधान समिति रजि.

सी-38 शिवालिक, मालवीय नगर

नई दिल्ली-110017

मुद्रक- स्टार प्रिंटिंग प्रेस

अमरोहा, उत्तर प्रदेश

भूमिका

गृहस्थ अर्थात् परिवार की संरचना का महत्व वेद और स्मृति ग्रन्थों में बखान किया गया है। वहाँ माँ का स्थान सर्वोपरि माना गया है। 'माता निर्माता भवति'- अर्थात् माँ निर्माण करती है। क्या केवल संतान का? नहीं, केवल संस्कारित संतान का। इस निर्माण यात्र में कितने अवरोध, कितने कष्ट उसे झेलने पड़ते हैं, उन्हें वह चुपचाप झेल लेती है, सह लेती है। वह स्रोत है सर्जन और समर्पण का, अपूर्व सुख का। उस सुख की तुलना में संसार भर की सम्पदाएं व सुविधाएं नगण्य हैं। पुत्र का पालन करते हुए वह वंश-परम्परा को ही आगे नहीं बढ़ाती, सम्पूर्ण समाज की सेवा भी करती है। वह सृजन की चेतना है। संस्कार निर्माण उसका महानतम दायित्व है। सफल माँ वही होती है, जो संतान को संस्कारी बनाती है, चरित्रवान बनाती है। चरित्र सम्पन्न व्यक्ति ही समाज और राष्ट्र को गरिमा प्रदान करते हैं, क्योंकि चरित्र जीवन में शासन करने वाला तत्व है और प्रतिभा से भी ऊपर। **Character is the governing element of life and is above genius'** चरित्रवान बनने के लिए अनुशासन, विनम्रता, ईमानदारी और परोपकार की महती आवश्यकता है। वे माताएं, जो बच्चों को गर्भ में ही ब्रह्मज्ञान अर्थात मुक्ति के मार्ग पर ले जाती हैं, महान हैं। महान माताएं ही महान आत्मा का आह्वान कर सकती हैं। कहा जाता है कि बालक माँ के गर्भ में ही सीखने लगता है। माँ की जैसी वृत्तियां, भावनाएं और सुभाव हों, वैसा ही शिशु का निर्माण होता है।

उत्तम सन्तान संस्कारों से ही बनती है। वैदिक साहित्य में मानव के जीवन में सोलह संस्कारों का वर्णन आता है-

गर्भाद्या मृत्युपर्य्यन्ताः संस्काराः षोडशैव हि।

प्रथम तीन संस्कार तो शिशु के जन्म से पूर्व के ही हैं- बस यहीं से 'संस्कारित सन्तति' के निर्माण का मंगलमय प्रारम्भ होता है। स्वामी दयानन्द सरस्वती के शब्दों में 'शरीर और आत्मा सुसंस्कृत होने से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त हो सकते हैं और सन्तान अत्यन्त योग्य होती हैं, इसलिए संस्कारों का करना सब मनुष्यों को अति उचित है।' महर्षि भारद्वाज कपिल इत्यादि ऋषियों के आश्रमों में कन्याओं को शिक्षा के साथ इस प्रकार की शिक्षाएं प्रदान की जाती थीं, जिनसे माता अपने गर्भ स्थल में ही संतानां को ऊँचा बना देती थीं। इसमें माता मदालसा का स्थान सर्वोच्च है, जिसके पाँच वर्ष के पुत्र ही ब्रह्मवेत्ता बन गये। ऐसी माता मदालसा के तप का वर्णन, इस पुस्तक में पू. ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी महाराज द्वारा दिये गये प्रवचनों से संकलित किया गया है। अस्तु

गृहस्थ कुल में बालक को जन्म देने वाली माता! तू सन्तति-क्रम का विस्तार करती हुई ज्ञान के प्रकाशक प्रभु का अनुगमन कर और बुद्धि से तू उसके बनाए मार्गों को प्रकाश से युक्त रख। उपदेष्टा जनों के कभी नष्ट न होने वाले सत्कर्म को कर। तू सदैव मननशील हो और दिव्य गुण वाला पुत्र, माता मदालसा के समान तप करके उत्पन्न कर। परिवार में संस्कार की उदात्त स्थिति को बनाये रखने के लिए इतना ही कहना चाहूंगा कि घर का केन्द्र होती है माँ। उसके

कोमल, सुघड़ हाथों के संस्पर्श से घर की हर वस्तु संगीतमय हो सकती है- जब वह स्वयं संगीतमय हो, उसका जीवन लयबद्ध हो, सजग होकर माता मदालसा के समान सन्तान उत्पन्न कर। वैदिक काल से महाभारत काल तक गर्भ में सुयोग्य सन्तान के निर्माण का ज्ञान शिक्षाकाल में ही ब्रह्मचारिणियों को गुरुकुल में कराया जाता था।

महाभारत के पश्चात् वैदिक संस्कृति, सभ्यता, साहित्य पर अनवरत आक्रमण किया जाता रहा है। पराक्रमी राजाओं व विद्वान गुरूओं के न रहने से समाज में वैदिक ज्ञान का अभाव हो गया। साहित्य मे मिलावट कर नये ग्रन्थों को धर्मग्रन्थ कहकर समाज में प्रचलित किया गया, उससे रूढ़िवाद की ऐसी परम्पराएं प्रचलित हो गयीं, जो वैदिक सिद्धान्त के विरूद्ध थी। बींसवी सदी में समाज पर छाये पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव और संयुक्त परिवारों के विघटन ने वैदिक संस्कारों को समाज से दूर कर दिया। गृहस्थ आश्रम तपस्या का क्षेत्र न रहकर भोग विलास का स्थान बन गया। जिससे राष्ट्र मे मदालसा, कौशल्या, देवकी, कुन्ती जैसी माताएं अब नहीं होतीं। आद्युनिक कृत्रिम श्रंगार करने वाली मातएँ उनके श्रंगार को नष्ट करने वाली ऐसी सन्तान को जन्म दे रही हैं- जो धन, सुरा और सुन्दरियों के पीछे लगे हैं।

यह पुस्तक आदरणीया मातृ'श्री' शांति अबरोल तथा उनकी धर्मनिष्ठ- सुयोग्य सुपुत्री सुश्री नीरू अबरोल एवं रेणु तुली, जिनका जीवन पूज्यपाद ब्रह्मचारी जी के ज्ञान से आलोकित रहा है, के

सात्विक दान से प्रकाशित की गयी है। हम उनके हृदय से आभारी हैं तथा उनके सुयशमय जीवन तथा दीर्घायुष्य की प्रभु से मंगलकामना करते हैं। डॉ. अशोक आर्य / सुमन कुमार 'वैदिक'

स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ

विदुषी प्रशस्त तथा धर्मपरायणा माता मदालसा की कथा मार्कण्डेयपुराण में अत्यन्त विस्तार तथा चमत्कारपूर्ण ढंग से अलकोपाख्यान के अन्तर्गत आती है। गर्भस्थ शिशु को संस्कारित करने वाले विज्ञान से माता मदालसा पूर्णतया परिचित थीं। गुरूकुल में अध्ययन करते समय ही उनके बालमन में जिज्ञासा उत्पन्न हो गयी थी कि क्या गर्भावस्था से ही दिव्य सन्तानों को जन्म नहीं दिया जा सकता? परिणाम स्वरूप उन्होंने गर्भविज्ञान का सूक्ष्म अध्ययन किया। अध्ययन करते-करते वे इस परिणाम पर पहुँचीं कि माता का वास्तविक श्रृंगार उसका गर्भाशय ही है। गर्भाशय के अन्दर तेजोमय परमाणु विशेष हैं, तो सन्तान अध्यात्मवादी बनेगी, न्यून हैं तो भौतिकवादी। सोमकीर्ति ऋषि और ऋषिका स्वाति की कन्या मदालसा जब युवावस्था को प्राप्त हुई तो उनका विवाह मनुवंश के सुशील सुयोग्य राजा ऋतध्वज के साथ कर दिया गया। विवाह के पश्चात् रानी मदालसा बड़ी गम्भीरता के साथ गर्भस्थ विज्ञान को क्रियात्मक रूप में परिणत करने में संलग्न हो गई। गर्भ की स्थापना होते ही वे समाधि में चली जाती हैं और अपने गर्भस्थ शिशु से वार्तालाप भी करती हैं। नौ मास की इस तपोनिष्ठ साधना के द्वारा और वैराग्यपूर्ण चित्रें तथा लोरियों के द्वारा माता मदालसा ने अपने तीन गर्भस्थ शिशुओं की आत्माओं का इतना उत्कर्ष किया कि वे धन-धान्य तथा ऐश्वर्य से परिपूर्ण राज्य को हेय मानकर अध्यात्म मार्ग के पथिक बन गये। शैशवावस्था के क्रन्दन में माता मदालसा का उपदेश होता था-

शुद्धोऽसि रे तात न तेऽस्ति नाम
कृतं हि ते कल्पनया धुनैव।
प०चात्मकं देहमिदं न तेऽस्ति
नैवास्य त्वं रोदिषि कस्य हेतोः॥

हे तात! तू तो शुद्ध आत्मा है तेरा कोई नाम नहीं है यह कल्पित नाम तो तुझे नामकरण संस्कार में अभी मिला है। यह शरीर भी पाँच भूतों का बना हुआ है। न यह तेरा है, न तू इसका है, फिर किस लिये रो रहा है? इसी प्रकार शिशुओं को सुलाते समय तथा उनसे क्रीड़ा करते समय वे कहा करती थीं-

त्वं कंचुके शीर्यमाणे निजेऽस्मिंस्तस्मिंश्च देहे मूढतां मा व्रजेथाः।
शुभाशुभैः कर्मभिर्देहमेतन्मदादिमूढैः कंचुकस्ते पिनद्धः॥

हे तात्! तू अपने उस चोले तथा इस देहरूपी चोले के जीर्ण-शीर्ण होने पर मोह न करना। शुभाशुभ कर्मो के अनुसार यह देह प्राप्त हुआ है। तेरा यह चोला मद आदि से बँधा हुआ है, तू इससे सर्वथा मुक्त है।

दुःखनि दुःखोपगमाय भोगान् सुखाय जानाति विमूढचेताः।
तान्येव दुःखानि पुनः सुखानि जानाति विद्वानविमूढचेताः॥

हे तात! यद्यपि समस्त भोग दुःखस्वरूप है, सुख की प्राप्ति कराने वाला समझता है, किन्तु जो विद्वान हैं जिनका चित्त मोह से आच्छन्न नहीं हुआ है, वे उन भोग जनित सुखों को भी दुःख ही मानते हैं।

इन उपदेशों के प्रभाव से तीनों पुत्रों के ब्रह्मवादी बन जाने पर राजा ऋतध्वज की प्रार्थना पर रानी ने चतुर्थ पुत्र अलर्क को राज्य

संभालने योग्य लोरियाँ सुनानी प्रारम्भ कर दीं। भावी राजा अलर्क की लोरियाँ इस प्रकार थीं-

धन्योऽसि रे यो वसुधामशत्रुरेकश्चिरं पालयितासि पुत्र।
तत्पालनादस्तु सुखोपभोगों धर्मात् फलं प्राप्स्यसि चामरत्वम्॥
राज्यं कुर्वन् सुहृदो नन्दयेथाः साधून् रक्षंस्तात यज्ञैर्यजेथाः।
दुष्टान् निघ्नन् वैरिणश्चाजिमध्ये गोविप्रार्थे वत्स मृत्युं व्रजेथः॥

हे तात! तू धन्य है जो शत्रुरहित होकर अकेला ही चिरकाल तक इस पृथ्वी का पालन करेगा। पृथ्वी के पालन से तुझे सुख भोग की प्राप्ति हो और धर्म के फलस्वरूप तुझे अमरत्व मिले। राज्य करते हुये अपने सुहृदों को प्रसन्न रखना। साधु पुरुषों की रक्षा करते हुए यज्ञों द्वारा भगवान् का यज्ञ करना, संग्राम में दुष्टों का संहार करते हुये गौ और ब्राह्मणों की रक्षा के लिए अपने प्राण न्यौछावर कर देना।

स्वर्णिम अक्षरों में लिखने योग्य यह इतिहास प्रसिद्ध गाथा इस पुस्तिका का वर्ण्यविषय है। पुस्तिका का समस्त कलेवर समाधि अवस्था में श्री महानन्द आदि ऋषियों से वार्तालाप करने वाली पूज्य श्रृंगी ऋषि की आत्मा वर्त्तमान युग के पूज्य ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त महाराज के विभिन्न प्रवचनों से निकले वाक्य-प्रसूनों से सुसज्जित है। एक ही वक्ता के विभिन्न स्थलों पर प्रवचन होने से पुनरुक्ति होनी भी स्वाभाविक है। ऋषि प्रव्हान और ग्राह के प्रकरण में ऋषि का मगर से वार्तालाप और उनका मगर के उदर में तीन दिन तक निवास करना विचारणीय है। जहाँ तक पुस्तिका के प्रतिपाद्य विषय की बात है, वह अत्यन्त स्पष्ट है। ब्रह्मर्षि जी ने अपने प्रवचनों में माता

मदालसा को सर्वाधिक महत्व दिया है। वे देश की प्रत्येक माता को माता मदालसा जैसी उच्च स्थिति तक पहुँचाना चाहते हैं। वस्तुतः देश की समस्त उन्नति उत्तम नर-नारियों से ही सम्भव है और माता ही उत्तम नर-नारियों की निर्मात्री है। नारी के मातृरूप की वन्दना में क्रान्तदर्शी कवियों ने ऋषियों ने बहुत कुछ लिखा है पर महर्षि मनु का वचन सर्वातिशायी है। वे लिखते हैं-"सहस्रं तु पितृन् माता गौरवेणातिरिच्यते" एक माँ का महत्व हजार पिताओं से भी अधिक होता है। मनु का यह वचन माता मदालसा पर पूर्णतया संगत होता है। पुत्रयाग के विज्ञान से समलंकृत मदालसा, कौशल्या, शकुन्तला सदृश मातायें निस्सन्देह अपने सदन की ही ब्रह्मा न होकर समस्त राष्ट्र की ब्रह्म होती हैं।

आशा है इस पुस्तिका से भारत की देवियाँ अपनी सन्तानों को आदर्श सन्तान बनाने की विधि प्राप्त कर अवश्य ही अपने परिवार तथा राष्ट्र को आलोकित करेंगी।

आचार्या डॉ. प्रियंवदा वेदभारती
गुरूकुल आर्ष कन्या विद्यापीठ
नजीबाबाद, जिला-बिजनौर (उ.प्र.)

पूज्यपाद ब्रह्मर्षि कृष्णादत्त जी महाराज संक्षिप्त जीवन वृत्त

उत्तर प्रदेश के गाजियाबाद जनपद में मुरादनगर के निकट स्थित खुर्रमपुर-सलीमाबाद गांव में एक निर्धन, अशिक्षित, कबीरपंथी जुलाहे के घर इनका जन्म हुआ। उल्टी प्रक्रिया में, अर्थात उल्टे पैरों पैदा होने पर नाम रखा गया कृष्णादत्त। गांव के अशिक्षित परिवेश में इनके जन्म समय का कोई निश्चित संकेत नहीं मिलता। फिर भी उनके परिवार के सदस्यां, उनके गांव के समवायी शिक्षित महानुभावों के संकेतों और अन्य तथ्यों के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि इनका जन्म सन् 1942 के उत्तर चातुर्मास्यकाल में हुआ। इनके पिता जी का नाम श्री नानकचन्द्र जी व माता जी का नाम श्रीमती सोनादेवी था।

कहते हैं, जब पूज्य ब्रह्मर्षि जी लगभग दो मास की अवस्था के ही थे, एक दिवस इनकी माता जी ने इन्हें शवासन में लिटा दिया। कुछ समय उपरांत शिशु की गर्दन दोनों ओर को हिलने लगी और होठ फड़फड़ाने लगे। इस अवस्था में शिशु को पाकर परिवार के सदस्य चकित हुए। इस क्रिया की पुनरावृत्ति होने पर गांव के ओझा-पंडित का सहारा लिया गया और भूत-प्रेत का प्रभाव मानकर तदनुरूप शिशु का उपचार प्रारम्भ हो गया। अनेक प्रकार से यातनाएं दी जाने लगीं। परन्तु उस विशेष अवस्था में जाने की घटनाएं बढ़ती रहीं। आयु बढ़ने के साथ-साथ वाणी स्पष्ट होने पर बाल्य ब्रह्मर्षि जी उस विशेष अवस्था में जाते, तो मंत्र-पाठ और कथा-वाचन स्पष्ट सुनायी देते। आश्चर्यचकित ग्रामवासी गर्दन हिलने और कथा सुनने के

इस विचित्र अनुभव को अपने-अपने आधार पर ग्रहण करने लगे।

छः वर्ष की आयु में इन्हें भयानक चेचक निकली। इन्हें शवासन में लिटाए रखा जाता और विशेषकर उस अवस्था में जाकर इनके प्रवचन होते ही रहते थे। दोनों ओर हिलने से इनका मुख-मण्डल और सिर छिल-छिल कर फोड़े की तरह बन गये थे। पड़ौस के बूढ़े लोगों को अभी भी वह समय याद है और कोई यह नहीं कहता था कि बालक कृष्णदत्त बच जाएगा। परन्तु प्रभु की कृपा से उसकी अमूल्य निधि मानव कल्याण के लिए सुरक्षित रही।

सामान्यतः इन्हें करवट से ही सुलाया जाता था, लेकिन जब कभी शवासन की स्थिति बनती, तो कुछ समय के पश्चात् उसी प्रकार गर्दन हिलने लगती और कथा प्रारम्भ हो जाती। धीरे-धीरे गांव के लोगों को इनकी कथाएं समझ आने लगीं। इनके पिता जी इनके इस अवस्था में जाने से बहुत चिंतित रहते थे। जब ये सात वर्ष की अल्पायु के ही थे, तो इनके पिता जी ने अपने गांव के चौधरी खचेड़ू सिंह और चौधरी इन्द्रराज सिंह त्यागी के यहाँ इन्हें नौकर रख दिया। वहां ब्रह्मचारी जी, पशुओं को जंगल में चराना, घास लाना, पशुओं का चारा, पानी भरना, मेहमानों की सेवा करना, हुक्का भरना और पैर दबाना, कोल्हू में गन्ना डालना, गुड़ बनाना आदि काम करते थे। वहाँ भी जब कभी वह विशेष अवस्था बनती, तो कथा प्रारम्भ हो जाती थी। इस प्रकार इनका सामान्य जीवन औपचारिक शिक्षा से वंचित रहा।

पशु चराते हुए साथी ग्वाले, बालक ब्रह्मर्षि की इच्छा न होते हुए

भी बल से, हाथ, पैर तथा सिर पकड़कर सीधा लिटाते और अपेक्षित रूप से गर्दन हिलाने एवं कथा सुनाने का मनोरंजन करते थे। धीरे-धीरे गांव के आसपास के अन्य गांवों में इस विचित्र बालक का तथाकथित परिचय बढ़ने लगा। ग्राम के विवाहादि उत्सवों में विचित्र बालक को बुलाया जाने लगा और इस दिव्य प्रवचन क्रिया को मनोरंजन का साधन बनाया जाने लगा।

अन्य लोगों की तरह ब्रह्मर्षि जी भी इस अवस्था का व्याधि अथवा अन्य प्रभाव ही मानते थे। उनके परिवार के सदस्य अनेक प्रकार से उन्हें प्रताड़ित करते थे। एक दिवस इनकी कथा-प्रक्रिया के पश्चात् पिता जी द्वारा अत्यधिक पिटाई किये जाने पर इनके मन में विचार आया कि यहाँ कष्ट पाते रहने से तो अच्छा है कि कहीं जाकर अपना इलाज कराया जाए, अन्यथा जीवन समाप्त कर दिया जाए। लगभग 15 वर्ष की अवस्था में शीतकाल की मध्य रात्रि में, लगभग एक बजे, अपने परिवार और गांव को छोड़कर भाग खड़े हुए। उपचार की आशा में एक-डेढ़ मास इधर उधर भटकते हुए, बरनावा में भी धर्मवीर त्यागी के घर जा पहुंचे। त्यागी जी इनके पूर्व नियोक्ता इन्द्रराज सिंह से संबन्धित थे और इनका परिवार इन्हें जानता था। वहाँ इनकी कथा होती रहती। कई मास कथा चलती रही। ग्रामीण लोग आते और सुनते रहते थे। कुछ श्रद्धा से समझते हुए सुनते और अन्य कौतुहल से।

बरनावा वारणावत, मेरठ जनपद के हिण्डन और कृष्णा नदी के संगम पर स्थित है। यहाँ महाभारत काल का ऐतिहासिक ‘लाक्षागृह’

लाखामराडप का टीला है। वहीं कौरवों ने पाराडवों को अग्नि में जलाने का षड्यंत्र रचा थ और सौभाग्य से पाराडव वहाँ से बच निकले थे। यह टीला बड़े विशाल रूप में आज भी विद्यमान है। इसी स्थान से पूज्य महर्षि महानंद जी का संबन्ध महर्षि जी के भौतिक पिराड से हुआ, ऐसा बरनावा निवासियों से मालूम हुआ। उनका कथन है कि जिस समय प्रारम्भ में यहां पाँच-छः मास तक कृष्णादत्त जी की कथा हुई, तो कभी कथा में महानन्द मुनि को कोई संकेत अथवा नामोच्चारण नहीं हुआ था। एक दिन ब्रह्मर्षि जी अपने चार साथियों के साथ घूमते हुए इस लाखामराडप को देखने गये। थोड़ी देर घूम-फिर कर आ गये और उसी दिन रात्रि की कथा में महानन्द जी ने यह कहा कि 'गुरुजी आज तो आप हमारे आश्रम में गये थे।' तभी से इनके प्रवचनों में महानन्द जी के प्रश्नोत्तर होने लगे।

इनके प्रवचनों से स्पष्ट हुआ कि ब्रह्मर्षि कृष्णादत्त जी पूर्वजन्मों में श्रृंगी ऋषि रहे हैं और सूक्ष्म शरीरधारी महानन्द जी इनके योगसिद्ध शिष्य रहे हैं। यह भी ज्ञात हुआ कि महाभारत की 'लाक्षागृह अग्निकाराड स्थली' पूर्व समयों से महानन्द जी की तपोभूमि रही है। और ब्रह्मर्षि कृष्णादत्त जी के यहां पदार्पण तक महानन्द जी श्रद्धारूप में तपस्या करते रहे।

ब्रह्मर्षि जी के हृदय में इस टीले को आश्रम में परिवर्तित करने की प्रेरणा बलवती होने लगी। लोग इनके प्रवचनों की सार्थकता समझने लगे और धीरे- धीरे इनकी लोकप्रियता बढ़ने लगी। समीपवर्ती गांवों से इन्हें प्रवचन के लिए बुलाया जाने लगा। इन्हीं

दिनां यज्ञों में इनकी रुचि बढ़ने लगी और जिस परिवार में प्रवचन/कथा करते, वहां यज्ञ करने की प्रेरणा भी देते। विशेष रूप से इनकी विदाई के समय यज्ञ होने लगे। ब्रह्मर्षि जी ने लाक्षागृह टीले पर यज्ञों के आयोजन की प्रेरणा दी।

आर्य जगत के अनेक प्रतिष्ठित विद्वान इस अशिक्षित ग्रामीण युवक की विचित्र अवस्था, दिव्य प्रवचन शैली और विलक्षण वैदिक प्रभाव को देखकर इनकी ओर आकर्षित हुए। उत्तर प्रदेश आर्य प्रतिनिधि सभा से संबन्धित आचार्य सुरेन्द्र शर्मा गौड़ जी, ब्रह्मर्षि कृष्णादत्त जी की विलक्षण प्रवचन क्रिया एवं प्रवचन शैली से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने साप्ताहिक पत्र 'आर्यमित्र' में इनके विषय को प्रकाशित कराया। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा को भी लिखा और वैदिक सिद्धांतों का प्रतिपादन करते हुए स्पष्ट किया कि उनकी यह अवस्था योग की दिव्य मुद्रा है, समाधि है।

सन् 1958-59 ई0 में वैद्य पं0 प्रकाश चन्द्र जी शास्त्री ने विनय नगर के आर्यसमाज प्रधान को इनके विषय में बताया और इस प्रकार इनको दिल्ली बुलाने की योजना बनने लगी। अन्ततः शास्त्री जी, आकाशवाणी के डॉ0 बनवारीलाल जी शर्मा एवं अन्य महानुभावों के प्रयत्न से दिनांक 28 दिसम्बर, 1961 को ब्रह्मर्षि कृष्णादत्त जी महाराज आर्यसमाज, विनय नगर में पधारे। अगले दिन, वहां, भारत सेवा समाज के स्थान पर इनका प्रवचन लगभग 250 जिज्ञासुओं ने सुना और मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की। दिल्ली में, कई दिनों तक प्रवचनों के कार्यक्रम होते रहे। आत्म- परमात्म, प्राण की महत्ता, अनावृष्टि-

अतिवृष्टि आदि अनेक विषयों पर इनके दिव्य प्रवचन हुए। अनेक प्रतिष्ठित विद्वानों, दार्शनिकों और मनोवैज्ञानिकों ने इनके प्रवचनों को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सुना और गम्भीर विश्लेषण हुआ।

1 जनवरी, 1962 को इनके प्रवचन को प्रथम बार टेप रिकार्ड किया गया। प्रतिदिन नवीन विषय होता था। धीरे-धीरे प्रवचनों को सुनने वालों की संख्या बढ़ने लगी। सात जनवरी को एक विशेष यज्ञ के पश्चात् लगभग दस हजार लोगों की भव्य उपस्थिति में प्रवचन हुआ। सौल्लास निर्णय लिया गया कि इनके यौगिक बहुमूल्य प्रवचनों की निधि को रिकार्ड किया जाना चाहिए और इनकी यौगिक क्रिया एवं प्रवचन सामग्री पर अनुसंधान होना चाहिए। शीघ्र ही 'वैदिक अनुसंधान, समिति, नई दिल्ली' का गठन किया गया। इस प्रकार प्रवचन टेप होने लगे और प्रकाशन कार्य प्रारम्भ हो गया। उधर इनके लिए देश के कोने- कोने से निमंत्रण आने लगे और इनका जीवन यज्ञों और प्रवचनों में अत्यंत व्यस्त हो गये।

ब्रह्मर्षि जी की प्रेरणा से लाक्षागृह टीले पर एक यज्ञशाला का निर्माण कराया गया और लाक्षागृह को एक आश्रम का रूप दिया गया। तदन्तर बरनावा आश्रम में हर वर्ष शिवरात्रि एवं होलिका पर्व के मध्य दिनों में लगातार आठ दिनों का, पूज्य ब्रह्मर्षि जी की प्रेरणा से एवं जनता जनार्दन के सहयोग से, चतुर्वेदपरायण यज्ञों का आयोजन हो रहा है और इसी प्रकार रक्षाबन्धन के दिवस सामवेद पारायण यज्ञ संपन्न होता है। आजकल आश्रम में पांच भव्य यज्ञशालाएं हैं, जहाँ हजारों- हजारों की संख्या में वैदिक श्रद्धालु

यज्ञ एवं प्रवचनों के दिव्यामृत से लाभान्वित होते हैं।

ब्रह्मर्षि जी की प्रेरणा से ही लाक्षागृह आश्रम में निःश्ुल्क वैदिक शिक्षा के लिए एक संस्कृत विद्यालय की स्थापना हुई। इनके योग सिद्धात्मा शिष्य ही के नाम पर विद्यालय का नामकरण हुआ। सन् 1965 में लाक्षागृह आश्रम में यज्ञों एवं प्रशिक्षण के प्रबन्धन के लिए 'श्री गांधीधाम समिति' नाम से एक समिति का गठन हुआ। शनैः शनैः, यथोपेक्षा, यहाँ पर्याप्त कमरे, गऊशाला, खेती के लिए पर्याप्त भूमि तथा ट्यूबवैल और अन्य साधनों का प्रबन्ध हो गया।

सम्प्रति, इस संस्कृत महाविद्यालय में लगभग 150 छात्र, वैदिक शिक्षण-पद्धति के आधार पर, आचार्य स्तर तक विभिन्न विषयों में प्रबुद्ध अध्यापकों द्वारा शिक्षार्जन कर रहे हैं। आज भी यहाँ के विद्वान आचार्य देश के कोने- कोने में यज्ञ करवा रहे हैं और ब्रह्मर्षि द्वारा वेद एवं यज्ञ-प्रचार की ज्योति को प्रभावी रूप से दैदीप्त कर रहे हैं।

पूज्य ब्रह्मर्षि जी की योग मुद्रा में जाने की प्रक्रिया पर गम्भीर अनुसंधान की आवश्यकता है। इनके प्रवचनों में महर्षि महानन्द जी ने इस क्षेत्र के एवं पूज्य महर्षि जी से जुड़े सभी प्रश्नों पर व्यापक प्रकाश डाला है जिससे यह एकदम स्पष्ट है कि पूज्य ब्रह्मर्षि जी आदि ब्रह्मा के वरिष्ठ शिष्य श्रृंगी ऋषि की आत्मा हैं और इनका यह जीवन आदि ब्रह्मा जी के एक शाप का परिणाम है। त्रेता काल में इनके ही द्वारा पुत्रेष्ठि यज्ञ करवाने से भगवान राम अवतरित हुए थे। परन्तु उस विशेष समाधि अवस्था में दिये जाने वाले इनके प्रवचन, अन्तरिक्ष स्थित ऋषिमण्डल में सूक्ष्मधारी योगसिद्ध आत्माओं को

सम्बोधित होते हैं और उनका यह शरीर एक दिव्य यंत्र की भांति उस आकाशवाणी से पृथ्वी मण्डल पर हम लोगों की प्रेरणार्थ योजित करता है। इनकी यह प्रवचन क्रिया यौगिक है, जिसे प्राणसत्ता को जानने वाले ही ग्रहण कर सकते हैं। अनेक लोगों ने इनकी यौगिक प्रक्रिया पर अनुसंधान किये हैं।

1964 में प्रतिष्ठित योग विद्वान स्वामी योगेश्वरानन्द जी ने इनकी योग मुद्रा एवं प्रवचन पर विशेष अनुसंधान किये और अपने यौगिक बल से इनकी प्रतिभा को जाना। स्वामी प्रभु आश्रित जी, स्वामी सच्चिदानन्द सरस्वती, डॉ0 रणवीर सिंह शास्त्री विद्यावाचस्पति, पण्डित धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड, महान व्याकरणाचार्य एवं दार्शनिक डॉ0 हरिदत्त जी शास्त्री, विश्वनाथ प्रसाद जी, डॉ0 देशमुख महादेय, श्री पं0 वीरसेन जी, वेदश्रमी आदि अनेक विद्वानों ने ब्रह्मर्षि जी के योग मुद्रा एवं प्रवचन प्रक्रिया पर अनुसंधान किये और अपनी शुभ सम्मतियां प्रकट कीं।

1966 में माननीय विज साहब ब्रह्मर्षि जी को हैदराबाद ले गये, वहाँ तत्कालीन शिक्षामंत्री एवं पूर्व प्रधानमंत्री श्री नरसिंहराव जी ने गुण्डुराव देसाई एवं अन्य राजनीतिज्ञों के साथ इनके प्रवचनों का आयोजन करवाया। 'राजा का धर्म' विषय पर हुए एक प्रवचन को सुनकर सब आश्चर्यचकित रह गये। पूर्वमंत्री श्री बलराम जाखड़ एवं भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद के सुपुत्र डॉ0 मृज्युंजय प्रसाद जी ने भी इनके प्रवचनों को सुना और आश्चर्यबद्ध होकर प्रशंसा की है।

इनकी योगमुद्रा में जाने की प्रक्रिया बड़ी विचित्र थी। प्रवचन से पूर्व इन्हें कोई ज्ञान नहीं होता कि वे किस विषय पर प्रवचन करेंगे और प्रवचन के उपरांत भी यही दशा रहती थी। उन्हें ज्ञान नहीं रहता कि उन्होंने कब और कैसे क्या कहा? प्रारम्भ में ये चादर ओढ़कर शवासन में लेट जाते थे। चादर ओढ़ने का उद्देश्य बाह्य अशांत प्रभाव से बचना है। चार- पाँच मिनट तक इन्हें सामान्य रहने का अभ्यास रहता है। उसके बाद इन्हें पूर्व स्थिति का कोई ज्ञान नहीं रहता। योगविदों के अनुसार, इसके बाद इनके प्राण एकीकृत होकर ब्रह्मरन्ध्रोन्मुखी हो जाते हैं और समाधि लग जाती है। पूज्य ब्रह्मर्षि जी अंतरिक्ष के किसी ऐसे मण्डल से संबन्ध स्थापित कर लेते हैं, जहां योगसिद्ध आत्माएं पूर्व जन्मों के दिव्य ज्ञान की अपेक्षा में सभायोजित होते हैं। इस प्रकार लगभग दस मिनट तक उस अवस्था मे लेटे रहने के पश्चात् ये दोनों हाथों से चादर को मुख से उतारते हैं और हाथों को वक्षस्थल पर विचित्र पाठ मुद्रा में लाते हैं। गर्दन के ऊपर का भाग दायें- बायें, दोनों ओर तीव्र रूप से गति करने लगता है। संभवतः यह प्राणों का संघात है और अति मधुर ध्वनि में मंत्र-गायन प्रारम्भ हो जाता है।

मंत्र गायन में वेद-मंत्रालयों की प्रतिभा का भान तो होता ही है, साथ ही वैदिकोत्तर काल में विकसित होने वाली किसी वेदभाष्यी भाषा का बोध भी होता है। संभवतः यह ब्राह्मी का प्राचीन रूप है। मंत्र गायन समीक्षा से ऐसा बोध भी होता है, जो उस काल में ऐसे विशिष्ट विद्यालय अथवा गुरुकुल प्रणाली रही हो, जहां अपने प्रकार

की ऐसी समवैदिकी भाषा का विकास होता रहा है। गायन तो तत्सम छन्दोबद्ध ही रहा, परन्तु शब्द-रूप एवं मंत्र- विन्यास अपनी अलग विधा का बोध कराते हैं। लगभग दस मिनट तक मंत्रोच्चारण चलता है। मंत्रोच्चारण के उपरांत मनोहारी एवं मधुर ध्वनि आशीर्वचन जीते रहो सुनाई पड़ता है और 'देखो मुनिवरो!' सम्बोधन के साथ, एक मनोहारी और वृद्ध ऋषि तुल्य भाषा में लगभग 40 मिनट का ज्ञानगर्भित एवं विज्ञानपुष्ट प्रवचन होता रहता है। कभी- कभी प्रवचन की अवधि अधिक भी होती है।

प्रवचन की धारा-प्रवाहिता, विषय-विन्यास एवं दर्शन का स्तर इतना उत्कृष्ट एवं वैज्ञानिक होता है कि बड़े- बड़े विद्वानों का मस्तिष्क कल्पना में नृत्य करने लगता है। प्रवचन में इतनी सरसता, सात्विकता होती है कि अल्पज्ञ श्रोता भी विषय- सामग्री के ग्रहण स्तर में न होता हुआ, बंधा हुआ सा रहता है।

प्रवचनों की विषय सामग्री, ऋषि- मुनियों के वैदिक, यौगिक एवं व्यावहारिक अनुभवों, दृष्टांतों, मानव धर्म और मानवीयता के तथ्यों से ओतप्रोत रहती है। सम्पूर्ण मानवता के लिए ब्राह्य, वैदिक ज्ञान और आचरण की ये अनूठी चर्चाएं, न केवल इतिहास, विज्ञान एवं दर्शन से जुड़ी गुत्थियों को सुलझाती हैं, बल्कि संप्रदायों, रूढ़िवादिता , सिहत्य एवं इतिहास के प्रक्षेपों से भ्रमित, आज के मानव को जीवन के सभी क्षेत्रों में आचरण योग्य विशुद्ध साकल्य प्राप्त होता है। प्रवचन की भाषा सुमधुर तत्सम हिन्दी रहती है। कभी- कभी प्रवचनों की भाषा संस्कृत भी रहती है। कुछ प्रवचन तो पूर्ण रूप से संस्कृत में ही

हैं।

इनके प्रवचनों में तीन और आत्माओं- आदि ब्रह्मा इनके पूज्यपाद गुरुदेव, इनके शिष्य महर्षि लोमश मुनि और महर्षि महानन्द मुनि की वार्ताएं भी आयी हैं। महर्षि महानन्द जी के तो इनसे प्रश्नोत्तर, प्रायः होते रहे हैं। यज्ञ की पूर्णाहुति के पश्चात् यजमान के लिए आशीर्वचनों और राष्ट्रवाद पर अपनी दिव्य टिप्पणियों से पूर्ण वार्ताएं तो सर्व अपेक्षित रही हैं।

ब्रह्मर्षि जी की बढ़ती लोकप्रियता और प्रवचनों से पाखण्ड एवं रूढ़िवाद के युक्तियुक्त खण्डन के करण अनेक बार उन पर शरीरिक हमले हुए हैं। एक बार तो औषधि रूप में उन्हें कच्चा पारा खिला दिया गया, जिसके कारण उनका शरीर फोड़े- फोड़े हो गया और हृदय तथा फेफड़ों को गहरी क्षति पहुंची।

सामान्य अवस्था में साधारण से प्रतीत होने वाले ब्रह्मर्षि जी ने अपने छोटे से जीवनकाल में 5000 के लगभग वेदपारायण यज्ञों का आयोजन करवाया, जिनमें लगभग 35 चतुर्वेद पारायण यज्ञ हैं। आज के बाम-मार्ग काल में, ग्राम- ग्राम, नगर- नगर घूमकर इस महामानव ने महर्षि दयानन्द द्वारा पुनर्जागृत वेद एवं यज्ञ-प्रचार की ज्योति को हजारों- हजार परिवारों में दैदीप्यमान कर दिया। अनेक श्रद्धालुओं को दैनिक यज्ञ में योजित किया।

आजीवन ब्रह्मचारी रहकर सात्विक एवं सादा जीवन जीने वाले ब्रह्मर्षि जी की निस्पृहता, निरभिमानता आदि गुण सभी विचारशीलों को अत्यंत प्रभावित करते थे। उनकी विलक्षण स्मरण शक्ति और

सबके प्रति अगाध प्रेम ने उन्हें 'सभी का अपना' बना दिया था।

यज्ञों के विस्तार की भूमि बनाते हुए और अपने दिव्य यौगिक प्रवचनों द्वारा ब्रह्मज्ञान का प्रसारण करते हुए, यह दिव्यात्मा 15 अक्टूबर, 1992 को ब्रह्म मुहुर्त के समय, 50 वर्ष की अवस्था में ब्रह्मलोक के लिए महाप्रयाण कर गयी। यद्यपि, पूज्यपाद ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी आज हमारे मध्य भौतिक रूप से विद्यमान नहीं हैं, लेकिन वेद ज्ञान रूप में उनके दिव्य प्रवचन और प्रेरणाएं, सर्वदा-सर्वदा मानव मात्र का मार्गदर्शन करती रहेंगी।

वैदिक अनुसंधान समिति, पंजी0

नई दिल्ली।

श्रद्धादान

परमपिता परमात्मा की अद्भुत सृष्टि रचना में मानव योनि को सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त है और उसी रचना में माता का क्रियाकलाप परम पवित्र और सर्वश्रेष्ठ माना गया है। परमपिता परमात्मा ने ही मानव मात्र के कल्याण के लिए वेदों का अपार ज्ञान आदि ऋषियों के द्वारा प्रसारित करके प्रदान किया है। ऋषि-मुनियों ने वेदों के ज्ञान को अपनाकर, अनुसंधान करके उसे राष्ट्र, समाज व प्राणी मात्र के उद्धार के लिये निरंतर प्रदान किया है। उसी श्रृंखला को पुनः जीवित रखने के लिये ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज (पूर्वजन्म के श्रृंगी ऋषि जी) ने वेदों के मन्त्रें का उद्गीत गाते हुए उस ज्ञान को वर्तमान राष्ट्र व समाज को प्रचलित भाषा में रुपांतरित, प्रमाण देते हुए अपने प्रवचनों में किया है।

अपने प्रवचनों में माता का महत्व दर्शाते हुए (माता मदालसा के जीवन पर प्रकाश डालते हुए) वर्तमान काल में पुनः प्रदान किया है, जिससे कि मातायें उस ज्ञान को अपने में, उस मार्ग को अपनाकर श्रेष्ठ संतान, राष्ट्र, समाज व मानव कल्याण के लिये अर्पित करके अपने को अमर कर सकती हैं। उसी कल्याण के मार्ग को ब्रह्मर्षि कृष्ण दत्त जी महाराज के समय-समय पर दिये गए प्रवचनों से संग्रह करके ”माता मदालसा“ नामक पोथी में प्रकाशित करने का प्रयास किया गया है।

इस श्रेष्ठ ज्ञान को पोथी रूप में समाज तक पहुँचाने के लिये पूज्य माता जी श्रीमती शान्ति देवी धर्म पत्नी स्व. श्री देवराज

अबरोल, निवासी-के-3, लाजपत नगर-III, नई दिल्ली-110024 व उनके परिवार ने इक्कीस हजार रुपये का सात्विक सहयोग समिति को अर्पित किया है जिससे कि यह ज्ञान जन-समूह तक पहुँच जाए और कल्याण का मार्ग प्रशस्त हो। पूज्य माता जी को वैदिक संस्कार अपने परिवार में जन्म से ही मिलने का सौभाग्य अपने माता-पिता जी से प्राप्त हुआ, क्योंकि इनके पूर्वज वैदिक परंपरा के अनुयायी व आर्य समाज को चलाने में सक्रिय रहे हैं। वैदिक गुणों से संपन्न माता जी ने वे सभी गुण अपने प्रज्ञा-पुत्र अशोक, पुत्री नीरु व रेणु को प्रदान करके आदर्श परिवार का निर्माण किया है। इन्हीं सब उत्तम संस्कारों के संयोग से इस परिवार को पूज्यपाद् गुरुदेव ब्रह्मर्षि कृष्ण दत्त जी महाराज का सन् 1962 में दिल्ली में आगमन पर ही स्नेह प्राप्त हो गया और वह शनैः-शनैः बढ़ता चला गया, जिसके फलस्वरूप जब भी गुरुदेव कार्यवश दिल्ली आते तो प्रायः इन्हीं के निवास स्थान पर विश्राम करते थे।

समिति पूज्या माता जी व उनके परिवार के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करती है और प्रभु से इनके परिवार के सभी सदस्यों के उत्तम स्वास्थ्य, दीर्घ आयु तथा सर्वतोन्मुखी समृद्धि के लिये विनय करती है।

मन्त्री

वैदिक अनुसंधान समिति (पंजी.)

नई दिल्ली

१ माता मदालसा- एक परिचय

गर्भस्थ से वार्ता

परम्परागतों से बेटा! मेरी प्यारी माताओं ने भी इस संसार को जानने के लिये बहुत प्रयत्न किये हैं। मुझे ऐसा दृष्टिपात है बहुत-सी मेरी पुत्रियाँ और माताएँ इस प्रकार की हुई हैं, जिन्हांने बेटा! अन्तर्हृदयों में या हृदय के उच्छवास में आत्मा जब प्रवेश होता है, तो ऐसी बहुत-सी मेरी प्यारी माताएँ हुई हैं, जिन्होंने गर्भस्थल की आत्मा का अपनी आत्मा से मिलान किया और उसके ऊपर विचारा है। माता यह कहती है कि हे आत्मा! तू मेरे गर्भस्थल में आई है। तू कहाँ से आई है और कौन है? तो बेटा! उस चेतना से चेतना का मिलान करने वाली मेरी बहुत सी पुत्रियाँ हुईं हैं। हमारे यहाँ यह माना गया है कि माताओं को तपस्या करनी चाहिये, उनका तपोमय जीवन होना चाहिये। माता जितना अपने जीवन को तपस्या में परिणत कर देती है, उतना ही उनका जीवन माता मदालसा की भाँति पवित्र और भव्य बन जाता है। 8 अप्रैल 1984, लूम (बागपत)

शब्द ऊर्जा हैं

यह जो मानव शब्द उच्चारण कर रहा है, इस शब्द का प्रकाश अनुपम माना गया है। जैसे एक मानव अन्धकार में जा रहा है, मार्ग से भटककर वह कुमार्ग पर आ जाता है, वही शब्द के प्रकाश से सुमार्ग पर आ जाता है। वह शब्द ही है बेटा, जिस के द्वारा राष्ट्र में

अग्नि प्रदीप्त हो जाती है। यह समाज भयंकर अग्नि में प्रवेश कर जाता है। वह शब्द ही है जो शान्ति स्थापित कर देता है। माता सीता ने भयंकर वनों में लक्ष्मण को एक ही अशुद्ध वाक्य कहा था, जिससे उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई। मेरे प्यारे, रावण के कारागार में सीता को जाना पड़ा। महाभारत काल में द्रोपदी ने मानो देखो, जब शब्दों से यह कहा था 'सम्मो ब्रणासि' कि अन्धे की सन्तान तो अन्धी होती है तो मानो देखो, दुर्योधन प्रतिज्ञाबद्ध हो गया। उन्हीं शब्दों के कारण मानो देखो, द्रोपदी को सभा में नग्न होने के लिए तत्पर होना पड़ा। यह सब शब्द की महिमा थी, इसलिए शब्दों को अशुद्ध न उच्चारण करो। शब्द पवित्र होना चाहिए। यही शब्द है, मानो जिससे मेरी प्यारी माता अपने पुत्र को माता मदालसा की भांति शब्दों से ब्रह्मवेत्ता बना देती है। वह शब्द ही है मेरे प्यारे! जिन शब्दों के कारण मानव आध्यात्मिक बन जाता है। हे माता! तू शब्दों को देती रही है। माता मदालसा जब बालक को लोरी पान कराती रहती तो उस समय कहती शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरंजनोऽसि। हे बालक! हे आत्मा! इस शरीर में रहने वाली आत्मा! तू सुन्दर है, तू पवित्र है, तू निरंजन है, अखण्ड रहने वाली है, बुद्धिमान है, महान है। हे आत्मा तू कदापि नष्ट नहीं होती।

जब माता अपनी लोरियों का पान कराकर, अपने बाल्य को उस प्रकार की वाणी से पवित्र बना जाती है, गृह अग्नि के काण्ड नहीं बनते। मेरे प्यारे! राष्ट्र समाज पवित्र बन जाते हैं।

लोरियों से ब्रह्मोपदेश

माता मदालसा अपने पुत्रों को पावन लोरियों का पान कराती हुई ब्रह्मविद्या का उपदेश देती रहती थी। विद्यालय में अध्ययन करने के पश्चात गृह में प्रवेश करने के पश्चात बेटा! देखा वह प्रतिज्ञाबद्ध है और उसने यह कहा कि मैंने दर्शनों में यह अध्ययन किया है, मैंने वेद मंत्रें में यह अध्ययन किया है कि ”राजस्वत प्रवेः वृद्धम ब्रह्मवाचः अस्वतम तेवो व्यापकम् ब्रह्मदेवः“ वेद का ऋषि उच्चारण करता हुआ ऊँचे स्वरों से ध्वनि से कहता है कि हे मानव! तू अपने मनस्तव को ब्रह्मवाद में ले जा, क्योंकि अपनी मानवीयता को तू जब ब्रह्मवाद में ले जाता जायेगा तो तेरी जीवन की जो प्रतिभा है, वह महत्ता में परिणाम होती रहेगी।

माता मदालसा वेद मन्त्रें का अध्ययन करती हुई, वेद मन्त्रें की ध्वनियाँ करती हुई जिससे अपने बाल्य को ऊँचा बनाने की प्रेरणा उसमें आती है और वह उसी काल में एकान्त स्थली पर विद्यमान हो करके वेदों का अध्ययन, दर्शनों की प्रतिभा, मानवीय दर्शनों को पढ़ती रहती, क्योंकि संसार का प्रत्येक प्राणी यह चाहता है कि मैं मानवीय दर्शन में रमण करने वाला बनूँ। अपने को जानना ही मानवीय दर्शन कहलाया गया है। जो मानव अपने को जानता है वह इस संसार की प्रतिभा को जानता है। 7 जनवरी, 1966, पुष्प 30

सृजन ही श्रृंगार है

वेद यह कहता है, धर्म और मर्यादा यह कहती है कि संसार में

माता का जितना भी श्रृंगार है वह माता की, पुत्री की वाणी में है। माता का श्रृंगार उसका गर्भाशय है, उसी से वह श्रृंगारित होती रहती है। उसी से वह मनोनीत हृदय को ऊँचा बनाती रहती है। जहाँ संसार में विज्ञान को अपने में ही धारण करते हुए मानवीयता को त्याग देते हो, जहाँ लोकाचार समाप्त हो जाता है, वहाँ मनोनीतता में अकर्त्तव्य की भावना आ जाती है, ऐसा हृदय ही अकृतों में जीवन को नष्ट कर देता है।

ज्ञान और विज्ञान माताओं का गहना बन कर रहा है। जैसे माता शरीर को आभूषण से सजाती है। इसी प्रकार मेरी प्यारी माता के पास ज्ञान और विज्ञान भी गहना बन कर रहा है। मेरी प्यारी माता के गर्भ स्थल में जब हमारे जैसे पुत्रों का निर्माण होता है। परन्तु जब उस निर्माणकाल में मेरी प्यारी माता इसके ऊपर विचार विनिमय करती है तो यह ज्ञान और विज्ञान उसका आभूषण बन जाता है। इसलिए मेरी प्यारी माताएँ परम्परागतों से इस विद्या को जानने वाली थी। ज्ञान और विज्ञानमय इस मानव समाज का जो निर्माण होता है वह माता के गर्भ स्थल में होता है। 13 अक्टूबर 1981, अध्यात्मवाद

आत्मविश्वासी माताएं

पुरातन काल में अपने में आत्मविश्वासी बन पुत्र को उत्पन्न करने वाली मदालसा जैसी और भी नाना विदुषियाँ हुई हैं जिन्होंने अपने गर्भ से ऋषि-मुनियों को जन्म दिया। वह श्रृंगार से युक्त नहीं रहती

थी। ऐसी मेरी प्यारी माताए सदैव विद्या का अध्ययन करती थीं। दर्शनों का अध्ययन भी उनका चलता रहता था।

आधुनिककाल की मेरी माताओं में आत्मविश्वास नहीं रहा तो वह इस समाज में ऊँचे पुत्रों को कैसे जन्म दे सकती है? हे मेरी माँ! तू पुनः से सदैव वेदों की उस महान् विद्या को, दर्शनों की आभा को अपना, जिससे तेरे में आत्मविश्वास हो। 28 अक्टूबर, 1960, लाजपतनगर, पुष्प 24

महान माता : श्रेष्ठ संतति

हे माता! तू संसार में मदालसा बन। कामधेनु बन करके संसार का उत्थान कर। मेरी प्यारी माता! आज तू संसार में महान् तब बनेगी, जब तेरे गर्भस्थल से महान् पुत्रों का जन्म होगा। चरित्रवानों का जन्म होगा। जब मैं इस संसार को यह दृष्टिपात करता हूँ कि आज का मानव पुत्रियों के श्रृंगार का अनायास ही हनन करना चाहता है तो मैं आश्चर्य चकित हो जाता हूँ। वह ब्रह्मचारिणी, माता, बहन और भौजाई की दृष्टि से संसार को दृष्टिपात करने के लिए तत्पर नहीं रहा। वह इतना धृष्ट बन गया है, उसका ब्रह्मचर्य दूषित बन गया है, विज्ञान के दुरुपयोग के कारण मन पर उसका संयम नहीं रहा। विचारना है, हे माता तुझे तपस्वी बनना है। तपस्वी बनकर के, तपस्वी सन्तानों को जन्म देने से तेरे गर्भाशय को लज्जित करने वाला, घृणित करने वाला पुत्र तेरे गर्भस्थल से उत्पन्न नहीं होना चाहिए। जो पुत्रियों के श्रृंगार का हनन करने वाला है, ऐसा जो

पामर ब्रह्मचारी है, ऐसा जो पामर मानव है राष्ट्रीय व्यवस्था से, उसे नष्ट कर देना चाहिए। 7 मार्च, 1982, पुष्प 39

जब माता मदालसा अपने गर्भ की आत्मा से अपनी वार्ता प्रकट करती थी। तो वो कहती थी बुद्धो, शुद्धो, निर०जनः मेरे प्यारे! ये तीन शब्द हैं, मानो देखो इन तीनों में ही यह संसार व्याप्त हो रहा है। मेरे प्यारे! बुद्ध, शुद्ध, निर०जन, मुनिवरों! देखो, बुद्ध कहते हैं बुद्धिमान को, शुद्ध कहते हैं पवित्र को और निर०जन कहते हैं बेटा! देखो, जो सदैव रहने वाला है, जिसकी मृत्यु नहीं हुआ करती है। तो बुद्ध, शुद्ध और निर०जनोऽसि यह माता की एक रचना रहती है और वो कहती है कि बुद्धं ब्रह्माः, हे बुद्ध! शुद्ध ब्रह्मः, तू शुद्धो बुद्धम् मानो देखो निर०जनोऽसि यह उच्चारण करती रहती, मेरे प्यारे! इनकी विवेचना होती रहती है और रात्रि समय जब माता शैय्या पर विराजमान होती तो उस समय अपनी आत्मा का गर्भ की आत्मा से मिलान करती रहती थी और यह कहती, हे आत्मा! तू बड़ी विचित्र है। हे आत्मा! तूने मेरे गर्भ में सहवास किया। तेरा आसन क्या है? तेरा ओढ़न क्या है? हे आत्मा! तू शरीर में वास कर रहा है क्या तेरे पास है? तो माता स्वयं उसकी विवेचना करती रहती है, ”आपो हिरण्यं ब्रह्माः आपो द्यु प्रमाणां ब्रह्मे“ मेरे प्यारे। वह कहती कि आपो ही तो तेरा आसन है, आपो ही तेरा ओढ़न है और आपोः ही तेरे पासे बने हुए हैं। आपोमयी ज्योति में तू रत रहने वाली आत्मा है। तू ऐसे आँगन में रमण करती रहती है जिसे हम जान भी नहीं पाते। तो मेरे प्यारे! माता इस प्रकार की शिक्षा गर्भस्थ आत्मा को देती रहती

थी। 10 अप्रैल, 1986, करनावल (मेरठ), वैदिक विज्ञान

२ मदालसा : व्यक्तित्व निर्माण

बहुत पुरातनकाल में मनु वंश की चर्चा आती है। हमारे यहाँ एक माता मदालसा सतयुग के काल में भी हुई। माता मदालसा को बाल्यकाल में पिता ने आचार्य कुल में प्रवेश कराया, क्योंकि आचार्य भी पिता होते हैं। आचार्य कुल में जब उनका प्रवेश हुआ तो वहाँ माता मदालसा का अध्ययन का विषय था परमाणुवाद। उस काल में उन्होंने विचारा कि मैं यदि गृहस्थ में जाऊंगी तो मेरा क्या-क्या कर्त्तव्य होगा। वह सदैव वेद की चर्चाएं, जो वैदिक साहित्य में आती हैं उनको अध्ययन करती रहती। एक समय बेटा माता मदालसा अध्ययन कर रही थी कि यदि मैं गृह में प्रवेश करूं और मेरे गर्भस्थल से बाल्य अथवा बालिका का जन्म हो तो वह कैसा हो? इस संसार में, प्रकृति की आभा में जो मानव रमण कर रहा है, वह मान अपमान में जी रहा है। इस समाज में जो अपनी मानवीयता को नष्ट करता है उसका पशु तुल्य जीवन होता है। मैं यह चाहती हूं मेरे गर्भ से बालक ब्रह्मचारी उत्पन्न होने वाला हो, वह इस संसार से उपराम होना चाहिए। उसमें यह विवेक होना चाहिए कि मैं कैसे अध्ययनशील बनूँ और कैसे मेरा यह कर्म बने? बेटा वेद में नाना प्रकार की विद्याएं आती हैं, उनका वह अध्ययन करने लगी। आयुर्वेद में उनकी परायणता को दृष्टिपात करके महर्षियों ने बेटा! उसको धन्य कहा। 10 दिसम्बर, 1981, त्रिनगर, पुष्प-39

माता मदालसा सोमकीर्ति ऋषि महाराज की कन्या थी। वह श्वेत ऋषि महाराज के द्वारा अध्ययन करती थी और स्वाति उनकी माता का नाम था। मदालसा का मनु वंश में संस्कार हुआ था। जब सर्व प्रथम उसके गर्भ की स्थापना हुई तो गर्भवती मदालसा योग में चली गयी। क्योंकि वह ऋषि के द्वारा योगाभ्यास करती थी। जब वह योग में परिणत हो गयी तो विचारने लगी कि मेरे गर्भ में कौन सी संस्कारी ऐसी आत्मा आयी है। जिसका मेरे जीवन से विशेष सम्बन्ध रहा है। कौन से जन्म का सम्बन्ध यह है। तो मुनिवरों! तुम्हें प्रतीत होगा, प्रव्हाण का जन्म उनके गर्भ से सबसे प्रथम हुआ। तो माता मदालसा जब योग से उस आत्मा के ऊपर अनुसंधान करने लगी जो गर्भ में स्थित थी, तो योग में उनके श्रोत्र मनस्तव प्राणस्तव चले गये प्रवृत्ति चली गयी। तब अपने पति से मदालसा कहती हैं जो उन्होंने अपने गुरु से भी कहा था, कि जो यह मेरे गर्भ में आत्मा आयी है, यह मेरे सौवें पूर्व जन्म के सम्बन्ध से आयी है। जिससे एक बाल्य, शिशु के परमाणुओं से मेरा सम्बन्ध हुआ है। मेरे प्यारे! वही आत्मा प्रव्हाण ऋषि के रूप में माता के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। 21, नवम्बर, 1981, मुज्ञफरनगर (यागमयी साधना)

माता मदालसा के मन में यह विचार आया कि मैं अपने गर्भ स्थल के परमाणुओं को गणना में लाना चाहती हूँ। कितने परमाणु गुरुत्व के है? कितने परमाणु मानो देखो तरलत्व के हैं? कितने परमाणु तेजोमयी के हैं? मानो देखो जब तीनों परमाणु सम होते हैं

तो जानो कि माता के गर्भ स्थल में पूर्ण आयु वाले पुत्रों का जन्म होगा। मेरे पुत्रे! देखो प्रायः माता इस बात को जानती रही है। माता मदालसा ने जब यह विचारा कि 'तेजोमयी के परमाणु विशेष हैं उससे निम्न मानो तरलत्व के हैं, उससे निम्न गुरुत्व के हैं तो मानो देखो माता का पुत्र योगेश्वर बनेगा। जब माता यह जान लेती है कि गुरुत्व परमाणु विशेष हैं, तरलत्व परमाणु उससे भी विशेष है और तेजोमयी परमाणु निम्न हैं, तो जानो कि गर्भ से जन्म लेने वाला पुत्र मुझे सुख नहीं पहुँचा सकता। तो मानो देखो माता मदालसा इस विद्या को जानती थी।

जब माता प्राण के माध्यम से प्राण की विद्या को ले करके संकल्पमयी विद्या के द्वारा अपने गर्भाशय के जीवाणु और परमाणुओं को जानकर के बालक की प्रवृत्तियों को गर्भ में जान लेती है तो वह मौन रहती है तो मानो देखो, बेटा कि माता अपने में बेटा! कितना प्रिय याग कर रही है। 15 मार्च, 1988, रासना, मेरठ (ज्ञान-कर्म-उपासना)

अध्ययन और तप

माता मदालसा जब विद्यालय में अध्ययन करती थी तो तप भी करती थी। जब वह पूज्यपाद श्वेतकेतु ऋषि महाराज के द्वारा अध्ययन कर रही थी, अध्ययन करते-करते वेद का मंत्र "श्रोत्रम् दधच्छता देवत्यम्लोकाः" आया। मन्त्र के शब्द की वर्तनी ध्यान आयी तो वह ऋषि से प्रश्न करने लगी। ऋषि ने कहा इसके ऊपर साधना

करो। मदालसा बारह वर्ष तपस्या में परिणत हो गई और साधना करने लगी। मदालसा जब साधना से तपने लगी तो बारह वर्ष के पश्चात् उन्होंने अपनी इन्द्रियों को प्राणत्व में तिरोहित कर दिया। जब श्रोत्र इन्द्रिय को जाना तो उन्हें अपने अन्दर ब्रह्माण्ड दृष्टिपात आने लगा। प्रत्येक इन्द्रिय के व्यापक स्वरूप को जानने का नाम तप कहलाता है। उसके ऊपर अनुसंधान करना, विचारना और उसके सूत्र में जिसका वो मनका है उसी सूत्र में पिरो देने का नाम तप कहा जाता है। 22 अप्रैल, 19679, अमृतसर, पुष्प 37

आचार्य कुल में संकल्प

देखो, जैसे मुझे स्मरण आता है माता मदालसा का जीवन। माता मदालसा के जीवन में एक महानता रही है। मैंने बहुत पुरातन काल में भी वर्णन किया था। माता मदालसा मुनिवरों! आचार्य कुल में जब अध्ययन करती रहती थी, तो एक समय अध्ययन करते-करते, उस युवा काल में "बाल्यां ब्रह्मसे" उन्होंने अपने आचार्य से कहा, "आचार्य मैं इस संसार में संतानों के जन्म के लिए नहीं हूँ। मैं वेदाध्ययन करने के लिए हूँ। तो मुनिवरां! देखो, ऋषि ने कहा-हे पुत्री! जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा ही करो। मेरे प्यारे! उनका अध्ययन चलता रहा, वेद में बेटा! जब नाना प्रकार के यागों का प्रकरण आया तो उसमें बेटा! सम्भोति एक याग का वर्णन आया। तब उन्होंने विचारा कि संतानोपार्जन करने में कोई अपराध नहीं है। यह तो मेरा सौभाग्य होगा कि मैं सन्तान को वेद या ब्रह्मवेत्ता बना

सकूं। तो उस काल में माता मदालसा के हृदय में एक आकांक्षा का जन्म हुआ। मेरे प्यारे! एक समय वह अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा, सायंकाल को अध्ययन कर रही थी। अध्ययन करते हुए उन्होंने कहा कि प्रभु! मेरी इच्छा यह है कि मैं गृह में तो प्रवेश हो सकती हूँ परन्तु मेरी इच्छा और है भगवन्! कि पांच वर्ष तक बाल्य को मेरी शिक्षा रहनी चाहिए। माता मदालसा ने जब ये कहा तो ऋषि ने कहा- "पुत्री जैसा तुम्हारा संकल्प हो, वैसा ही होगा।"

तप और चिन्तन

एक समय माता मदालसा भयंकर वन में यह मनन कर रही थी कि इन चन्द्र सूक्तों का जो मैंने पठन-पाठन किया है, इन सूक्तों का क्या रहस्य माना गया है? उन्होंने विचारा कि मेरी रसना में नाना प्रकार की नस-नाड़िया हैं। इन नाड़ियों का समूह पूर्णिमा के चन्द्रमा के आकार का बना हुआ है और उसमें से नाना प्रकार की तरंगों का प्रादुर्भाव हो रहा है। माता मदालसा समाधिस्थ हो करके यह विचार रही थी, कि चन्द्रमा की वह नाना प्रकार की कान्तियाँ अथवा वृत्तियाँ हैं, वे कहाँ जा रही हैं? मेरी प्यारी माता उसका अनुभव कर रही है कि वह तरंगें पुरातत नाम की नाड़ी से सोम बन करके जा रही हैं और वहाँ से चल करके लघु मस्तिष्क में जहाँ चन्द्रमा के आकार का एक नृत्य हो रहा है उसमें वह प्रवेश कर रही हैं और लोरियों से समन्वय हो करके माता गर्भ के शिशु को अमृत और अमृत का साकल्य दे रही हैं, जिससे बाल्य ऊर्ध्वा को गमन करते हैं।

गृह में दार्शनिक प्राणी होने चाहिए जो मेरी प्यारी माता के जीवन को ऊर्ध्वा गति में ले जाने वाले हों। उसी आधार पर जीवन की धाराएं रहनी चाहिए। माता मदालसा यह अनुभव कर रही थी कि यह चन्द्रमा की नाड़ी जा करके गर्भ में शिशु को अमृत का आदान प्रदान कर रही है। अमृत को पान करके माता के गर्भस्थल में जिस शिशु का निर्माण हो रहा है, उससे उन नाड़ियों का समन्वय रहता है, वह साकल्य कहलाता है। इसी प्रकार राष्ट्र में भी राजा एक साकल्य है, उसका कर्त्तव्य है कि वह प्रत्येक इन्द्रियों के विषय का साकल्य बनायें और विज्ञान की धाराओं में रत रह करके, अग्नि को उष्णता की धारायें बना स्वयं अग्नि समान तेजोमयी बन करके इस संसार का एक पिण्ड रूप बन जाये। उसी पिण्ड स्वरूप में यह नाना प्रकार की नस नाड़ियों में यह देवता गमन कर रहे हैं।

बेटा! मनन करते-करते माता मदालसा के विचार में यह नहीं आया कि नाभि का नाभि से समन्वय कैसे होता है? परमपिता परमात्मा ने जब सृष्टि का निर्माण किया तो इस पृथ्वी को नाभि कहा और कहीं- कहीं याज्ञिक दार्शनिक पुरुषों ने वेद के मन्त्रें को लेकर के यज्ञशाला को संसार की नाभि कहा है। माता की नाभि का समन्वय बाल्य की नाभि से हेता है और बाल्य की नाभि का समन्वय पंचीकरण में रहता है। पंचीकरण का समन्वय धाराओं से रहता है और धाराओं का जन्म तरंगों से और अणु-परमाणुओं से रहता है। मेरे प्यारे! यही तो लघु मस्तिष्क में रमण करते रहते हैं। जब भी संसार में अणु और परमाणुओं को जानने वाले जन रहे हैं तो उन्होंने

सबसे प्रथम इस पृथ्वी को नाभि बताया है और पृथ्वी के गर्भ में प्रवेश किया। पृथ्वी के गर्भ में जो धातुपिपाद पनप रहा है और एक दूसरे की आदानता-प्रदानता हो रही है, उसमें रमण करके पृथ्वी को नाभि के रुप में वर्णित किया है। यह पृथ्वी नाभि है परन्तु आगे प्रश्न यह आता है कि यज्ञशाला को नाभि क्यों कहते हैं? यज्ञ नाभि क्यों कहलाया गया है? यज्ञशाला का अभिप्राय क्या है? ”यज्ञो व्रणाम ब्रह्म व्रतम्।“ यज्ञशाला में रमण करने वाला याज्ञिक कहलाता है और यह जो यज्ञशाला जिसका एक आकार बना हुआ है यह पृथ्वी की नाभि है। जितने भी संसार के सु-क्रिया-कलाप हैं, चाहे वह विद्या का अध्ययन करना-कराना है, चाहे दार्शनिक बनना है, चाहे वह ब्रह्मवेत्ता बनना है, चाहे वह राष्ट्रवेत्ता बनना है। किसी भी प्रकार का वेत्ता हो, किसी भी धारा को अपनाने वाला हो, उन सब की याग से उत्पत्ति होती है। याग उसकी नाभि है।

मेरे प्यारे! सु-क्रिया करने वाला, वह चाहे इस पृथ्वी मण्डल पर गमन करने वाला प्राणी है चाहे सूर्य मण्डल या चन्द्रमा में हो, चाहे और नाना मण्डलों में हो, वह इस पृथ्वी को संसार की नाभि स्वीकार करता है। जैसे माता के गर्भ स्थल में एक नाभि है और उस नाभि का बाल्य की नाभि से समन्वय होता है। मेरे पुत्रों! संसार का जितना भी विज्ञान है, जितनी भी सु-तरंगे हैं उनका माता की नाभि और बाल्य की नाभि से समन्वय हो करके उन तरंगों का प्रादुर्भाव हो करके, उससे नाना प्रकार के मस्तिष्कों का निर्माण होता है और वह ब्रह्माण्ड और पिण्ड दोनों उसमे रत हो जाते हैं। इसी प्रकार नाभि

कहलाने वाला जितना भी वृत है, जितना भी संसार का क्रियाकलाप है, चाहे वह दार्शनिक हो या ब्रह्मवेत्ता हो, चाहे वह विज्ञानवेत्ता हो, चाहे मृत्यु०जय बनाने वाला हो चाहे वह अध्यात्म में रत करने वाला हो उन सबका एक ही मन्तव्य है वह अपने में नाभ्याम बनता है और उससे तरंगो का प्रादुर्भाव होता है। उसी से एकीकरण हो करके एक पिण्ड रूप बनकर के वह एक आकार बन जाता है। 19 फरवरी, 1992, लाक्षागृह बरनावा (अश्वमेघ याग और चन्द्र सूक्त)

वीरांगना मदालसा

वीरांगना माता मदालसा जब वेदज्ञान गाती थी तो सिंहराज भी उनके चरणों की वन्दना करते रहते थे। वीर्यत्व की रक्षा करने वाला ब्रह्मचारी बन जाता है परमात्मा के ब्रह्मज्ञान को वह मानव चरने लगता है और प्रकृतिवाद को ज्ञान के रूप में दृष्टिपात करके वह आभा में परिणत हो जाता है। वही परमाणु वीरांगना के रूप में पुत्री में होता है। इन्हीं परमाणुओं की रक्षा करने वाली मेरी प्यारी पुत्री वीरांगना बन जाती है। सिंहराज से वार्ता प्रकट करने लगती है। वह वेदाम् ब्रह्माव्रतम् देवो। इन परमाणुओं की रक्षा करने वाला संसार में अभय बन जाता है, निर्भय हो जाता है। 24 मार्च, 1986, ग्रा. रासना (मेरठ), पुष्प-53

३ गृहस्थाश्रम में प्रवेश व सन्तति निर्माण

तप और संकल्प से पुत्र का निर्माण

माता मदालसा ने अपने आचार्य कुल में वेद का अध्ययन करते हुए वेद मन्त्रें और दर्शनों की आभा में प्रवेश होकर यह अध्ययन किया कि ”माता वह कहलाती है जो अपने गर्भ से ऐसी संतान को जन्म देने वाली हो जो मानो देखो, ब्रह्मवेत्ता बनकर के परमपिता परमात्मा का दिया हुआ जो अनुपम ज्ञान है, वेद की जो प्रतिभा है, उसका प्रसार करने वाली हो। देखो, अपने उद्धृत रूप में प्रवेश करने वाला हो, ऐसी माता विचारती रहती है। मेरे पुत्रों! इस प्रकार की विद्या का जब अध्ययन किया जाता है तो माता वास्तव में इस प्रकार की आभा में परिणत हो जाती है। माता मदालसा अपने में यह विचारती रहती थी कि वैसे तो मैं गृह में नहीं जाना चाहती हूँ और गृह में यदि किसी कारण से मेरा प्रवेश होगा तो मैं ऐसी सन्तान को जन्म देना चाहूँगी जिससे वह सन्तान ब्रह्मवेता बन के और ब्रह्म के ऊपर विचार-विनियम करके, मानो देखो विवेकी बनकर के वह परमपिता परमात्मा का जो अनन्तमयी, जो मोक्षमयी पगडण्डी है उसे वो ग्रहण करने वाला हो।

माता मदालसा मानो देखो वह अपने में यह विचारती रहती थी। कुछ समय के पश्चात उनके गृह में ब्रह्मणां ब्रभे कृतं लोकाम्, जब उनका गृहस्थ में प्रवेश हुआ, गृह में प्रवेश होते ही मेरे प्यारे! देखो, जब वह अप्रतिम आत्मा उनके गर्भ में प्रवेश हो गयी तो उस आत्मा से वह चर्चा करती रहती थी, मानो देखो, शान्त ब्रह्मा अपनी सर्वत्र प्रवृत्तियों को एकाग्र करती हुयी वह अपने शिशु से वार्ता प्रकट करती रहती; हे शिशु! मेरे गर्भ में तेरा आगमन हुआ है, तू तो सदैव

निसम्भं ब्रह्े अस्तुतः अव्यय है, अभ्युदय होने वाला है। मानो तू निर०जन है, अखण्ड है, सम्भूति ब्रह्मणा लोकाः है। मानो देखो, यह वार्ता अपने शिशु से प्रकट करती रहती है, हे आत्मा! तू अजर है, अमर है, अभय और नित्य है। तेरा किसी भी काल में विनाश नहीं होता है। हे आत्मा मेरे गर्भ में तेरा प्रवेश हुआ है, मैं नहीं जानती कि तू बनना क्या चाहता है? मेरे प्यारे! देखो, वह आत्मा जब इस संसार में आया तो देखो, माता मदालसा उसे संस्कार देती रही, विचार देती रही। संस्कारों का अभिप्राय है कि वह विचार देती रही और विचार मानो देखो, वेद मन्त्रें की प्रतिभा कहलाती है। 16 फरवरी, 1989, स्वेहड़ी (बिजनौर)

विवाह संस्कार

कुछ समय के पश्चात मनु वंश में एक राजा हुए स्वन्त आनन्तु शत्रुजित के पुत्र ऋतध्वज मनु महाराज। उनके पिता उन्हें राज्य दे करके जब सन्यास को प्राप्त हो गए। परन्तु वह राजा बने तो उन्होंने विचारा कि अब संस्कार भी होना चाहिए। उन्होंने बेटा! पोलक (कुजुंक) ऋषि महाराज से यह प्रार्थना की कि यह तुम्हारे विद्यालय में कन्या जो शिक्षा पाती है इससे मेरा संस्कार होना चाहिए। उन्होंने कहा, तुम (पोलक ऋषि) मदालसा से प्रश्न करो? राजा कन्या के द्वार पर पहुंचे। उन्होंने कहा, हे देवी! मैं अपना संस्कार तुम्हारे कर कमलों द्वारा कर, अपने गृह को पवित्र बनाना चाहता हूँ। मेरे प्यारे! मदालसा ने कहा, हे राजन्! मुझे स्वीकार है। परन्तु मेरी कुछ वार्ताएं

हैं, मैं संकल्पबद्ध हूं और संकल्पबद्ध ही रहूंगी। राजा ने कहा देवी। जैसी तुम्हारी इच्छा है तो उन्होंने (मदालसा) कहा, मैं जब गृह में प्रवेश करूँ, तो मेरी स्वेच्छा से ही सन्तान का जन्म हो। राजा ने उस वाक्य को स्वीकार किया। उन्होंने (मदालसा) कहा पाँच वर्ष तक मेरी शिक्षा होनी चाहिए। उन्होंने कहा हे देवी! जैसी तुम्हारी इच्छा हो। उन्होंने यह वाक्य स्वीकार कर लिया। राजा ऋतध्वज और मदालसा दोनों ऋषि के द्वार पर पहुंचे और ऋषि से कहा हम दोनों ने विचारों को कटिबद्ध कर लिया है। संकल्पमय बना लिया है। मेरे प्यारे! संकल्पमय बनते हुए दोनों का संस्कार हुआ। संस्कार होने के पश्चात् माता मदालसा और राजा बहे प्रणास्तमम् ध्रः अप्रेति देवः दोनों मनु वंश में जा पहुंचे। अयोध्या उस समय उनका राष्ट्र था। हमारे यहां ऐसा माना गया है कि भगवान मनु ने सबसे प्रथम अयोध्यापुरी का निर्माण किया। क्योंकि यह जो अयोध्या थी इससे समुद्र कुछ ही दूरी पर था। समुद्रों की आभा में उसको निहारते रहते थे। अष्टचक्र और नौ द्वार जैसे, मानव पुरी का निर्माण प्रभु ने किया जिसमें आठचक्र हैं और नौ द्वार हैं। मेरे प्यारे! ऐसे ही अयोध्यापुरी का निर्माण किसी काल में स्वयंभू मनु ने किया था। 10 दिसम्बर, 1981, त्रिनगर (नई दिल्ली), पुष्प-39

गुरु आश्रम में

माता मदालसा जब वह गर्भ की पूर्णता में थी, एक समय अपने पति से बोली कि हे प्रभु! मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कुछ

प्रतिज्ञायें की हैं, कुछ संकल्प किए हैं। जिन्हें पूर्ण करना है। मेरे गर्भ में शिशु का प्रवेश हुआ है, मेरी इच्छा ऐसी है कि मैं अपने आचार्य कुल में भ्रमण करना चाहती हूँ। मनुवंश में उत्पन्न होने वाले उनके राजा (पति) मदालसा को अपने वाहन में ले करके कदली वनों में, जहाँ उनके पूज्यपाद गुरुदेव का आसन था, उस आसन पर पहुँचे। विद्यालय में उनका प्रवेश हुआ तो उनके आचार्य ने कहा, "देवी 'प्रहो सम्भवा कुत्रे' हे पुत्री! आओ विराजो! माता मदालसा विराजमान हो गई। आचार्य ने कहा 'राहो सम्भवा सूत्रम् ब्रह्मवाचो देवाः"। उन्होंने कहा हे पुत्री् तुमने बड़ा अध्ययन किया है। दर्शनों और विशेषकर आध्यात्मिकवाद में तुम्हारी बड़ी विचित्र गति रही है। मैं आध्यात्मिकवाद के वाङ्मय में प्रवेश हो करके तुमसे यह जानना चाहता हूँ कि 'कस्मात् ब्रहे सूत्रें भवा सम्भवा' तुम्हारे अन्दर कौन शिशु है, जो सूत्र बना हुआ है।

तब माता मदालसा ने कहा, "हे प्रभु! इस ब्रह्माण्ड का जो सूत्र है, वह परमपिता परमात्मा है जो शिशु रूप में इस ब्रह्माण्ड का सूत्र बना हुआ है। जब भी लोक-लोकान्तरों के ऊपर विचार विनिमय किया जाता है, पृथ्वी को पिण्ड के रूप में चिन्तन किया जाता है, अग्नि की प्रदीप्त होने वाली विशालता का वर्णन किया जाता है अथवा समुद्रों में जो जलाशय अपने में सुगठित हो रहा है, उसके ऊपर विचार विनिमय किया जाता है तो वह एक शिशु ही सूत्र रूप में दृष्टिपात आता है। वह इन सबको धारण किये हुए है, वह सबका सूत्र बना हुआ है। जैसे कोई माला है, माला का एक सूत्र है, जिसमें

नाना प्रकार के मनके जब पिरोये जाते हैं तो माला दृष्टिपात होने लगती है। इसी प्रकार यह ब्रह्माण्ड एक माला के रुप में ही दृष्टि पात आ रहा है। उस समय उनके गुरु ऋषि ने कहा पुत्री! तुम्हारा उत्तर यथार्थ है परन्तु यह मेरा एक प्रश्न और है, 'ममत्वाम् ब्रह्मः स्वस्वाताम् सूत्रें भवा शिशु'। वेद के आचार्य ने कहा हे पुत्री! तुम्हारे गर्भस्थल में कौन सूत्र है, कौन मनके है? माता मदालसा ने कहा हे प्रभु! सूत्र रुप में तो आत्मा है और वह जो नाना प्रकार के परमाणु हैं, कोई वायु का परमाणु है, कोई अग्नि का है परमाणु कोई अपने में आपोमयी माना गया है, कोई पृथ्वी का परमाणु है, कोई तेजोमयी सूर्य की उष्णता है, कहीं अमृतमयी चन्द्रमा की शीतलता है। आकाशमयी अन्तरिक्ष है उन सर्वत्र जितने मनके हैं, इन मनको का जो सूत्र है मेरे गर्भ स्थल में जो आत्मा है वह आत्मा सूत्र बना हुआ है। वह शिशु रूप में विद्यमान है। जब गर्भ में आत्मा का प्रवेश हुआ, तभी से सभी देवता 'सर्वत्र ऋद्धो' इन मनको को पिरोने लगे। यह मनके पिरोए जाने से एक माला बन गई है और वह माला कैसी विचित्र बन जाती है कि जिसमें मानव का स्थूल रुप बन जाता है। उसी शरीर में उसका सूक्ष्म और कारण शरीर भी निहित हो जाते हैं। माता मदालसा ने कहा, 'हे भगवन! हे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! आप तो महान् हैं। परन्तु देखो मैंने जो दर्शनों में अध्ययन किया है, वह दार्शनिक विचार यह कहता है कि आत्मा के गर्भ स्थल में आत्मा शिशु है और बाह्य जगत में, ब्रह्माण्ड में, परमपिता परमात्मा शिशु के रुप में रहता है। इस ब्रह्माण्ड को जो धारण कर रहा है, ब्रह्माण्ड का

जो सूत्र बना हुआ है, जो ब्रह्माण्ड में नाना प्रकार की जो माला बना देता है और वह संसार की माला पाँच मनको से है। संसार के पाँच ही मनके कहलाते हैं और पाँच ही मनके आत्मा सहित इस शरीर में रहते हैं। शरीर की माला के रुप में तो पाँच मनके पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ कहलाती हैं और ब्राह्य जगत में वही पाँच मनके पंच महाभूत कहलाते हैं। एक-एक रुप में यह पाँच-पाँच मनको की माला कहलाती है। इन पंच महाभूतों से भिन्न-भिन्न प्रकार के द्रव्यों का जन्म हो जाता है और वह परमाणु रुप में गुथ्ाः जाती हैं। वही परमाणु सूक्ष्म बन करके अन्तरिक्ष में गति करते रहते हैं।

माता मदालसा ने जब बुद्धियुक्त दर्शन की चर्चाएँ कीं तो ऋषि ने कहा, ‘हे पुत्री! तुम्हें धन्य है, जो तुमने ब्रह्मचर्य आश्रम में पान किया है, वह अध्ययन तुम्हारा ज्यों का त्यों है। उसकी आभा एक महानता में सदैव रत रही है। देवी! तुम्हारा वाक्य यथार्थ है। एक समय जब हमारा बाल्यकाल का समय था, उस समय हम ऋषि-मुनियों की सभाओं में इसी प्रकार का विचार-विनिमय करते रहते थे। ऋषि-मुनियों के जो विचार होते हैं वह बड़े सार्थक और गम्भीर कहलाते हैं। वह एक-एक वाक्य पर अनुसंधान और उस पर वैज्ञानिक और आध्यात्मिक रुपों से उसका निरुपण करते रहे हैं। माता मदालसा और ऋषि दोनों का सर्वत्र दिवस इसी प्रकार विचार-विनिमय होता रहा। इसके पश्चात् वह अपने गृह में चली गयी। 20 नवम्बर, 1985, गाजियाबाद, पुष्प-53

श्वेत केतु ऋषि से वार्ता

माता मदालसा एक समय श्वेतकेतु ऋषि के आश्रम में विद्यमान थी। उन्होंने ऋषि से यह प्रश्न किया कि 'हे प्रभु! मैं ममतामयी बनूंगी, परन्तु मैं याज्ञिक भी बनना चाहती हूँ। मै याग कैसे करुँ? श्वेतकेतु ऋषि ने कहा, "हे देवी! तू याग करना चाहती है तो सुयोग्य सन्तान का होना ही तेरा याग है। वह एक पवित्र याग है। यदि तू अपने गर्भ से एक राजा को जन्म दे देती है और वह राजा कर्त्तव्यवादी बनता है, वह अश्वमेघ और गौ मेध याज्ञिक बन जाता है तो हे पुत्री! तेरा जीवन भी याज्ञिक बन जायेगा। वेद की आभा में रमण करने वाला ऋषि कहता है, "हे मदालसा! तेरा जीवन महान हो जायेगा।" माता मदालसा, इतने वाक्य श्रवण करके याज्ञिक बनना अर्थात मूल के अंकुर से वृक्ष बनाना जानती थी। मेरे प्यारे! उन्होंने अंकुर से वृक्ष का निर्माण किया। कुछ समय पश्चात जब माता मदालसा के प्रथम पुत्र का जन्म हुआ तो वह उस पुत्र से वार्ता प्रकट करती रहती थी। उसकी आत्मा से वार्ता प्रकट करती हुई कहती थी कि तू निरञ्जन आत्मा है, जो इस शरीर में भास रहा है, परन्तु यह जो संसार है इससे तुझे उपराम होना है। यह संसार विवेकी पुरुषों का है। माता मदालसा ऐसे शब्दों का उच्चारण आत्मीयता से करती रहती थी। 21 अक्टूबर, 1981, लाजपत नगर, नई दिल्ली, पुष्प-40

सुकेतम वाचकेतु ऋषि से वार्ता

जब माता मदालसा, गर्भवती थी तो जो आत्मा उनके शरीर में

विद्यमान है, उससे गर्भाशय में समाविष्ट हो करके अपने मनस्तर्त, प्राणत्व की आभा को एकाग्र करके, वह आत्मा से चर्चा करती थी। आत्मा से वार्ता प्रकट करना चाहती है तब वह कहती है, हे आत्मा! तेरा मेरे शरीर में, मेरे गर्भाशय में प्रवेश हुआ है। मैं नहीं जानती इसका मौलिक कारण क्या है? आत्मा तेरे से मेरा क्या सम्बन्ध है? मैं यह नहीं जान पाती। परन्तु देखो 'आत्म ब्रह्मवाचों' वह उसके पश्चात और गम्भीर अध्ययन करती और अध्ययन करती हुई कहती, "शुद्धम ब्रह्म प्रहे लोकाम्" हे आत्मा तू तो शुद्ध है तो जब शुद्ध का प्रतीक हो गया 'बुद्धं ब्रह्माः' तब कहती तू बुद्ध भी है अखण्ड रहने वाली है और तू निरंजन भी है। तो तू तीनों रूपों में रत रहने वाली है। परन्तु मैं नहीं जान पायी कि इसके पश्चात् भी तू नार्किक क्षेत्र में क्यों आ पहुंची है? 'नखद ब्रह्मः वाचम ब्रह्म लोकाम्' वेद का ऋषि कहता है कि आत्मा के लिए नार्किकता सही है कि उसे शरीर के लिए परमाणुओं का सहयोग लेना है उसका सूत्र बनाना है। जब तब सूक्ष्म शरीर बनता है। आत्मा का स्थूल से अर्थात व्याप्य और व्यापक दोनों का समन्वय हो जाता है। तब शरीर बनता है। माता मदालसा इसी प्रकार अपना अन्वेषण और अनुसंधान करती रहती थी और विचार विनिमय करती रहती थी।

एक समय प्रातःकालीन वो चिन्तन कर रही थी, तो कहीं से महर्षि सुकेतम् वाचकेतु ऋषि महाराज भ्रमण करते हुए वहाँ आ गये। राष्ट्र गृह में उनका प्रवेश हुआ तो माता मदालसा ने ऋषि के चरणों को स्पर्श करके उन्हें आसन दिया और कहा, "आइये भगवन।

विराजिए। वह विराजमान हो गए। ऋषि ने कहा, 'देवी! कहो तुम अब क्या चिन्तन कर रही हो? गर्भवती माता मदालसा ने कहा, "प्रभु मैं शिशु के ऊपर चिन्तन कर रही हूँ। क्योंकि अब मैं शिशु का बाह्य जगत् बना रही हूँ, उसका अन्तर्जगत् बना रही हूँ। ऋषि ने कहा हे "मातम् ब्रह्मः" देवी बाह्य जगत क्या है, और अन्तर्जगत क्या है? मदालसा ने कहा कि अन्तर्जगत में तो मैं गम्भीरता में एक ही चिन्तन और मनन करती रहती हूँ। उससे ही उस मेरे शिशु का देखो अन्तर्जगत बनेगा और बाह्य जगत के लिए मैं यह चाहती हूँ कि यह जो संसार की मोह ममता है, संसार का यह जो विडम्बनावाद है या प्रपंचवाद है, इससे मेरा बाल्य उपरामता को प्राप्त हो जाए, जिससे वह आत्मवेत्ता बन करके, ब्रह्मवेता बन करके ब्रह्म की आभा में सदैव वह रत होता रहे और ब्रह्म से ही वार्ता प्रकट करता रहे।

ऋषि ने कहा देवी! यह जो राष्ट्र है यह कैसे महान बनेगा? तुम्हारे गर्भ से राजा उत्पन्न होना चाहिए। तुम ब्रह्मवेता पुत्र चाहती हो, तो माता मदालसा ने कहा कि राष्ट्रवेत्ता तो नार्किकवत् कहलाता है क्योंकि दूसरों के ऊपर जो मानव शासन करता है, जो उसकी शासन प्रवृत्ति है यह एक नार्किकता के विचार हैं, क्योंकि वह सदैव इसी आभा में लगा रहता है कि मैं इसके ऊपर कैसे अनुशासन करुँ? यह राजा है, दूसरे राज्य को विजय करके मैं कैसे इन पर अनुशासन करुँ। प्रजा के ऊपर मेरा आधिपत्य कैसे हो? इस कारण वह रजोगुण तमोगुण की प्रतिभा को अपनाता है, परन्तु जो आत्मवेत्ता हेता है आत्माज्ञानी होता है ब्रह्मवेत्ता होता है वह राष्ट्रवेत्ताओं से ऊर्ध्वा

में गति करता रहता है। वह राजाओं को भी शिक्षा देता है, उनसे कहता है कि राजन्! तू सुचरित्रता को अपना करके, महानता को अपना करके, तू याज्ञिक बन करके, तू याग के क्रिया कलाप में परिणत हो जा। माता मदालसा ने कहा, "मैं यह चाहती हूं कि मेरा बाल्य ऐसा हो जो तत्वों के ऊपर अन्वेषण करने वाला हो, अपने मानवीय जीवन को वह परम पिता परमात्मा की प्रतिभा से मिलान करने वाला हो। वह ज्ञान-विज्ञान मानव-पिता के समीप होना चाहिए। वही यथार्थ में ज्ञानी होता है। जो विवेकता में अपने को परिणत करा देता है और जितना भी ज्ञान और विज्ञान है उसकी आभा में रत रह करके आध्यात्मिकवाद में प्रवेश करता है।

ऋषि ने कहा कि देवी! यह तो यथार्थ है परन्तु मैं यह जानना चाहता हूँ, तुम यह प्रेरणा कहाँ से लेती हो? कहाँ से तुम्हारे हृदय में यह आकांक्षा जागरुक हुई, क्योंकि यह गृह तो राष्ट्रगृह है, राष्ट्रगृह का अन्न भी दूषित होता है। राष्ट्र के अन्न को तुम ग्रहण करती हो और कहते हैं कि अन्न से मन की उत्पत्ति है। जब अन्न की उत्पत्ति ऐसे मानी गयी है तो यह उत्तम विचारों का प्रादुर्भाव कहाँ से हुआ? तब माता मदालसा ने कहा हे ऋषिवर! मुझे यह प्रतीत है। मैं उस अन्न को पान करती हूँ, जिस अन्न से मेरी प्रवृत्ति ऊँची बनी रहे, जिससे मेरी अन्तरात्मा में घृणात्मक विचार न आ पाए। मै सदैव उस अन्न को ग्रहण करती हूँ जिस अन्न पर राष्ट्र का क्या किसी मानव का भी अधिकार नहीं होता। मेरे हृदय की यह आकांक्षा रहती है कि मेरे गर्भ से ऐसे बालक का जन्म हो जो राष्ट्रवेत्ताओं को शिक्षा देने वाला

हो, ब्रह्मज्ञानी हो। ब्रह्मज्ञानी किसे कहते हैं? जो अपनी प्रत्येक इन्द्रियों के देखो विषयों का ज्ञान "अप्रताम् ब्रह्मः" समष्टि और व्यष्टि में प्रवेश हो जाए। समष्टि और यष्टि को विचार विनियम करने वाला हो। मुझे कुछ ऐसा स्मरण है कि माता मदालसा इस प्रकार की ऋषि से जब वार्ता प्रकट कर रही थी, तो उन्होंने (ऋषि ने) कहा हे देवी! मैं यह जानना चाहता हूँ यह ब्रह्मज्ञान क्या है? माता मदालसा ने कहा कि ब्रह्मज्ञान उसे कहते हैं जिस ज्ञान में अपनी प्रत्येक ज्ञान इन्द्रियों का सांकल्य बना करके उनके गुण रूप, रस गन्ध शब्द और स्पर्श इन सबको एकत्रित करता हुआ जो पंचमहाभूत (पृथ्वी, जल, अग्नि अन्तरिक्ष वायु) के गुण कहलाते हैं वह उनमें दृष्टिपात करता है और प्रत्येक ज्ञानेन्द्रियों में इनमें दृष्टिपात करके, इनका साकल्य बना करके और जो अपने अन्तर्हृदय में जो ज्ञान रूप अग्नि प्रदीप्त हो रही है उनमें इन साकल्यों की जो आहुति देता है, स्वाहा कहता है और स्वाहा कह करके आहुति दे देता है, वह मौन होकरके अपने अन्तरात्मा से याग कर रहा है। वह ब्रह्मज्ञान के लिए मोक्ष की पगडण्डी को ग्रहण करना चाहता है, वह एक-दूसरे को ऊँचा बनाना चाहता है। ज्ञान और विज्ञान में विचरता है। संसार में जितना ज्ञान विज्ञान है इसे हम भौतिकवाद कहते हैं। यह भी पाँच ज्ञान इन्द्रियों का ही पंचीकरण कहलाने वाला व्रत कहलाया जाता है। जब वैज्ञानिक अपने में अनुसंधान याग करता है कि मैं प्रकृति के इस ब्रह्माण्ड के सूत्रें को जानना चाहता हूँ। तो वह पाँच सूत्रें को जानने में लग जाता है और पाँच सूत्रें में जब सूत्रित होता है तो पंचीकरण

बनाता हुआ पाँच प्रकार की प्रकृति की गति (गति, ध्रुवा, ऊर्ध्वा प्रासारण और आकुंचन) उस पर विज्ञान पंचमहाभूत और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ निहित हो जाती हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रियां में समाहित हो करके चित्त के मण्डल में प्रवेश हो जाता है। तब चित्त के मण्डल को दृष्टिपात करता हुआ यह मन विचारता है, कि अरे! यह आत्मा तो स्वयं जागरुक भी नहीं है जो हमें जागरुक करता है। इसे कौन जगाता है? यह 'मनम् ब्रह्माः' जिससे यह शरीर जागरुक रहता है। आत्मा का प्रकाश आया, नेत्र अपना क्रिया-कलाप करना प्रारम्भ करने लगते हैं; वह दृष्टिपात करने लगते हैं। अन्य ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ भी क्रिया-कलाप प्रारम्भ कर देती हैं।

वेद की विदुषी ने उत्तर दिया, हे ऋषिवर! 'ब्रह्म वाचो प्रहे कृताम् लोकाम् ब्रह्मा वसुसम्भवो लोकाम्' हे भगवन! वह जब शरीर जागरुक रहता है तो अपने कुटुम्ब और राष्ट्र का परिचय दे रहा है, नाना पदार्थों का परिचय दे रहा है, नेत्रें से दृष्टिपात कर रहा है, मन के विकल्प हैं। वह परिचय देता हुआ ऊर्ध्वा में गति करता है और जब शरीर यह जागरुक नहीं रहता तो स्वप्नवत् रह जाता है इस अवस्था में हमारे चित्त के मण्डल में जो सूक्ष्म-सूक्ष्म अंकुर रहते हैं उन अंकुरों को हम साकार रूप में भोगने लगते हैं। इन साकार रूपों के स्वप्नवत् के भी क्रिया-कलापों को आत्मवेत्ता (ब्रह्मज्ञानी) नष्ट कर देता है, उन संस्कारों को उपजने नहीं देता क्योंकि चित्त के मण्डल में अंकुर रूप में संस्कार विद्यमान रहते है। वहाँ पति नही होते, किन्तु पतियों का निर्माण हो जाता है। वहाँ राष्ट्र, नदियाँ और समुद्र नहीं होते किन्तु

अंकुर रूप में विद्यमान हैं, जिससे उसको उनका निर्माण होता रहता है। अंकुरों के रूप में ही वह संस्कार अपने में क्रिया कलाप करते रहते हैं। वही तो संस्कार हैं जिनसे माता के गर्भ मे आत्मा प्रवेश करती है। क्योंकि वह माता उनको जानते हैं और उस आत्मा के संस्कार क्योंकि माता को जानते हैं। दोनों के संस्कारों का जब समन्वय होता है तो पुत्र और पुत्रियों के रुप में उनका मिलन होता रहता है और उससे गर्भ से बालक का जन्म होता रहता है। माता मदालसा ने आगे कहा जहाँ तक मेरा विचार है, जैसा मैं आचार्य के कुल में अध्ययन करती थी। मैं उस आश्रम में प्रथम आभा में रत रही हूँ, द्वितीय आभा में भी रही हूँ क्योंकि अब ब्रह्मज्ञान मेरे अन्तर्हृदय में समाहित हो गया है। तो अब वही आत्मा मेरे समीप आयेगी जिन आत्माओं से किसी काल में मेरा समन्वय और सम्बन्ध रहा है। वही आत्मा देखो ब्रह्मज्ञानी बनकर के मेरे समीप आयेगी। जैसे आचार्यगुरुकुल में गुरु सभी ब्रह्मचारियों को उपदेश देता है किन्तु कोई-कोई ब्रह्मचारी ऐसा संस्कारी होता है जिस ब्रह्मचारी को आचार्य विशेषकर अपनी विद्या को प्रदान कर देता है। इसी प्रकार माता भी गर्भ में अपने पुत्र को अन्तर्जगत या बाह्य जगत में सर्वत्र अपना किया हुआ जो पुरुषार्थ है, उसके विचार विनिमय करने वाले जो संस्कार हैं उसे वह प्रदान कर देती है। गर्भवती माता को स्वप्न भी नहीं होना चाहिए। यह स्वप्न भी संस्कारों का समूह है और जब मानव स्वप्नवत भी नहीं रहता तो यह मन, बुद्धि, चित्त अहंकार जो अन्तःकरण कहलाता है, मन प्रकृति का सूक्ष्मतम कण सिद्ध होता है

इस लिए यह जड़वत सिद्ध होता है। स्वप्न में मन को कुछ भी भान नहीं होता। यह साम्य अवस्था में जब परिणत हो जाता है तो यह सुषुप्ति अवस्था कहलाती है। मानव जब सुषुप्ति में चला जाता है उस अवस्था में मन बुद्धि में, बुद्धि चित्त में, चित्त अहंकार में प्रवेश कर जाता है। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार बन कर यह अन्तःकरण बन जाता है उस समय यह अपनी मन साम्य अवस्था में विश्राम कर जाता है। परन्तु यह जो शरीर है ऋषिवर! यह शरीर ज्यों का त्यों जीवित रहता है। उस समय वह जीव सत्ता कैसे रहती है? वेद का मन्त्र कहता है 'प्राणां मम् वृद्ध' आत्मा, प्राण आत्मा की गति उस अवस्था में ज्यों का त्यों बनाये रखता है। तो यह प्रकृति का जितना मण्डल है, वह उस अवस्था में समाप्त हो जाता है और मुनिवरों! प्राण के साथ में जो आत्मा गमन करता है उसी को तो योगी जानकर के ब्रह्म की आभा में रत हो जाता है। वही ब्रह्म ज्ञानी है जो उस प्राण की और आत्मा दोनों को जानकर स्थिर हो जाता है और विभूति पाद में परिणत हो करके विभूतियों को जागरुक करने लगता है। मन तो चित्त के मण्डल में निहित रहता है, वही संस्कार रहते हैं। तो मेरी इच्छा ऐसी है ऋषिवर कि मेरे गर्भ से जिस बालक का जन्म हो ब्रह्मः कृताम लोकाम् उसके द्वारा आवागमन का ऐसा ज्ञान होना चाहिए। ऐसी मेरी उत्कृष्ट इच्छा है कि आवागमन के संस्कार उसके चित्त मण्डल में न रहें, मेरा जीवन उसी काल में सफल होगा। जब ऐसा बाल्य होगा।

माता मदालसा अपने में बहुत विदुषी थी वह सदैव महानता में

गति करती रहती थी। हमारे यहाँ संतान को जन्म देना भी एक याग कहलाया गया, जिससे माता अपने जीवन को सफल बना सकती है। उसके द्वारा माता पुरुषार्थ कर सकती है, कितने तपां में रत रहकर अपने जीवन को सफल बना सकती है। 20 नवम्बर, 1985, कविनगर (गाजियाबाद), पुष-53

प्रस्केतु मुनि से वार्ता

एक समय बेटा! माता मदालसा के गर्भस्थल में जब आत्मा का प्रवेश हुआ तो महर्षि प्रस्केतु मुनि उस समय उनके पूज्यपाद गुरु थे, वे वहाँ पहुँचे। मदालसा ने उन्हें आसन से युक्त किया, आइये, भगवन! उन्होंने मदालसा से कहा हे पुत्री! मैंने यह श्रवण किया है कि आत्मा से तू चर्चा करती रहती है, माता मदालसा ने कहा प्रभु! हे पूज्यपाद! मैं आत्मा से वार्ता तो कर लेती हूँ परन्तु आत्मा की जो प्रतिभा है, मेरे से दूर रहती है। मैं निर्माणवेत्ता को जानना चाहती हूँ। एक महतत्व की प्रतिभा आकर के बिन्दु-रूप में एक निर्माण की धारा वृत्त होती रहती है, मैं उसे जानना अवश्य चाहती हूँ। मेरे प्यारे! माता मदालसा को ऋषिवर ने कहा हे पुत्री! इसके ऊपर और चिन्तन करो, गम्भीर चिन्तन करो। बेटा! देखो, नवधा में से कुछ मन्त्रें को लिया। नवधा में से सूत्रें को लेकर के उन्होंने अध्ययन करना प्रारम्भ किया। बेटा मुझे स्मरण ऐसा आता रहता है कि ऋषियों ने ऐसे बहुत से स्पष्टीकरण कराते हुए कहा है कि आत्मा से यदि तुम्हें वार्ता प्रगट करनी है तो तुम अन्तर्मुखी हो जाओ। अन्तर्मुखी होकर के तुम

आत्मा से चर्चा करने का प्रयास करो।

तो मेरे पुत्रों! ऐसा मुझे कुछ स्मरण है कि माता मदालसा ब्रह्म विद्या में चली जाती, और अपने अन्तर्हृदय में आत्मा की जो किरणें उत्पन्न होतीं, उन किरणों को जानती रहती। माता अपना भाव दे रही है, बुद्धिमत्ता दे रही है, संसार का शाकल्य भी परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान की चर्चा कर रहा है। मेरे प्यारे! माता उसे एक नवीन प्रमाण दे रही है। मुझे स्मरण है कि माता मदालसा ने तीन सन्तानों को जन्म दिया, महर्षि प्रव्हाण महर्षि शिलक और महर्षि दालभ्य! ये तीनों ही पुत्र माता मदालसा के जो पाँच वर्ष की आयु होते ही माता के सहयोग से ब्रह्मवेत्ता बन गये, ब्रह्म की चर्चाएँ करते, और ब्रह्म के नाम से देखो "प्राणं ब्रह्मः मनस्वतम्" प्राणों की चर्चा करते रहते थे। विचार विनिमय क्या है मेरी पवित्र माता! तू अपनी सन्तान से वार्ता प्रकट कर, तू उस आत्मा से चर्चा कर, जो आत्मा तेरा पुत्र बन कर, जो उपाधि में तेरे समीप आने वाला है, तेरा महत्वपूर्ण गान गाने वाला है, क्योंकि पुत्र ही ऐसा है जो माता का गान गाता है और कोई संसार में माता का गान नहीं गाता। 4 अप्रैल, 1983, लूम, (बागपत)

मधुत ऋषि से वार्ता

ब्रह्मयाग हमारे यहाँ उसे कहते हैं जहाँ ब्रह्म का चिन्तन किया जाता है और जिसमें ब्रह्म को सर्वत्रता में दृष्टिपात किया जाता है। ब्रह्मयागी चिन्तन और मनन भी गम्भीर मुद्रा में मुद्रित हो करके

करता है और आन्तरिक जगत में मुद्रित प्रवेश कर जाता है। ब्रह्मयाग का अभिप्राय एक और भी है। जितनी भी सृष्टि हमें दृष्टिपात आ रही है, उसमें परमपिता परमात्मा को निहारना, उस को उनमें दृष्टिपात करना भी ब्रह्मयाग माना गया है। ब्रह्मयागी, ब्रह्मयाग में परमात्मा के दर्शन करते हैं।

एक समय माता मदालसा ने मधुत ऋषि से यह प्रश्न किया कि महाराज जब मै अपने अन्तर्हृदय में, अन्तःजगत में निहारने लगती हूँ। तो मुझे प्रभु की एक चेतना की अनुभूति होने लगती है और मैं यह विचारती रहती हूँ मानो देखो परमाणु का रूपान्तर होता रहता है। सूक्ष्म से स्थूल और स्थूल से सूक्ष्मत्व मानो, देखो, निर्माणित होते रहते हैं। जब मेरे गर्भस्थल में शिशु होता है, तब शिशु का निर्माण होते हुए मैं तो प्रभु को निहारने लगती हूँ। बाह्य प्रकृति जब मेरे अन्तर्हृदय में प्रवेश करती है तो मुझे मानो देखो, वह अनुपम अनूठा जगत प्रभु की रचना इस प्रकार दृष्टिपात होने लगती है, जैसे एक परमाणु दूसरे परमाणु को निहार रहा है और वही परमाणुवाद निहारता हुआ मानो देखो निर्माण का एक मूल बन करके स्थूल रुप में परिणित हो रहा है। मेरे प्यारे देखो! ऋषि उस समय कहते हैं 'सम्भव वृहे' मानो देखो उस परमपिता परमात्मा की अनुपमता कितनी विचित्र है! तो वह निर्माण ब्रह्मेः ब्रह्मयाग कहलाता है। माता के गर्भ स्थल में जो एक पुत्र याग हो रहा है, वह भी एक ब्रह्म याग है, क्योंकि देवता जन उसके समीप रहते हुए, मानो सहायक बनकर के और परम पिता परमात्मा की जो चेतना है वह चेतना उसमें प्रवेश

होकर निर्माण कर रही है। 27 दिसम्बर, 1987, रामप्रस्थ, गाजियाबाद (याग और तपस्या)

श्वेतकेतु ऋषि से वार्ता

हमारे यहाँ माता का नाम ही कामधेनु है क्योंकि वह बाल की कामनाओं की पूर्ति करती है। जब माता के गर्भस्थल में हम जैसे शिशु विद्यमान होते हैं तो बुद्धिमान माता आयुर्वेद के माध्यम से उसे पनपाती है, स्थावर सृष्टि (वनस्पति) का खरल करके, अग्नि में तपा करके उसे पान करती है। एक समय जब माता मदालसा के गर्भ में प्रव्हाण थे तो माता याग कर रही थी और श्वेतकेतु ऋषि का पदार्पण हुआ। योग करने के पश्चात ऋषि ने कहा कि हे देवी! तुम यह याग क्यों कर रही हो? देवी ने कहा कि अपने गर्भ के याग को पूर्ण करना चाहती हूँ क्योंकि 'दिव्याम् ब्रह्मेः वाचन्नमं ब्रह्मा देवो लोकाः देवा लोकाम पितरस्थत्म् ब्रह्मः पितरोः गणाम् ब्रह्मा पति लोकाम यागाम ब्रह्मेवेताः। माता मदालसा ने वेद की परिभाषा में वाक्य प्रकट करते हुए कहा कि मैं अपने याग को पूर्ण करना चाहती हूँ। वैदिक साहित्य में आता है कि देवता लोकाम् पितरो लोकाम् पति लोकाय यागाम ब्रह्मः कृताम वृहि। वेद की विदुषी कहती है कि मैं इसलिए याग कर रही हूँ क्योंकि मैं अपने आन्तरिक याग को ऊँचा बनाना चाहती हूँ, जिससे संसार में याग होता रहे। मेरा प्रथम लोक देव लोक चला गया, उसके पश्चात् मेरा पितर लोक चला गया, वहाँ भी मुझे याग नहीं करना था परन्तु अब मैं पतिलोक को प्राप्त हो गयी तो

याग करने की अधिकारी बन गयी। मेरे गर्भ में जो शिशु पनप रहा है, यह पति लोक को प्राप्त हो करके मुझे प्राप्त होता है। मेरे गर्भ में परमपिता की जो अनुपम देन है, उसके संरक्षण में निर्माण करने वाले जो निर्माण वेत्ता, निर्माण प्रभु ने किया है, मैं इतना विचार दे रही हूँ कि जिससे संसार में निर्माणवेत्ता का धन्यवाद करने वाले बालक का मेरे गर्भ से जन्म हो जाये।

गर्भस्थ को ज्ञान

मेरे प्यारे! जब मदालसा मनु कुल में आ गयी तो हर्ष ध्वनियां होने लगी; सर्वत्र राष्ट्र प्रसन्न हो गया। कुछ समय के पश्चात माता मदालसा के गर्भस्थल में एक आत्मा का प्रवेश हो गया, तो माता मदालसा एकान्त स्थली पर विद्यमान होकर गायत्री छन्दों का पठन-पाठन करती और यह कहा करती थी हे आत्मा! मेरे गर्भ स्थल मे तेरा प्रवेश हुआ है। तू आत्मा है, ज्ञान स्वरूप है, ज्ञान और प्रयत्न यही तो तेरा गहना है। जब भी वह एकान्त स्थली में विद्यमान होती यह वाक्य सर्वदा अध्ययन करती रहती। ऐसा मुझे स्मरण है पुत्रों! ऐसा ऋषियों ने भी वर्णन कराया है। उनके साहित्य में भी यह प्राप्त होता है। जब बाल्य माता मदालसा के गर्भ से पृथक हुआ तो उससे तीन शब्दों का प्रतिपादन करती बुद्धोऽसि, शुद्धोऽसि, निरंजनोऽसी यही कहती हुई माता मदालसा बाल्य को लोरियों का पान कराती रही और यह कहा करती आत्मा! तू बुद्ध है शुद्ध है, तू निरंजन है, बुद्ध कहते हैं बुद्धिमान को, तू शुद्ध है और अखण्ड रहने वाली तू

आत्मा है। तेरा निधन भी नहीं होता। हे आत्मा तू महान है। इन तीन शब्दों की व्याख्या करती रहती। क्योंकि यह तीन शब्द हैं ज्ञान की प्रतिभा में ज्ञान की आभा में और ज्ञान की भाषा में यह तीन ही शब्द प्रतिभासिद्ध माने गये हैं। निरंजनोंकृताम देवाः वसु कर्णाम् ब्रह्मणेः लोकाः ब्रह्मलोकश्चताम् देवम् धनः अप्रति देवः अन्तो" ऐसा कहा करती थी। ऋषिवर। मेरे प्यारे! माता मदालसा ऋषि के शब्दों की पुनरोक्ति करती रहती और और यह कहा करती हे आत्मा! तू सदैव विवेक में रमण करने वाला है। तू विवेकी वन करके इस संसार का उत्थान करने वाला बन। इस प्रकार की आभा सदैव प्रकट करती रहती थी। 10 दिसम्बर, 1981, त्रिनगर (दिल्ली), पुष्प 39

माता का गर्भ महान विद्यालय

प्रत्येक माता की सदैव यह कामना रहती है कि मेरे गर्भ स्थल से उत्पन्न होने वाला जो शिशु है, यह मानो पूर्ण आयु का होना चाहिए। मेरे से प्रथम यह संसार से न चला जाए। मेरे पुत्रों! प्रत्येक माता यह चाहती तो है परन्तु उसे इसका ज्ञान भी होना चाहिए। ऐसा कैसे होगा। त्रेता काल में माताएं बेटा! देखो, अपने गर्भ स्थल में बालक को आयु की प्रेरणा देती थीं, मेरे प्यारे देखो! पवमान सूक्तों के द्वारा वह याग में अग्निहोत्र करती है। बेटा उसको आहुति देती और उनको विचारती रहती एक-एक वेद मन्त्र के ऊपर उनका अध्ययन प्रायः होता रहता और जो माताएं यह विचारती हैं कि मेरा पुत्र दीर्घ आयु का हो। वे गर्भावस्था में अपनी गर्भ की आत्मा, शिशु

से वार्ता प्रकट करती रहती हैं रात्रि का काल है, अंधकार छाया हुआ है परन्तु प्राणों की ध्वनियाँ आ रही है। रात्रि काल की बेटा! देखो, अपनी एक ध्वनि होती है और वह ध्वनि धीमी-धीमी ध्वनि होती है, मेरे प्यारे देखो यहाँ परमाणुवाद अपने में संघर्ष करते हैं। जब रात्रि का काल होता है सूर्य का प्रकाश भी नहीं होता है, चन्द्रमा अपने प्रकाश में होता है, चन्द्रमा की कान्ति में, बेटा! परमाणु अपने में ध्वनित होता रहता है वह ध्वनियाँ करता रहता है उस ध्वनि को, मेरी प्यारी माता जब श्रवण करती है और उस ध्वनि को श्रवण करके उसके अन्दर अपने में ध्वनियाँ उत्पन्न हो रही हैं। उन बाह्म आन्तरिक दोनों ध्वनियों का मिलान हो रहा है। मेरे प्यारे! कैसी ध्वनि है जो माता अपने में श्रवण कर रही है बाल्य को भी ध्वनि प्रदान कर रही है। माता के गर्भ स्थल में बेटा! देखो बाल्य पनप रहा है, शिशु पनप रहा है, माता उसे ध्वनियाँ दे रही है और वेद मंत्रें का अध्ययन करती हुई कहती है, हे चन्द्रमा! तू अमृत है। हे चन्द्रमा! तू मेरे में समाहित हो जा। तू अमृत है, मानो तू आयु को देने वाला है, अमृत को प्रदान करने वाला है। जब माता इस प्रकार की प्रार्थना करती है, तो माता के गर्भ स्थल में जो शिशु है, वह उस ध्वनि को अपने में श्रवण करता रहता है। उसका आयु प्रबल रहता है। उसका आयु और मानो देखो, बुद्धि का विकास होता रहता है। मेरे पुत्रों! देखो, वही जब बाल्य बाह्य जगत में आता है, तब माता ही देखो मुनिवरों लोरियों का पान कराती हुई उसे अपनी शिक्षा प्रदान करती रहती है। मुनिवरों देखो! वह रात्रि में जब जागरूक हो जाती है उसके साथ बाल्य भी

जागरुक हो जाता है, माता उसे मानो देखो, कुछ न कुछ उद्गीत गाती रहती है। वह कहती है- हे बाल्य! तू अमृत को प्राप्त हो। हे बाल्य! तू प्रकाश को प्राप्त हो। हे बाल्य! तू ब्रह्मवेता बन। हे बाल्य! ब्रह्मवेत्ता बनने के लिए साधना तेरे द्वारा है। माता उस साधना को बाल्य को परिणत कर देती है। वह कहती है- हे बाल्य तू ओ३म् की ध्वनि को अपने में श्रवण करता चल, यह ओ३म् की ध्वनि तेरे जीवन में तेरी आकृतियों में रत हो जायेगी। हे बाल्य! जब तू ओ३म् ध्वनि को श्वास के साथ में, मनके की भांति ग्रहण करेगा। मानो जैसे सूत्र में मनका पिरोया जाता है तो वह माला बन जाती है। इसी प्रकार, हे बाल्य! तू सूत्र में, प्राण रूपी सूत्र में, तू मानो देखो! विचार रूपी अमृत को, मानो देखो, मनकों को, उसमें धरयामि बना करके, उस माला को तू धारण कर वह तेरा आंतरिक जगत, मानो देखो! मालामयी बन जाएगा वेद मंत्रेंमयी बन जाएगा। ओ३म् ध्वनि को श्रवण करता हुआ। तू पूर्ण आयु को प्राप्त होता रहेगा।

मेरे प्यारे! देखो, यह माता जो शिक्षा बाल्य को गर्भ में देकर ब्रह्मवेत्ता बना देती है। उसके लिए बेटा कोई विश्व का विश्वविद्यालय नहीं बना पाता है, कोई आचार्य ऐसा नहीं है जो मानो, देखो उन शब्दों को, उस ध्वनि को मानो देखो! बाल्य के अन्तर्हृदय से दूर कर सके। मेरे प्यारे! वह बाल्य ऐसे, मानो विश्वविद्यालय में अध्ययन कर रहा है। जिस विद्यालय में अध्ययन करने वालों के मानो प्रत्येक शब्द अन्तः करण में जब अंकित हो जाता है, वह उससे कभी दूर नहीं होता, वह नष्ट भी नहीं होता।

इस प्रकार के पुरोहित राष्ट्र में राजाओं के यहाँ समाज में रहे हैं, जो यह शिक्षा देते रहे हैं। तो बेटा! देखो, उस राजा के राष्ट्र में पिता से पूर्व, मेरे प्यारे! पुत्र का निधन नहीं होता। मेरे प्यारे। देखो निधन जब होता है, जिस काल में माता, मेरे प्यारे अपने कर्त्तव्य से विहीन हो जाती है, मानो शिक्षा प्रणाली उनकी भ्रष्ट हो जाती है। मेरे प्यारो! देखो, ऐश्वर्य में मेरी पुत्रियाँ, मेरी मातृ शक्ति जब मानो परिणित हे जाती है और वह अपने कर्त्तव्य को नष्ट करके मानो देखो कुछ और ही उद्गीत गाने लगती है।

मुनिवरों! देखो जब शिक्षा प्रणाली हमारी पवित्रत्व में परिणत हो जाती है, माता जब सबसे प्रथम शिक्षक बन करके, मुनिवरों! देखो, बाल्य को ऊर्ध्वा में गमन करा देती है, वह सबसे महान विद्यालय कहलाता है। उस विद्यालय में मानव को परिणत हो जाना चाहिए।

मेरी प्रत्येक पुत्री और माता को मुनिवरों! देखो, गृह में गृहों का पुरोहित बन करके सुचरित्रता से मानवीयता से मानो देखो, उसको मनस्त्व की और अति मानवत्व की चर्चा प्रकट करने लगते हैं तो माता देखो पवित्रता में परिणत हो जाती है। यह समाज मुनिवरों! देखो, अपने में पवित्र बन जाता है और जिस काल में मुनिवरों माता तपस्वी नहीं होती बाल्य-बालिकाओं को ऊर्ध्वा में उपदेश नहीं दिया जाता, मानो, देखो उस काल में माता पिता सदैव रुदन करते रहते हैं। बाल्य भी रुदन करते रहते हैं। अपने में, अन्तर में शान्ति की स्थापना नहीं हो पाती क्योंकि ज्ञान से वह शून्य हो जाते हैं।

यह विद्याएं हमारे यहाँऽपरम्परागतों से रही हैं। गर्भावस्था में

गर्भवती वेद मन्त्रें का उदगीथ गाना और उस वेद मन्त्र का जो देवता है, उसी देवता की उपासना करना। शिशु को दुग्ध आहार कराते समय भी उसी प्रकार की शिक्षा देना, गर्भाशय से जब बाल्य, शिशु बन करके गर्भ में प्रवेश हो रहा है। पंचीकरण करके पंच महाभूतों के परमाणुओं में मानो देखो, एक-एक वे वृत्तियाँ उसमें प्रदान करना, उसमें कृत्त करना, मेरे प्यारे! देखो उसी प्रकार के भाव, बालिष्ठता सुचरित्रता और मानवीयता उससे भरण करती हुई उसके साथ माता उद्गीत गाने लगती है।

माता का गर्भ विश्वविद्यालय क्यों है? क्यांकि वहाँ माता का अनुपम विचार है। गर्भ से लेकर के पाँच वर्ष तक माता का विश्वविद्यालय पवित्र बना रहे। ऐसा मैं परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ, हे परमात्मन्! यदि राष्ट्र और समाज को ऊँचा बनाना है जनसमूह को ऊँचा बनाना है, तो माता का जो विद्यालय है वह पवित्र होना चाहिए। उसमें परा विद्या पुरोहिततं होना चाहिए। माता पुरोहित बन करके बाल्य को शिक्षा देने वाली हो और उसे इतना ज्ञान होना चाहिए, ब्रह्म से ले करके, देखो उसे वेद के एक-एक मन्त्र में, वृत्तियें में रत रहना चाहिए।

पुरोहित के द्वारा उसे अध्ययन करना चाहिए। मानो देखो उसमें कर्मकाण्ड भी हो, उसी में ब्रह्मज्ञान भी हो उसी में देखो, मुनिवरों व्यवहार भी होना चाहिए। जब तक मानव का व्यवहार कर्मकाण्ड और ब्रह्मज्ञान तीनों साथ-साथ नहीं गमन करेंगे तब तक मानव का उत्थान नहीं होगा। 27 अक्टूबर, 1989, रामप्रस्थ (गाजियाबाद),

याग ओर तपस्या

माता-पिता महान शिक्षक

यह शतपथ ब्राह्मण का वचन है। वस्तुतः जब तीन अहम् शिक्षक अर्थात एक माता, दूसरा पिता, तीसरा आचार्य होवें, तभी मनुष्य ज्ञान वान होता है। जितना माता से सन्तानों को उपदेश और उपकार पहुँचता है, उतना किसी से नहीं, जैसा माता सन्तानों पर प्रेम, उनका हित करना चाहती है उतना अन्य कोई नहीं करता। "प्रशस्ता धार्मिकी विदुषी माता विद्यते यस्य स मातृमान्" धन्य वह माता है जो गर्भाधान से लेकर तब तक पूरी विद्या न हो सुशीलता का उपदेश करे। (सत्यार्थ प्रकाश द्वितीय समुल्लास।)

माता मदालसा को जब गर्भ की आत्मा से चर्चा करने की उत्सुकता होती तो वे सबसे प्रथम प्राण को अपान प्राण में प्रवेश कराती। अपान प्राण से बेटा! पृथ्वी के गर्भ को जाना जाता है और अपान के पश्चात् उसे व्यान प्राण में ले जाती। व्यान प्राण देखो, सर्वत्र विलक्षणवादी है और व्यान प्राण में जब प्रवेश हुई तो बेटा वहाँ से समान प्राण में चली गयी और समान से उदान में प्रवेश करके वह मेरी प्यारी माता मदालसा अपने गर्भ की आत्मा से जो उसके गर्भ में शिशु रूप में विद्यमान है उस शिशु में प्रवेश हो जाती। मेरी प्यारी विदुषी माताएं अपने गर्भ की आत्मा से प्रायः वार्ता प्रकट करती रही हैं। 15 मई, 1991, लाजपतनगर, नई दिल्ली, (चित्त की वृत्तियों का निरोध)

माता मदालसा अपने गर्भ में स्थित आत्मा से चर्चा करती थी, और वह चर्चा कैसे हेती थी? यह बड़ा विचित्र एक गहन विषय है। जब माता के गर्भ में शिशु है तो माता मानो एकांत मौन होकर के और अन्तर्ध्यान हो करके अपनी बाह्य जगत् की प्रवृत्तियों को निवृत करके मुनिवरों! देखो, वह अन्तरात्मा से ब्रह्मे वाचो देवः हिरण्यंस्थली, वह आत्मा से चर्चा करती।

हे आत्मा! तू महान् है। हे आत्मा! तू पवित्र है। मानो मैं तेरे से यह जानना चाहती हूँ कि तू कौन आत्मा है? तो मेरे प्यारे! देखो उसको कहती। कतमोऽसि और यह कहती कि हे आत्मं ब्रह्माः तू ब्रह्म है। हे आत्मा! तू ब्रह्मज्ञानी है। हे आत्मा! तू अखण्ड है। तू सदैव रहने वाली है। आत्मा तू कभी मृत्यु को प्राप्त नहीं होती। हे आत्मा! तू शुद्ध है, तू बुद्धिमान है। शुद्ध, पवित्र है। इस प्रकार की विवेचना बेटा! माता प्रायः करती रहती थी। जब यह गर्भ की आत्मा ब्राह्म जगत् में बेटा! आत्मा शरीर को धारण करके आया तो उस समय वह कहती बुद्धों शुद्धों निरजनं ब्रह्माः। मेरे प्यारे! देखो, आत्मा को लोरियों का पान कराती रहती है और इस प्रकार की दर्शनों की शिक्षा देती रहती कि वेदमंत्र कहता है कि यह संसार निसार है, इसमें कोई सार नहीं है। 1 दिसम्बर, 1985, मथुरा, (आत्मा का भोजन)

गर्भस्थ शिशु से वार्ता

मेरे प्यारे! देखो वेद में एक वाक्य आया है ”ममत्वा ब्रह्मे कृतं गर्भास्सुतं शिशु वर्णा ब्रह्मे वृतं सुग प्रसि वृता“। मेरे प्यारे! वेद की

आख्यिका यह कहती है कि माता अपनी गर्भावस्था में गर्भ की आत्मा से, शिशु से वार्ता प्रकट करती है। जब मैं यह विचारता हूँ कि माता अपने गर्भ शिशु से कैसे वार्ता प्रकट करती है? तो देखो! मुझे बहुत सी माताओं का जीवन स्मरण आता रहता है जो गर्भावस्था में मेरे प्यारे देखो! अपनी शून्य शांत अवस्था में विद्यमान हो करके प्राण के ऊपर अन्वेषण करती हैं। एक समय विचार माता मदालसा के मन में आया तो वह शान्त होकर के चिन्तन मनन करने लगी कि मैं अपने गर्भ की आत्मा से, शिशु से कैसे वार्ता प्रकट कर सकती हूँ? यह विद्याएं मानो देखो, वेद में थी। जब यह मन्त्र आते हैं तो प्रायः ऐसा होता है। उस समय देखो माता चिन्तन करते-करते प्राण के द्वारा बेटा! मन को ले गई। मन और प्राण का जब समन्वय होना प्रारम्भ हुआ तो मेरे पुत्रों देखो वह जो सामान्य प्राण है, जो विशेष प्राण है और जो उदान प्राण है इन तीनों प्राणों का बेटा समन्वय कराकर देवदत्त प्राण की इसमें पुट लगायी तो बेटा! देखा, माता शान्त चित्त हो करके अपने गर्भ की आत्मा से और शिशु से वार्ता प्रकट करने लगी। माता शान्त अन्तर्मुखी होकर के यह विचारने लगी कि, हे आत्मा! तू मेरे गर्भस्थल में विद्यमान हो गया है, तेरा मेरा पूर्व जन्म का क्या संस्कार है? क्या समन्वय है? हे आत्मा! तू यदि मेरे गर्भ में प्रवेश हुआ है तो तुझे योगेश्वर बनना होगा, तुझे प्राणेश्वर सखा को जानकर के मानो उससे पार होना होगा। मुनिवरों जब माता यह वार्ता प्रकट करती तो गर्भ में जो शिशु पनप रहा था, वह उनको अपने में श्रवण कर रहा है और श्रवण करते हुए उसके अन्तःकरण में

बेटा! संस्कारों की झड़ियाँ लग जातीं। उसके संस्कार बन रहे हैं, पनप रहे हैं बेटा! ध्वनियाँ आ रही हैं; शान्त ध्वनि आ रही है, उन ध्वनियों को श्रवण करते हुए वह अपने में धारयामि बना हुआ है उसमें माता मानो पवित्रता को धारण करा रही है। माता प्रत्येक आवृत्तियों का अध्ययन करा रही है। 27 अक्टूबर, 1989, रामप्रस्थ, गाजियाबाद,(याग और तपस्या)

माता मदालसा गर्भावस्था में अपने पुत्रों को कहा करती थी, हे मेरे शरीर में आने वाली आत्मा तू शुद्ध-बुद्ध कहलाती है, तू बुद्धिमान है, तू अखण्ड रहने वाली है और तेरा किसी भी काल में विनाश नहीं होता। तू आनन्द के लिए संसार में आयी है, तेरा कर्त्तव्य है तू आनन्द की प्राप्ति के लिए प्रभु की गोद में चल इस संसार के वैभव में तुझे आनन्द प्राप्त नहीं होगा। माता मदालसा यह कहती कि चाहे राष्ट्र प्राप्त हो जाए, चाहे वित्त प्राप्त हो जाये, उससे आनन्द प्राप्त नहीं कर सकते। वैभव से तुम स्वर्ग को स्थापित तो कर सकते हो पर आनन्द को प्राप्त नहीं कर सकते। माता जब यह कहा करती तो बालक उसी विचारों को स्मरण करता हुआ ब्रह्मवेत्ता बन जाता। 14 अप्रैल, 1983, माडल टाउन (नई दिल्ली), पुष्प-52

प्रकृति को अपने में समेट कर पुत्र को जन्म

जब माता अपने हृदय से बालक को जन्म देती है और जब वह यह जानती है कि मेरा हृदय मेरे हृदय में पनप रहा है। बाल्य का पनपना, यह मेरा याग हो रहा है। जब माता की यही भावना रहती

है कि मैं याग कर रही हूँ। तब माता न्याय भावना से सन्तान को जन्म देती है। हमारे यहाँ मानो 'सन्तानां पुत्र भविते, सन्तान को उत्पन्न करना भी बेटा, एक याग कहलाता है। वह याग क्यों है? क्योंकि देखो जब माता के हृदय में एक त्याग की भावना होती है और जब माता त्याग भावना से सन्तान को जन्म देती है, तब मानो देखो उसे गर्भ में ही सुयोग्य बना देती है तो उस बालक को पहले यह प्रतीत नहीं होता कि वह राष्ट्र की सम्पदा बने या ब्रह्मवेत्ता बन जाये। किन्तु यह प्रतीत रहता है कि वह माता की सम्पदा अवश्य नहीं रहेगा वह संसार की सम्पदा बन जायेगा। माता का पुत्र यदि ब्रह्मवेत्ता बन जाता है तो वह संसार की सम्पदा बन गया। यदि माता का पुत्र योगी बन जाय और प्राण के मिलान को जानने लगे, तो मानो देखो विश्व की सम्पदा बन गया। माता जब अपने में त्याग पूर्वक सन्तान को जन्म देती है तब वह एक याग करती है।

'यागां हिरण्यं ब्रह्मः वाचः' मेरे प्यारे! माता के गर्भ में जब बाल्य होता है, तो वह देवपूजा ही तो करती है। ब्रह्म का चिन्तन करती है। सृष्टि जहाँ तक दृष्टिपात आती है, उसे अपने नेत्रें से दृष्टिपात करती रहती है।

बेटा! मैं तुम्हें माता मदालसा का वर्णन कर रहा था। गर्भवती माता मदालसा ने जब यह विचारा कि 'मेरा पुत्र ब्रह्मवेत्ता हो। मेरा पुत्र राजा नहीं होना चाहिए।' तो उस समय माता मदालसा प्रातःकालीन, ऊषा काल में वह मानो सृष्टि की आभा को निहारती रहती थी और जहाँ तक नेत्रें की ज्योति जाती उसे दृष्टिपात करती।

मानो देखो ज्योति को दृष्टिपात करते-करते अन्त में वह अन्तर्मुखी हो करके अपने हृदय में उसी के आकार को दृष्टिपात करती। माता का जो प्रिय बालक गर्भस्थल में होता है, मानो देखो उसके हृदय में भी वही भाव, वही तरंगें मानो देखो, प्रवेश कर रही थीं। यह प्रभु का विज्ञान, बेटा! कितना अनन्तमयी है! कितना महान् है!

मेरी प्यारी माता तीनों गुणों से युक्त कर अपने शिशु को महान बनाना चाहती है, तो जब माता के गर्भस्थल में शिशु विद्यमान होता है, तो उस समय वह गर्भ में ही उस आत्मा से वार्ता प्रकट करती है। मुझे माता मदालसा का जीवन स्मरण है। माता मदालसा के गर्भ में जब बाल्य विद्यमान हुआ तो माता अपने प्राणों का संचय करती। प्राण को अपान में, अपान को समान में, समान को व्यान में और व्यान को उदान में प्रवेश कराके, इन पांचों प्राणों का पंचीकरण बना कर के अपने गर्भ के शिशु से वार्ता प्रकट करती। माता अन्तर्मुखी हो करके कहती है, हे बाल्य तू कौन है और कहां से आया है? हे बाल्य तू कस्मो सम ब्रव्हे? कहां से तेरा आगमन हुआ है? तो बाल्य कोई उत्तर नहीं दे रहा है, वह शिशु माता के गर्भ में है, वह भावना दे रहा है और इस भावना को माता जान रही है। माता उसे अपने में ही धारण कर लेती है। माता मदालसा का गर्भावस्था में यह क्रिया-कलाप रहा है। मेरी पुत्रियों को यदि सन्तान को और पवित्र बनाना हो तो उन्हें प्राण का समन्वय करना चाहिए। प्राण का एक-दूसरे में मिलान करने की वृत्ति का ज्ञान हो जिससे माताएं अपने गर्भ से महान् और पवित्र शिशु को जन्म दे सकें। माता का वह शिशु महान्

बन करके माता का नामकरण ऊर्ध्वा को प्राप्त करा दे। सभी माता को यह भावना होती है कि मेरा बाल्य पवित्र बने परन्तु पवित्र, तब बन पाएगा जब माता का अन्तरात्मा, अन्तर्हृदय आध्यात्मिक और भौतिक दोनों विज्ञान में दोनों में रमण करने वाला होगा। इस प्रकार देखो 'मम ब्रहे कृतम' माता मदालसा बाल्यकाल में योगाभ्यास का अध्ययन करती। तो प्राण को अपान में और अपान को व्यान में मिलाने का अभ्यास प्रायः करती थी। वही माता अपने गर्भ से महान पुत्र को जन्म देती है, जो परमपिता परमात्मा शिशु के रूप में उसके हृदय में विद्यमान रहता है, उसे वह जान लेती है। वेदमन्त्र कहता है कि 'शिशु वर्णम् ब्रह्मेः' वही शिशु वरणीय कहलाता है, वही विद्यालयों को सजातीय बनाता है और वही राष्ट्र को महान बना देता है। जो राष्ट्र को साजातीय बना देता है, वही अनुशासन और सतोगुण, पालन के मूल में राजा बन करके उसका राष्ट्रीयकरण करा देता है। जिससे किसी प्रकार की त्रुटियाँ, अशुद्धियाँ हमारे जीवन में नहीं आ पातीं। वह महान बन करके हमारे में ही निहित रहते हैं। वह जो रजोगुण है, उसमें अनुशासन है और तमोगुण उत्पत्ति के मूल में विद्यमान है। माता के गर्भ में शिशु है परन्तु उसके मन की जो भावना है वह शिशु का निर्माण करती है। उस समय गर्भ में अवस्था तीनों गुण अपनी-अपनी आभा में रमण करते रहते हैं और माता व पितर की यह इच्छा रहती है कि मैं प्रजापति बनूं मानो मैं प्रजा का स्वामी बनूं। मेरे प्यारे, वह पुत्र-पुत्रियाँ उसकी प्रजा कहलाती हैं। वे प्रजाएं बन करके 'अमृताम् भू वरणाम' वह अमृत को प्राप्त करती रहती हैं। प्रजा बन

करके गृह को उन्नत बनाया जाता है, प्रजा बन करके ही राष्ट्र को उन्नत बनाया जाता है। मेरे प्यारे, ममता से नहीं, मोह से नहीं, वह कर्त्तव्यवाद की वेदी पर आने के लिए सदैव तत्पर रहता है। 12 फरवरी, 1991, जनकपुरी, नई दिल्ली, पुष्प-61

तीनों गुणों से युक्त पुत्र

हमारे यहाँ नाना पुत्रियाँ इस प्रकार की वेदज्ञ रही हैं, जो वेद के आधार पर सन्तान को, शिशु को जन्म देने वाली रही हैं।

वेदमन्त्र यह कह रहा है कि तमोगुणी जब विचार होते हैं, तमोगुण जब सामान्यत्व में होता है तो तीनों गुण सामान्यता में विद्यमान रहते हैं। जब रजोगुण आता है तो रजोगुण अति होने से वह पाप के मूल में प्रवेश करता है और सामान्यता में रह करके वह रजोगुण शिव के रूप में रहता है। जब ममत्व से हृदय में सन्तान को जन्म देने की इच्छा होती है तो उसका रूप ब्रह्मा का होता है। ब्रह्मा के रूप में ही उत्पत्ति का मूल कहा गया है। वही प्रवृत्ति माता में रजोगुण बन करके अनुशासन में लाती है, पुत्र को शिक्षा देती है और अपने आंगन में ला करके उसे गुणों में ही रमण कराती है। उसे कहीं रजोगुण से ताड़ना देती है, कहीं उसी रजोगुण से शिक्षार्थी बनाती है, कहीं राष्ट्रीय विद्या देती है तो माता का कितना अहोभाग्य होता है। सतोगुणों से लेरियों का पान करा रही है और ब्रह्मज्ञान देती है। ब्रह्मज्ञान दे करके लोरियों का पान कराकर उसका पालन कर रही है। पालन के मूल में केवल यह नहीं है कि हम उसका चुम्बन

करते रहें और लोरियों का पान कराते रहें। उसे शिक्षा देनी है, चुम्बन करके भी उसे शिक्षा देनी है। हे बाल्य! तू मेरे अन्तर्हृदय की भावना है, हे बाल्य! तू मेरे अन्तर्हृदय का प्रकाश है, हे बाल्य! मैं तेरा इसलिए चुम्बन कर रही हूँ क्योंकि तू मेरा अन्तर्हृदय, तू हृदय के रूप में प्रविष्ट हो रहा है। माता जब इस प्रकार की शिक्षा देती है वह सतोगुणी लोरियों का पान कराती है। लोरियों में बनते उसके आहार में पालन की तरंगे जा रही हैं, विष्णु की तरंग जा रही हैं। मेरे प्यारे, विष्णु कहते हैं सतोगुण को। हे बाल्य! तू असत्य नहीं है, तू सत्य है मानो चित्त की तुझे पिपासा रहती है और सत् चित् आनन्द बन करके तुझे आनन्द की पिपासा रहती है। तो आनन्द प्रभु के द्वार पर तुझे ब्रह्मज्ञान में प्राप्त होगा। तो माता अपने हृदय से उसे ब्रह्म ज्ञान भी देती है। जब वृत्ति एकाग्र हो जाती है तो उस समय वह बाल्य को नाना प्रकार की भावना दे करके महान बना देती है। वहीं बाल्य तीनों गुणों से उपरामता से प्राप्त हो करके, बेटा, योगेश्वर बन जाता है।

माता मदालसा ने अपने पुत्रों को कहा हे बाल्य! तू तीनों गुणों में ही नहीं रहना, तुझे मानो, रजोगुण तमोगुण से भी उपराम होना है। रजोगुण तमोगुण से जो उपराम होता है वह आनन्द को प्राप्त कर लेता है और वह परमात्मा के विशाल ज्ञान में और परमात्मा के गर्भ में वह निहित हो जाता है। विचार करता हुआ वह आनन्द को ग्रहण करता है। क्योंकि आनन्द इन तीनों गुणों की उपरामता से प्राप्त होता है जहाँ न पालने का प्रसंग है, न अनुशासन का प्रसंग है और न

उत्पत्ति का ही प्रसंग आता है। उसके उपरामता को प्राप्त हो करके वह अब्र ब्रह्मेः, ब्रह्म में अपने को दर्शाता रहता है। अपने में यह ग्रहण करने लगें कि हे ममत्व जब तेरा हृदय ज्ञान और विज्ञान में प्रविष्ट हो जायेगा तो तेरा उपराम ब्रह्मज्ञान में प्रवेश हो जाएगा। मेरे प्यारे, मानव को ब्रह्मवेत्ता बनना चाहिए और माता जब उसे ब्रह्मवेत्ता बना देती है तो यदि वह राजा बनता है तो राष्ट्र को उन्नत बनाता है, यदि वह प्रजा का स्वामी बनता है तो प्रजा को ऊँचा बनाता है।

कोई भी राष्ट्रवेत्ता यदि राष्ट्र को ऊंचा बनाना चाहता है तो माता का सहयोग उसमें विशेष होता है। आचार्यों का सहयोग भी होता है परन्तु माता का प्रथम होता है। माता जब उसे शिक्षार्थी बना करके और अपने गर्भ में ही प्राणों का संचय करके उसे ब्रह्मवेत्ता बना देती है कि ब्रह्म क्या है? ब्रह्म वह है जो सबमें व्याप्त रहा है, ब्रह्म वह है जो मेरे अन्तर्हृदय में विद्यमान है। उसे वह जान लेता है और जान करके प्रत्येक प्राणी को शिक्षा देता है। वह राष्ट्र का स्वामी बनता है तो राष्ट्र में धर्म और तीनों गुणों को सामान्य बना करके, अपने हृदय की भावना दे करके ही राष्ट्र को उन्नत बनाता है। राजा बन करके वह प्रजा को ब्रह्मज्ञान देता है। इस ब्रह्मज्ञान को प्राप्त करता हुआ, विज्ञान को जानता हुआ, प्रजा को धर्म में परिणत कर देता है। वह धर्म एकाकी धर्म बन करके, अन्तर्हृदय से शंका- लज्जा से रहित क्रिया-कलाप का नाम ही धर्म कहा जाता है। धर्म को राजा जब स्वयं जानता है, बुद्धिमानों से विवेचनित होता रहता है, ब्रह्मवेत्ता, राष्ट्र के विवेकी पुरुषों से अपना सम्पर्क करता है तो राष्ट्र में ईश्वर के नाम

पर रूढ़ियाँ नहीं पनपा करतीं। जैसे मुझे एक समय महानन्द जी ने कहा था कि संसार में, राजा के राष्ट्र में रूढ़ि नहीं रहनी चाहिए। जो राजा ब्रह्मवेत्ता होता है उस राजा के राष्ट्र में रूढ़ि नहीं होती ईश्वर के नाम पर। ब्रह्म के नाम पर रूढ़ि नहीं होती क्योंकि ब्रह्म तो एकाकी वचन है, एकाकी है, धर्म है, मानवीयता है और मानवीयता में जो निहित रहता है वहीं तो राष्ट्र और समाज को कल्याण के मार्ग पर ले जाता है।

शिशु को कैसा बनना है और माता को कैसा बनाना है? यह सब माता के ऊपर दायित्व रहता है। वह विचारती रहती है और शिशु को विवेकी बना करके बेटा, ब्रह्मवेत्ता बना देती है और वह राष्ट्र का पुरोहित भी बना देती है।

जहां माता के गर्भ के तीन दिवस के प्रारम्भ से जब माता शिक्षा देना प्रारम्भ करती है तो वह गर्भ में ही शिक्षित बन जाता है। आचार्य के कुल में गौमेध याग करता है, पशुपने को त्याग करके वह वेद में प्रवेश हो जाता है। अपने क्रिया-कलापों में सदैव तत्पर रह करके माता अपने शिशुओं को गोमेध याग तक प्रवेश करा देती है। गौमेध याग ऋषि करता है, आचार्य कुल में होता है। जब वह गौमेध याग बना देता है उसके पश्चात् वह बुद्धिमान बन करके राष्ट्र को ऊंचा बनाता है। कोई ब्रह्मवेत्ता बन जाता है। उन्हीं में से कोई राष्ट्रपिता बन जाता है, कोई राष्ट्रवेत्ता के क्रिया-कलापों में परिणत हो जाता है, कोई वैज्ञानिक बन जाता है, कोई आध्यात्मिकवादी बन करके अपने में अणु-परमाणु को धारण करके लोक-लोकान्तरों को उड़ने लगता

है। 12 फरवरी, 1991, जनकपुरी (नई दिल्ली), पुष्प-61

आत्मा से विवेचना, आत्मा से आत्मा का मिलान जो माता जानती है वह मेरे प्यारे! गृह सूत्र को अपने में धारण कहती है। मुझे स्मरण आता रहता है महर्षियों का वचन, मेरे प्यारे। भगवान मनु के काल से भी पूर्व एक महर्षि तन्तुत ऋषि महाराज हुए हैं, जिन्होंने वेद के मन्त्रें को लेकर गृह-सूक्तों का निर्माण किया। वे गृह-सूत्र, मेरे पुत्रों! देखो, मेरी पुत्रियां को अध्ययन करना चाहिए। माताओं को अध्ययन, ब्रह्मचारिष्यामि, ब्रह्मचारियों को भी अध्ययन करना चाहिए, उसी के आधार पर मानो अपने जीवन को व्यतीत करना चाहिए। 10 अप्रैल, 1987, करनाल (मेरठ), वैदिक विज्ञान

जब माता मदालसा अपने गर्भ की आत्मा से अपनी वार्ता प्रकट करती थी, तो कहती थीं बुद्धो, शुद्धो, निर०जनाः मेरे प्यारे! ये तीन शब्द हैं, मानो देखो इन तीनों में ही यह संसार व्याप्त हो रहा है मेरे प्यारे! बुद्ध, शुद्ध, निर०जन, मुनिवरो! देखो, बुद्ध कहते हैं बुद्धिमान को, शुद्ध कहते हैं और पवित्र को निर०जन कहते हैं बेटा! देखो, जो सदैव रहने वाला है, जिसकी मृत्यु नहीं हुआ करती है। तो बुद्ध, शुद्ध और निर०जनोऽसि यह माता की एक रचना रहती है और वह कहती है कि बुद्धं ब्रह्माः, हे बुद्ध! शुद्ध ब्रह्मः, तू शूद्धो वृद्धम् मानो देखो निर०जनोऽसि यह उच्चारण करती रहती, मेरे प्यारे! इनकी विवेचना होती रहती है और रात्रि समय जब माता शैय्या पर विराजमान होती तो उस समय अपनी आत्मा का गर्भ की आत्मा से मिलान करती रहती थी और यह कहती हे आत्मा! तू बड़ी विचित्र है। हे आत्मा!

तूने मेरे गर्भ में सह वास किया। तेरा आसन क्या है? तेरा ओढ़न क्या है? हे आत्मा! तू शरीर में वास कर रहा है क्या-क्या तेरे पास है? तो माता स्वयं उसकी विवेचना करती रहती है, "आपो हिरण्यं ब्रह्माः आपो द्यु प्रमाणां ब्रह्मे" मेरे प्यारे। वह कहती कि आपो ही तो तेरा आसन है, आपो ही तेरा ओढ़न है और आपो ही तेरे पासे बने हुए हैं। आपोमयी ज्योति में तू रत रहने वाली आत्मा है। तू ऐसे आँगन में रमण करती रहती है जिसे हम जान भी नहीं पाते। तो मेरे प्यारे! माता इस प्रकार की शिक्षा गर्भस्थ आत्मा को देती रहती थी। 10 अप्रैल, 1986, करनाल (मेरठ), वैदिक विज्ञान

माता मदालसा का सोम याग

मेरे प्यारे देखो, माता मदालसा का जीवन स्मरण आता है। माता मदालसा ने वेद मंत्रें का अध्ययन किया। एक समय वह वेद मंत्रें का उद्गीत गा रही थी। उस समय उन्होंने सर्वप्रथम अपनी यज्ञशाला में प्रातःकालीन याग किया और याग के पश्चात् गान गाने लगी और वह गान था 'सोमम् ब्रह्माः वर्णास्सुतम ब्राचाम् चक्रे ब्रत्ताहाम् देवत्वम् महा वर्णाम् प्राणाः।' देखो, वह उद्गीत गा रही थी। उद्गीत में माता मदालसा कहती है कि मेरा जो यज्ञ में दिया हुआ स्वाहाः यह सोम को प्राप्त हो जाये। मानो यह आहुतियाँ सोम को प्राप्त होती रहे तो वह सोम को प्राप्त हो गया। अब विचार आया कि सोम यहाँ किसे कहा गया। मेरे प्यारे देखो, वेद की एक आख्यिका आती है और वेद मंत्र कहता है 'सोमम् ब्रह्माः सवंभवा, सोमम् भव्य त्रिवर्णाम् आत्मां भू

वर्णाम्' मानो देखो, सोम उसे कहते हैं जहाँ आत्मा का परमात्मा से मिलान होता है। आत्मा परमात्मा की प्रतिभा में रत हो जाता है तो उसको सोम कहते हैं। मानो देखो, मिलन होने का नाम सोम है। संधि को हमारे यहाँ सोम कहते हैं। मेरे प्यारे देखो, जब दो वस्तुओं की संधि होती है, मिलन होता है, जैसे आत्मा-परमात्मा का मिलन होता है, जैसे बाह्य जगत और आंतरिक जगत का समन्वय होता है, जैसे स्वाहा उच्चारण करने वाला यज्ञमान जब स्वाहा कहता है। सु अहाः दोनों का मिलन होता है तो बेटा, उसको सोम कहते हैं। विचारने में आता है कि वह सौम्य आभा कहलाती है। मेरे पुत्रों देखो, 'सोम ब्रम्ब्रह्मा' हम सोम के आधीन न बनें, सोम हमारे आधीन बने। सोम हमें प्राप्त हो परन्तु हम सोम को प्राप्त न हों ऐसा बेटा, उदगीत गाने वाला उद्गीत गाता है। माता मदालसा ने यह वाक् अपने में श्रवण किया। बेटा, मेरा उदगीत सोम को प्राप्त हो जायगा। सोम प्राणों को भी कहते हैं। जब प्राण और अपान को मिलाने की सत्ता मुनिवरों! साधक में हो जाती है तो वही साधक, 'उन्मम, ब्रहे स्वाहाः' कह करके प्राण और अपान दोनों का समन्वय करता है। जब दोनों प्राणों का संधि काल हो जाता है तो उसको सोम कहते हैं मेरे प्यारे, यही तो सौम्य कहलाता है।

मुनिवरों देखो, माता मदालसा ने सोम याग करने का विचार बनाया। जैसे यजमान बाह्य जगत में अग्नि का ध्यान करता हुआ उद्बुद्ध स्वाहाः से अग्नि को प्रचंड करता है इसी प्रकार मेरी प्यारी माता जब याग करती है तो उसका याग ही कुछ और प्रतिभाशाली

होता है। बेटा, वेद मंत्रें में इस प्रकार की अनेक विद्यायें हमारे यहाँ आती रही हैं, जिन्हें मातायें जानती रही हैं। माताएं प्राचीन काल से जानती रही हैं, आधुनिक काल का तो मुझे इतना प्रतीत नहीं है, परन्तु जो माता प्राणां को जान लेती हैं और प्राणों का समन्वय कराना जान लेती हैं, तो वह माता अपने में सोम का पान कर सकती हैं। माता मदालसा के सम्बन्ध में वैदिक साहित्य में यह आया है कि वे अपने शरीर प्राण और अपान दोनों प्राणों का समन्वय करती हुई गर्भस्थल के आत्मा अथवा शिशु से वार्ता प्रकट करती रहती थीं। माता मदालसा जब उसका उद्गीत गान गाती तो गर्भ में आयी आत्मा से कहती 'कतमों सी व्रहणाः कृतम' हे आत्मा तू कौन है? कैसे मेरे गर्भ में तूने प्रवेश किया है। मुनिवरों देखों, वह 'आत्माम् भूवर्णाम् ब्रहे'। मेरे प्यारे देखो, प्राण और अपान दोनों प्राणों के समन्वय से ही माता के गर्भ की आत्मा से वार्ता प्रकट करती है। जब माता मदालसा प्राण और अपान दोनों का मिलन कर उसमें समान प्राण की पुट लगाई जाती और पुट लगाने से उदान प्राण के ऊपर सवार हो जाते और समान प्राण के साथ पर जब वह गमन करती हैं तो उस काल में माता मदालसा साधक बन, अपने गर्भ की आत्मा से वार्ता प्रकट करती और उस आत्मा को साक्षात दृष्टिपात करती। वह कहती है कि आत्मा, मेरे गर्भ में तेरा क्यों प्रवेश हुआ? तो गर्भ का आत्मा कहता 'सोमं सोमं सममब्रव्हे क्रतम्', मानो देखो हम सोम को पान करने आये हैं। मेरे प्यारे देखो, वह सोम को पान कराती। सोम एक औषध भी होती है जो पर्वतीय क्षेत्रें मे प्राप्त होती

है। उस औषध को ले करके और उसमें मृचीका औषध का समन्वय करते हुए, उसको खरल करके जब उसको अग्नि में तपा करके और उसको स्वच्छ बना करके। गायत्री मंत्रें से पुट दी जाती है, अन्य वेद मंत्रें से भी पुट दी जाती है। मानो देखो महा मृत्युजय मंत्र से भी उसको पुट लगाई जाती है, तो वह तपा हुआ सोम औषध, वह अमृत बन गया है, वह सोम रस बन गया है। उसको माता मदालसा पान करती जो भी गर्भवती मदालसा का माह आता उस माह की वह औषध बना करके, पान कर सोम बना करके, वह अपने गर्भ के आत्मा को प्रदान करती और वह प्राणाय स्वाहाः, अपानाय स्वाहाः, व्यानाय स्वाहाः, उदानाय स्वाहाः, समानाय स्वाहा कह याग में उसमें आहुति देती। स्वाहाः कहती। तो मुनिवरों देखो, सोम याग कहलाता है, उसे हम सौम्य याग कहते हैं। सोम याग से गर्भ का आत्मा, गर्भ का शिशु, ब्रह्मवेत्ता की विद्या को माता के उद्गारों से अपने में ग्रहण कर लेता है।

वैदिक साहित्य मे इस प्रकार की विद्यायें, माता और आचार्यों के गृहों में पनपती रही हैं। इस प्रकार का विज्ञान प्रायः हमारे यहाँ होना चाहिये। मुझे माता मदालसा का जीवन स्मरण है के वे गर्भावस्था में अपने गर्भ की आत्मा को ब्रह्मविद्या देती थीं। वह ब्रह्म विद्या गर्भावस्था में माता ही दे सकती है क्योंकि माता जो है वह 'पांचम ग्रहे, द्वितीय व्रणः आस्सुवातम पृथ्वी लोकाम्' मानो वह गर्भावस्था के प्रत्येक माह में गर्भ स्थित आत्मा को लोक-लोकान्तरों की शिक्षा देकर अंत में कहती है कि यह ब्रह्म का एक चक्र कहलाता है, ब्रह्म की एक माला

कहलाती है और इस माला को तुम धारण करो। उसी माला के आश्रित बाल्य माता के गर्भ में पनपता रहता है। मुनिवरों देखो, माता मदालसा अपने बाल्य को ब्रह्मविद्या दे रही थी। ब्रह्मविद्या पाना ही मानवीयता का एक कर्त्तव्य माना गया है। विचार आता रहता है बेटा, माता इस प्रकार गर्भ में ही अपने बाल्य को सोम का पान कराती रही हैं। वे मातायें जब सोम का पान करती हैं तो उनके गर्भ से उर्ध्ववेत्ता ब्रह्मचारियों का जन्म हेता है। वे ब्रह्मवेता बन करके ब्रह्म की चर्चा करते रहते हैं। वे अपने में ब्रह्मनिष्ठ होते रहे हैं। जो इस प्रकार का विज्ञान जो अपने में धारण करता है वह महान और पवित्र कहलाता है।

माताऐं अपने में भिन्न-भिन्न प्रकार के यागों में परिणत होती रही हैं। मेरे प्यारे देखो, इसी प्रकार के याग कितने ही प्रकार के होते हैं। मैं उन यागों के बहुत से कर्मकांड भी जानता हूँ परन्तु कुछ नहीं जान पाया। बेटा, जैसे एक अग्निष्टोम याग कहलाता है, वह अग्नि के ऊपर याग अस्वत हो करके वह अंतरिक्ष में, द्यौ में अपनी उड़ान भरता रहता है। याज्ञिक शोधन करते रहते हैं, वे विज्ञान के वांग्मय में जब प्रवेश होते हैं तो विज्ञान की उन धाराओं में वह रमण करता है जहाँ पृथ्वी के गर्भ में वे तरंगें जायेंगी तो वहाँ भी सोम उत्पन्न करेंगी। वह बाह्य जगत में, अग्नि की धाराओं में और वायु की तरंगों में जहाँ भी रमण करेंगी और वहाँ भी अमृत को प्रदान करती रहेंगी। वे याज्ञिक को सोमवेत्ता बना देती हैं, वह सौम्य बनाती रहती हैं।

हम अपने में याज्ञिक बनें क्यांकि यह याग का प्रकरण बड़ा

विचित्र प्रकरण है। ऋषि मुनि बेटा एकांत स्थलियों में विद्यमान हो करके अपने में यागों का चयन करते रहे हैं। मेरे प्यारे, सत्य उच्चारण करना और सत्य भी वेद के मंत्रें से गुथा हुआ हो तो वह भी तरंगें बन करके याज्ञिक को पवित्र बना देती हैं। बेटा, एक यजमान जब अग्नि में स्वाहाः कहते है तो स्वाहाः का अपना बड़ा महत्व माना गया है क्योंकि यजमान का शब्द हृदय से और उसका हृदय याग में तन्मय रहना चाहिए। देखो, मन, कर्म, वचन उसी की आश्रितता में रमण करने चाहिए और जब वह स्वाहाः उच्चारण करता है तो मानो स्वाहाः उसे द्यौ लोक में पहुँचा देता है, उसे द्यौ में प्रवेश करा देता है। 11 अप्रैल, 1991, लाजपत नगर, नई दिल्ली, (महाराजा रघु का याग)

कुछ समय के पश्चात उनके गृह में ब्रह्मणां ब्रभे कृतं लोकाम्। जब उनका ग्रहस्थ में प्रवेश हुआ, गृह में प्रवेश होते ही मेरे प्यारे! देखो, जब वह अप्रतम् आत्मा उनके गर्भ में प्रवेश हो गयी तो उस आत्मा से वह चर्चा करती रहती थी, मानो देखो, शान्तं ब्रह्मा अपनी सर्वत्र प्रवृत्तियों को एकाग्र करती हुयी वह अपने शिशु से वार्ता प्रकट करती रहती; हे शिशु! मेरे गर्भ में तेरा आगमन हुआ है तू तो सदैव निसम्भं ब्रह्रे अस्तुतः अव्यय है, अभ्युदय होने वाला है। मानो तू निर०जन है, अखण्ड है, सम्भूति ब्रह्मणा लोकाः है। मानो देखो, यह वार्ता अपने शिशु से प्रकट करती रहती है, हे आत्मा! तू अजर है, अमर है, अभय और नित्य है। तेरा किसी भी काल में विनाश नहीं होता है। हे आत्मा मेरे गर्भ में तेरा प्रवेश हुआ है, मैं नहीं जानती कि तू बनना

क्या चाहता है? मेरे प्यारे! देखो, वह आत्मा जब इस संसार में आयी तो देखो, माता मदालसा उसे संस्कार देती रही, विचार देती रही। संस्कारों का अभिप्राय है कि वह विचार देती रही और विचार मानो देखो, वेद मन्त्रें की प्रतिभा कहलाती है। 16 फरवरी, 1989, स्वाहेड़ी (बिजनौर)

माता मदालसा के गर्भ स्थल में जब शिशु होता तो बेटा देखो वह समाधिस्थ हो करके प्राण में अपान को अपान में अपान को व्यान में, और व्यान को समान में और समान को उदान में दृष्टिपात करती हुई। बेटा! अपने शिशु की आत्मा से, अपने गर्भ में बेटा! यह वार्ता प्रकट करती रही है हे मानव तू विद्या में उस छोर को जानने का प्रयास कर जहाँ तेरी मानवीयता का निर्माण होता है। 26 मई, 1992, ग्राम- भीकनपुर (गाजियाबाद), स्वर्ग का मार्ग

सोम की शिक्षा

सोम नाम बेटा ज्ञान को कहा गया है, सोम नाम मुनिवरों देखो अपने में यौगिकवाद को कहा गया है। सोम कहते हैं जो मानों पान करने वाला है। मेरे प्यारे देखो, मेरी प्यारी माता के गर्भ स्थल में जब शिशु विद्यमान होता है तो माता उस समय देखो कुछ औषधियों का सोम बना करके पान करती है और वह उससे ज्ञान की प्राप्ति करती है। मुनिवरों देखो! अपने गर्भस्थल में रहने वाले शिशु को ज्ञानी बनाती है, वह मानो उसी आज्ञा में रमण करती है। देखो बाल्य को गर्भस्थल में शिक्षा देना प्रारम्भ करती है। उस शिक्षा का नाम

सोम कहा गया है। औषधियों के रसों को लेकर जो माताएं गुण जानती हैं मानो वह देखो उसको सोम बनाकर के पान करती हैं। सोम नाम बेटा जहाँ औषधियों के रस को कहा गया है, वहीं सोम नाम देखो ज्ञान को कहा गया है। जब मेरी प्यारी माताओं देखो अपने बाल्य को गर्भ स्थल में कहती है, हे बालक! तू बुद्धोऽसी, शुद्धोऽसि, निरंजनऽसी है। मानो यह कहती है कि तू शुद्ध है बुद्ध है निरंजन है। तू मानो देखो अखण्ड रहने वाली ज्योति, एक आत्मा है तू मानो देखो अपने में महान है। जब इस प्रकार माता अपने शिशु की आत्मा से वार्ता प्रकट करती है, तो बेटा वह बाल्य आत्मवेत्ता बन जाता है। मेरे प्यारे देखो माता मदालसा के गर्भ में जब आत्मा का प्रवेश हुआ तो वह तीन शब्दों की विवेचना करती रहती है और कहती है कि हे आत्मा! तू शुद्ध है, हे आत्मा! तू निरंजन है किसी काल में तू नष्ट नहीं होती। आत्म ब्रह्मा वणिस्सतम आत्माम देह व्रतम। तू बुद्धोऽसी, शुद्धोऽसी और निरंजनोऽसिसी है। तू बुद्धिमान भी है। मानो देखो तू अखण्ड रहने वाली अनुपम ज्योति है। इस प्रकार जब माता अपने में उपाय देव आत्मा की उपासना करती हुई अपने में जानने लगती है तो माता के गर्भस्थल में जो शिशु है, उन प्रेरणाओं को प्राप्त करता हुआ बेटा! अपने में महानता को धारण करने लगता है। तो मेरे प्यारे देखो ध्रुवाय ध्रुवम ब्रह्मा व्रतम अस्सुतम देवा सोमाम् ब्रम्हे हे आत्मा तू सोम पान करने वाली है तू सोम का पान कर। बेटा सोम का कौन पान करता है? मुनिवरों देखो! अपने विचारों को वेदों के अमृत का पान कराना। वह सोम पान कहलाता

है। ज्ञान में रत रहना ही मुनिवरों देखो अनुष्ठान कहलाया गया है। मेरे प्यारे देखो वह धुरवाम विष्णु ब्रह्मा सोमाम ब्रह्मे उदीची देखो उदीची सोम ब्रह्मा अमृतम देवा। उदीची में सोम रहने वाला है। हम उत्तरायण में अपने जीवन को बनायें। सूर्य की दो प्रकार की कलाएं होती हैं एक उत्तरायण, दूसरी को दक्षिणायन कहा गया है। उत्तरायण में सोम रहता है और सोम का पान करने वाला ही ज्ञानी कहलाता है। उत्तरायण कहते हैं ज्ञान को और दक्षिणायन कहते हैं अन्धकार को, अज्ञान को। 10 जून, 1992, ग्राम कसेरा खुर्द (गाजियाबाद), (स्वर्ग का मार्ग)

माता और पितर बेटा उस गार्हपत्य नाम की विद्या को प्रायः जानते रहे हैं। जिस विद्या को मुनिवरों देखो! अपने गर्भ की आत्मा से वार्ता प्रकट करती है। जब माता मदालसा के अपने गर्भस्थल में आत्मा का प्रवेश हो गया तो मेरे प्यारे! देखो गर्भ की आत्मा ब्राह्मण देखो माता मदालसा साधना में परिणत रहती है। जब बाल्यकाल में देखो योगीजन प्राणों को सूत्र में लाना जानते हैं और प्राण को एक दूसरे में मिलान करना जानते हैं, उस अन्तः शरीर में जो आत्मा रूपी शिशु विद्यमान है उससे वह वार्ता प्रकट करती है।

मदालसा ने जब गर्भ की आत्मा से वार्ता प्रारम्भ की तो उसने कहा हे बाल्य!शुद्ध बुद्ध, निरंजन इस प्रकार के उद्गीत गाती हुई बोली कि हे आत्माः तुमने प्राण को अपान में, अपान को व्यान में, व्यान को समान में, समान को उदान में मिलान करना है। वह अपनी गर्भ की आत्मा से वार्ता प्रकट करती थी।

यह कोई नवीन विद्या नहीं है जिसे जानकर हम अपने गर्भ की वार्ता कर सकें। प्रायः माताओं ने इस प्रकार की विद्या को जाना है। यह विद्याएं महर्षि दुर्वासा मुनि भी जानते थे। मानो देखो महर्षि दुर्वासा मुनि ने बहुत सी माताओं को ज्ञान देकर उनके गर्भय ब्रहामं ब्रह्मे उन्होंने बेटा! उन्हें देवत्व को प्राप्त कराया। एक-एक मंत्र में जो-जो देवता जिस मन्त्र का है, उसका आह्वान करना यह माताओं का प्रायः कर्त्तव्य रहा है। जब माता इस प्रकार के क्रिया-कलापों में परिणत रहती हैं और पितर जन भी मानो इस प्रकार की विद्या का अध्ययन करते हुए कहते हैं, आओ याग करें। प्रत्येक गृह में माता-पिता का याग करना, दर्शनों की चर्चाएं करना बेटा! उन वार्ताओं को उनके गृह में रहने वाले, वास करने वाले ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणियाँ सर्वत्र मानो जो माता-पिता के पद चिन्हों पर गमन करने वाले हों। माता-पिता का जो क्रिया-कलाप होता है उसी को बाल्य-बालिका ग्रहण करते हैं। इसी प्रकार वेद का ऋषि कहता है "हे मानव! यदि तू अपने गृह को स्वर्ग बनाना चाहता है तो गृह के स्वामी और गृह प्रीति और ज्ञान की पुष्पांजलियों को उत्पन्न करना है जिससे उनका गृह प्रकाश से प्रकाशित हो जायेगा। 27 जून, 1992, खुर्रमपुर (गाजियाबाद), (स्वर्ग का मार्ग)

संतानों को श्रेष्ठ बनाकर राष्ट्र को ऊँचा बनाती हुई मदालसा :

माता जब इस प्रकार से याग करती है, वास्तव में इस याग और उस याग, दोनों में भिन्नता है। ब्रह्मचर्य काल में देव और पितर

लोकों में यह सर्वत्र अग्न्याधान किया जाता है, परन्तु यह जो आन्तरिक याग है जो माता कर रही है, जो परमात्मा की सहायता लेकर उसका धन्यवाद करती है। माता यह विचार देती रहती है कि मैं अपने गर्भ से एक शिशु को जन्म देना चाहती हूँ, उस शिशु को ब्रह्मवेत्ता बनाना चाहती हूँ। एक शिशु जिसका प्रभु ने निर्माण किया है ऐसा विचार देकर जो जन्म दे रही है वह माता महायाग कर रही है, विचित्र याग हो रहा है। मातां ब्रह्मेः लोकाम् ऋषि (श्वेतकेतु) कहते हैं कि हे देवी! इस काल में गौ रस का पान करना चाहिए अथवा नहीं? माता मदालसा ने ऋषि के प्रश्नों का उत्तर दिया कि भगवान्। गौ माता नाम के बहुत से पर्यायवाची शब्द हैं। मैं उन औषधियों का पान करती हूँ जिससे बालक के हृदय में, बालक के मस्तिष्क में, गौर ब्रह्म धेनु का जन्म हो जाता है। धेनु नाम बुद्धि का है और बुद्धि का जन्म हो जाए, जिससे बुद्धि मेधावी हो जाए। मेरे गर्भ से उत्पन्न होने वाला ब्रह्मवेत्ता हो, ब्रह्मचारी हो। ब्रह्मचारी उसे कहा जाता है, जो ब्रह्म में सदैव संलग्न रहता है।

इस प्रकार का याग जब माता करती है तो यह समाज ऊँचा बन जाता है। राष्ट्र ऊँचा बन जाता है समाज में कुरीतियाँ नहीं आ पातीं। हे माता! तू तो धेनु है, जब तू धेनु बन करके अपनी लोरियों का उसे पान कराती है। जब बालक तूझे दुहने लगता है उस समय तेरे विचार इतने महान होने चाहिए जिससे वह दुग्ध बालक के हृदय में, शरीर में प्रवेश करके मेधावी बनें। हे मात! तेरे गर्भ से उत्पन्न होने वाला बालक किसी पुत्री के श्रृंगार का हनन करने वाला नहीं होना

चाहिए। माता मदालसा के ऐसे विचार रहते थे। महर्षि वैशम्पायन के भी ऐसे विचार रहे हैं। ऋषि-मुनियों की यह पवित्र देन रही है। 26 फरवरी, 1980, लाक्षागृह, बरनावा, (आत्मा, प्राण और योग)

मदालसा की ब्रह्मवेत्ता संतान

माता मदालसा के गर्भस्थल में बेटा! जब द्वितीय बार आत्मा का प्रवेश हुआ तो वह उस आत्मा से भी इसी प्रकार की वार्ता प्रकट करती रही, वह कहती हे आत्मा! "अखण्डं ज्योति ब्रह्मः लोकां ब्रहे" हे आत्मा तू तो अखण्ड ज्योति है और ऐसी आनन्दमयी ज्योति है जो सदैव प्रदीप्त रहती है वह शान्त नहीं होती है। हे आत्मा! तू आत्मा ज्योति है। तू मानो ब्रह्म से सहायता पा करके, तू ब्रह्म को अपने में धारण करने लगती है। मानो इस प्रकार आत्मा का उपदेश देते हुए गर्भस्थल में बेटा! जो इस प्रकार का माता मदालसा उपदेश दे रही है। इसके पश्चात जब वो संसार में, इस पृथ्वी मण्डल पर आ गया, उससे माता मदालसा कहती है। हे बालक! तू पृथ्वी की गोद में आ गया है। तू वसुन्धरा की गोद में आ गया है। ये कैसी वसुन्धरा है जिसमें सर्वत्र ब्रह्माण्ड की प्रतिभा निहित रहती है। जिसमें मानो नाना प्रकार के ज्ञान और विज्ञान जन्तुओं का जन्म होता है, ये वही वसुन्धरा कहलाती है। हे बालक! तू जननी माता के गर्भ से पृथक होकर के इस पृथ्वी माता के गर्भ में आ गया है। अब यही तुझे खाद्य, खनिज पदार्थों का प्रदान करती है। यही बेटा! वसुन्धरा है। जब तू इससे पृथक हो जायेगा तो वह जो परमपिता परमात्मा है जो

सर्वत्र जगत का नियन्ता है, वही तो मानो तुझे आनन्द से अपनी लोरियों का पान करायेगा। वहाँ ज्ञान रूपी लोरी है यहाँ खाद्यान्न रूपी लोरियाँ हैं और इस माता की लोरियों का पान करता हुआ तू देख, ब्रह्मवेत्ता बनने की इच्छुकता में लग, मेरे प्यारे! देखो, माता उस बाल्य को भी इस प्रकार का उपदेश दे रही है।

वह बालक भी पाँच वर्ष का ब्रह्मचारी माता से कहता है माता मुझे आज्ञा दो, मैं ब्रह्मवेत्ता बनकर अब मैं तपस्या करने जा रहा हूँ। मेरे प्यारे! माता मदालसा ने कहा हे बालक! मैं जानना चाहती हूँ, ये तपस्या तुम्हें कहाँ से प्राप्त हुई है। उन्होंने कहा माता ज्ञान दिया है और उससे ही मुझमें ज्ञान की उग्र रूप धारा बनी है, जो ज्ञान ने की है मेरी अन्तरात्मा के सहयोग से मानो देखो, वह शब्द वहां से इसकी उपलब्धि होती है। यही तो इसकी उपलब्धियाँ कहलाती हैं। आज मेरा अन्तरात्मा प्रसन्न है, माता! तूने मुझे ब्रह्मवेत्ता बनाया है। मैं इस संसार के अव्ययों में रत रहना नहीं चाहता जहाँ किसी का मान हो रहा है, कोई अपमानित हो रहा है। मैं मान और अपमान दोनों से रहित होकर के, वह जो चेतना है जो इस संसार को, और मुझे धारण किये हुए है, उसकी गोद में जाना चाहता हूँ। मेरे प्यारे! देखो, माता बड़ी प्रसन्न हुई, माता ने कहा धन्य है तू ब्रह्मचारी! मेरा अन्तरात्मा बड़ा प्रसन्न है। मेरे प्यारे! देखो, वह भी तपस्या के लिये चला गया। 8 अप्रैल, 1987, करनाल (मेरठ), (वैदिक विज्ञान)

मदालसा का पुत्रेष्टि याग

मुनिवरों तुम्हें पुरातन काल में वर्णन किया था आज भी मुझे स्मरण आ रहा है। मेरे प्यारे, एक समय माता मदालसा अपने में विचार विनियम कर रही थी। वही उद्गीत गा रही थी कि मैं पुत्रेष्टि याग करना चाहती हूँ। मनुवंश में उनका संस्कार हुआ। जब संस्कार हो गया तो उन्होंने अपने पति देव से कहा, हे प्रभु! मैं पुत्रेष्टि याग में रत होना चाहती हूँ। मदालसा ने कहा कि मैंने संस्कार से पूर्व आपसे संकल्प लिया था कि हमारी संन्तान को पाँच वर्ष तक मेरी शिक्षा होगी, पाँच वर्ष पश्चात् तुम्हारी शिक्षा होनी चाहिए। मनु वंश के राजा ने यह वाक्य स्वीकार कर लिया। स्वीकार करने के पश्चात् माता मदालसा के गर्भ स्थल में कुछ समय के पश्चात शिशु का प्रवेश हो गया तो माता अपने में विचार रही थी कि हे बाल्य, हे आत्मा, तेरी रक्षा करने वाले तो देवता जन हैं, मैंने यह वैदिक साहित्य में अध्ययन किया कि माता के गर्भ स्थल में जब शिशु का प्रवेश हो जाता है तो रक्षा करने वाले सर्वत्र देवता होते हैं। वह देवता कितने भव्य हैं। कोई देवता अमृत दे रहा है, कोई देवता प्रकाश दे रहा है, कोई देवता गुरुत्व दे रहा है, कोई देवता आपोमयी ज्योति दे रहा है कोई देवता तेजोमयी ज्योति दे रहा है कोई देवता गति दे रहा है। कोई देवता बनकर उसमें वह गमन कर रहा है। देवताओं की देवी (मदालसा) यह उद्गीत गा रही थी कि हे! आत्मा हे शिशु! तेरी रक्षा माता नहीं कर सकती। माता तो उस गृह में वास करती हैं जहाँ जू पनप रहा है। वह जड़वत् कहलाता है। प्रभु, देवताओं की सहायता लेकर निर्माण करता है। माता के कैसे भव्य विचार हैं कैसी भव्य

उसकी कल्पना है। अपने बालकों को अपनेपन की वार्ता को वर्णन करा रही है। तुम्हारी माता तो परमपिता परमात्मा है, मैं तो अमृतमान् हूँ। मैं तो केवल निमित्त मात्र कहलाती हूँ। देवता और माता वह परमपिता परमात्मा है। जब यह मेरे गर्भ में प्रवेश कर रहा है तो मैं कोई इसकी रक्षा नहीं कर सकती क्योंकि मैं तो उस प्रभु के, उस माता के गुण ही गा सकती हूँ जे सबकी माता है, परम देव है। वह माता (मदालसा) कहती है, हे बाल्य! चन्द्रमा तुझे अमृत दे रहा है, वह देवता है वह द्यौ से अमृत लाता है और मुझे प्रकाश में लाने का प्रयास करता है। चन्द्रमा समुद्रों से परमाणु को लाता है, वह मुझे अमृत दे रहा है। हे देवता मानो, अग्नि तुझे उष्ण बना रही है और पृथ्वी तुझे गुरुत्व की आभा प्रदान कर रही है। 'अमृतम भवताम् ब्रह्मे' आपोमयी में तो तेरा ओढ़न रहता है। हे! आत्मा, हे! शिशु जिसमें तू वास करता है वही आपों कहलाता है। आपो ही पासे बने हुए हैं, वहीं ओढ़ना बना हुआ है, वही तेरा बिछौना बना हुआ है तू उसी में वास कर रहा है इसीलिए यजमान यज्ञशाला में विराजमान होकर तीन आचमन करता है, कहता है कि 'आतम् ब्रहे।' मानो तू श्री को देने वाला है, तू अमृत है, तू ही तो मेरे में वास कर रहा है। तू ही आपो मेरा ओढ़न है, तू ही मेरा बिछौना, तू ही मेरे पासे बनकर है, उसमें ही मैं पनप रहा हूँ, उसी में मेरी प्रतिभा रहती है। वह परमपिता परमात्मा विज्ञान में रत रहने वाला है। वैदिक ऋषि कहता है, कि माता मदालसा ने कहा है, हे आत्मा! 'वेदम् ब्रह्मा वेद प्रवाह कृतम् वेदव्रतम् प्रकाश' वहीं तो प्रकाश को देने वाला है, वही

प्रकाश में रत हो रहा है। माता मदालसा यह प्रार्थना कर रही है, आत्मा तू जब संसार में इस पृथ्वी माता वसुन्धरा के गर्भ में जाना तो ब्रह्मवेत्ता बन करके जाना। मेरे गर्भ से ब्रह्मवेत्ता बनकर आओ। 21 अप्रैल, 1980, मोती नगर (नई दिल्ली), (यागमयी साधना)

लोरी पान कराते हुए उपदेश

माता मदालसा अपने पुत्रों को अपनी लोरियों का पान कराती हुई ब्रह्मविद्या का उपदेश देती रहती। विद्यालय में अध्ययन करने के पश्चात गृह में प्रवेश करने के पश्चात बेटा! देखा वह प्रतिज्ञाबद्ध है और उसने यह कहा कि मैंने दर्शनों में यह अध्ययन किया है, मैंने वेद मंत्रें में यह अध्ययन किया है कि ”राजस्वत प्रवेः वृद्धम ब्रह्मवाचः अस्वतम तेवो व्यायकम् ब्रह्मदेवः“ वेद का ऋषि उच्चारण करता हुआ ऊँचे स्वरों से ध्वनि से कहता है कि हे मानव! तू अपने मनस्तव को ब्रह्मवाद में ले जा क्योंकि अपनी मानवीयता को तू जब ब्रह्मवाद में ले जाता जायेगा तो तेरी जीवन की जो प्रतिभा है वह महत्ता में परिणित होती रहेगी।

माता मदालसा वेद मन्त्रें का अध्ययन करती हुई, वे मन्त्रें की ध्वनियाँ करती हुई, जिससे अपने बाल्य को ऊँचा बनाने की प्रेरणा उसमें आती है और वह उसी काल में एकान्त स्थली पर विद्यमान हो करके वेदों का अध्ययन, दर्शनों की प्रतिभा, मानवीय दर्शनों को पढ़ती रहती, क्योंकि संसार का प्रत्येक प्राणी यह चाहता है कि मैं मानवीय दर्शन में रमण करने वाला बनूँ। अपने को जानना ही मानवीय दर्शन

कहलाया गया है, जो मानव अपने को जानता है वह इस संसार की प्रतिभा को जानता है। 7 जनवरी, 1966, (पुष्प 30)

वह गर्भस्थल में जो शिशु विद्यमान है, मेरे प्यारे! जिसका प०चीकरण हो रहा है त्रिवृत्तों में रत रहकर के उसके संस्कार बन रहे है। मानो देखो, माता मदालसा इसी प्रकार की बाल्य को शिक्षा देती रही। जब वह माता के गर्भ से पृथक होते हुए बालक को लोरियों का पान कराती हुई यह उच्चारण करती "हे आत्मा! तू तो सदैव रहने वाला है। तेरा ह्रास नहीं होता, तेरी मृत्यु नहीं होती। मानो तू तो ज्ञानमयी स्रेत है। मानो देखो, तू सदैव प्रकाश में रहती है। बुद्धिमान है क्योंकि नाना प्रकार की जो बुद्धियों का निर्माण हेता है वह तेरी आत्मचेतना से हुआ करता है। मेरे पुत्रों ! देखो, वह विवेचना करती रहती जैसे परम ब्रह्म परमात्मा जिसे ब्रह्म कहते हैं जब उसका सन्निधान प्रकृति से होता है और प्रकृति से सन्निधान होते ही यह पृथ्वी नाना प्रकार के व्य०जनों वाली बन जाती है। नाना प्रकार के व्य०जनों से प्रकृति इसको सजातीय बना देती है। इसी प्रकार हे "आत्म ब्रह्मे लोकाम्" मानो यह प्रकृति ही अपने रूप में रत रहने वाली है। तुम्हें यह प्रतीत है कि मन प्रकृति का सूक्ष्मतम तन्तु माना गया है, परन्तु इसी से चार प्रकार की बुद्धियों का निर्माण होता है। जब मन से प्राण का सन्निधान होता है तो ऋतम्भरा, प्रज्ञा और मेधा मानो ये चारों प्रकार की बुद्धियों का निर्माण होता है। मेरे प्यारे! देखो, चित्तमण्डल मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार बेटा! देखो, चितं रथं ब्रह्मा मुनिवरो! देखो, चित्त उसे कहते हैं जहाँ आत्मा के

जन्मजन्मान्तरों के संस्कार विद्यमान होते हैं। माता मदालसा कहती हे आत्मा! तू जब मेरी लोरियों से पृथक होगा और जब तू मेरे द्वारा दिये ब्रह्मज्ञान का अध्ययन करेगा तो उस समय तेरा कर्तव्य है कि तू अपने चित्त के ऊपर अध्ययन करने वाला बन क्योंकि यह जो चित्त है इसमें नाना जन्म जन्मान्तरों के संस्कार विद्यमान होते हैं, इस चित्त के मण्डल को जानकर तुझे अहंकार की अवस्था को प्राप्त करना है। 10 अप्रैल, 1987, करनाल, मेरठ, (वैदिक विज्ञान)

माता मदालसा के गर्भ से कुछ समय पश्चात् शिशु का जन्म हुआ। वह बाल्य जब पृथ्वी की गोद में आ गया तो माता मदालसा कहती है, हे! पृथ्वी माता, तू अपने शिशु को अपने में धारण कर, अब तक मैंने इसको अपने गर्भ में धारण किया है और देवताओं की उपासना की और देवता ने इसकी रक्षा की है अब तेरा कर्त्तव्य है कि इसे अपने में धारण कर। पृथ्वी के गर्भ में आकर, इसी में रत रहकर कोई वैज्ञानिक, कोई ब्रह्मवेत्ता बन जाता है। माता याग कर रही है, अपने में विज्ञानशाला में विद्यमान हो करके बालक को ब्रह्म विद्या प्रदान करा रही है। हे! माता, हे! शिशु यह ब्रह्म क्या है? यह वही ब्रह्म है जो तेरी रक्षा कर रहा है, वही ब्रह्म है जो तुझे अनुशासन में ला रहा है। वही ब्रह्म है जो उत्पत्ति के मूल में था, जो तेरे अंग संग रहने वाला है, मानो देखो सर्वज्ञ है, सर्व शक्तिमान है, महानता में रमण करने वाला वही तो तेरा प्रभु है, उसी की तुझे उपासना करनी है। मुझे संसार के क्षेत्र में प्रवेश नहीं होना है। माता इस प्रकार ऊर्ध्वा में गति करने लगती है तो वह ऊर्ध्वा जो 'साधम ब्रह्मे' तो वह

ब्रह्मवेत्ता बाल्य को पाँच वर्ष की आयु तक ब्रह्मवेत्ता बना देती है। माता ने जब पुत्रों को ब्रह्मवेत्ता बनाया तो उसके तीन पुत्र ऊर्ध्वावेता बन गये। तीन पुत्र जब ऊर्ध्वावेता बन गये, वे ब्रह्म की आभा में रमण करते हुए ऊर्ध्वा में गान गाने लगे। ब्रह्म की आभा में निहित हो गये। ब्रह्म की आभा में रमण करते हुए कहें 'ब्रह्म वर्त्ता अश्वतम् वाचस्वतम् ब्रह्मः।' ब्रह्म के संरक्षण में रमण करते हुए पाँच वर्ष की आयु में ब्रह्मवेत्ता बनकर भयंकर वनों में तपस्या करने चले गये। ब्रह्मज्ञान होना उसी काल में सार्थक होता है, जब साधक को ब्रह्म का बोध हो वह तपस्वी सर्वज्ञ हो तपां में निष्ट बन जाए और परमपिता-परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान में रत हो जाये। परमात्मा की आभा में निहित होकर, अपनेपन में ही वह दर्शन करने लगे। वह बाल्य ब्रहे। जब माता के तीन पुत्र ब्रह्मवेत्ता बन गये, और ऊर्ध्वा को प्राप्त हो गये। 21 अप्रैल, 1990, मोदी नगर, (यागमयी साधना)

अन्न से निर्माण

माता मदालसा अपने तीनों पुत्रों को, ब्रह्मवेत्ता बनाना चाहती थी। माता मदालसा दर्शनों को विचार में लाती रहती। गायत्री का पठन-पाठन करते हुए अन्न को अग्नि में तपाती रहती। अग्नि में भी विशेषता होती है। जो वृक्ष होते हैं उनकी समिधाओं की अग्नि का भी अन्न पर प्रभाव होता है।

यह जो मन है इसका अन्न और वनस्पतियों से विशेष सम्बन्ध रहता है। मन पर इनकी बहुत सी विशेषताएं रहती हैं। आज हमें

विचारना है कि कैसे अन्न को हमें पान करना है? इसलिए अन्न के रूप में नाना प्रकार के अन्न की महत्ता मानी गयी है। 4 फरवरी, 1985, (पुष्प-46)

पुत्र से मोह नहीं स्नेह और प्रेम

माता तो जन्म देती है, वह पालन करने वाली है और पालना में भी बाल्य को ज्ञान देती है और ज्ञान देकर माता अपने को धन्य मानती हुई मोह और ममतामयी बन कर, प्रीति करे, प्रीति में जीवन होता है, प्रेम में जीवन होता है मोह में मृत्यु होती है। माता मदालसा जानती थी कि तुझे प्रेम करना है, तुझे मोह ममता नहीं करनी है, मोह नहीं करना है, प्रीति करनी है, प्रेम करना है। क्योंकि प्रेम से जुड़ा हुआ यह संसार है, यह प्रेम से संकल्प बद्ध हो रहा है। परमपिता परमात्मा ने सृष्टि के प्रारम्भ में जब प्रकृति से प्रीति की तो यह जगत पिण्ड बन गया। जब और प्रीति की तो उग्रगति आ गई, उग्रगति से इस संसार का विभाजन हो गया। यह ब्रह्माण्ड के रूप में दृष्टिपात आने लगा। इसका नाम है प्रेम, इसका नाम है स्नेह। हमें स्नेह और प्रीति करनी मोह नहीं करना है मोह करोगे तो तुम्हारी मृत्यु हो जायेगी। जो माता यह जानती है कि तुझे माता मदालसा की भांति योग्य बनना है वह अपने बाल्य से स्नेह और प्रीति तो करती है मोह नहीं। 15 मार्च, 1986, बरनावा, (पुष्प-51)

४ पाँच वर्ष के ब्रह्मवेत्ता पुत्र

बेटा! पांच वर्ष का जब ब्रह्मचारी हुआ तो माता से नमस्कार करके

बोला, हे मातेः! अब हम चले। उन्होंने (माता मदालसा) कहा कहाँ? पुत्र ने कहा, हे माता! हम तपस्या करने जा रहे हैं, क्योंकि ब्रह्मज्ञान की शिक्षा तो हमने तुमसे प्राप्त कर ली है। अब हम तपस्वी बनना चाहते हैं। माता पुलकित हो गयी उसने आनन्दित होकर यह कहा धन्य है, हे बालक! अब मेरा सौभाग्य महान बन गया है। मेरी जो इच्छा थी वह तुम्हारी हो गई है। तुम तपस्वी बनो। माता मदालसा के तीन सन्तान इसी प्रकार की हुइंर्; जिनका नाम प्रव्हाण, शिलाक और दालभ्य था। मार्कण्डेय पुराण के अनुसार माता मदालसा के पुत्रों के नाम विक्रान्त, सुबाहु और शत्रुमर्दन थे। यह तीन ऋषि माता मदालसा ने स्वेच्छा से उत्पन्न किए। जिनके निर्माण में माता के त्याग और तप की प्रतिभा रही। प्रव्हाण और दालभ्य तो सतयुग के काल में महान ब्रह्मवेत्ता कहलाए गए। 10 दिसम्बर, 1981, त्रिनगर (नई दिल्ली), पुष्प-39

माता मदालसा का जब पाँच वर्ष का ब्रह्मचारी ब्रह्मवेत्ता हो गया, पाँच वर्ष का होते ही वह कहता है माता मुझे आज्ञा दीजिये। माता मदालसा कहती हैं, कहाँ जाना है? उसने कहा माता! ये मैं नहीं जानता कि कहाँ जाऊँगा? परन्तु मेरे हृदय में प्रबल भावना बलवती हो गयी है कि मैं तप करने जा रहा हूँ। मैं तपस्वी बनना चाहता हूँ। तो मेरे प्यारे! पाँच वर्ष का ब्रह्मचारी तपस्या के लिये गमन करता है। तो माता अपने में हर्ष ध्वनि करती है और माता कहती है मेरा जीवन सफल हो गया है क्योंकि मेरे गर्भ में उत्पन्न होने वाला पुत्र इस संसार के व्यापार में संलग्न न रहा, वह ब्रह्मवेत्ता बन करके ब्रह्म

की खोज में, ब्रह्म की आभा में रत हो गया है। मेरे प्यारे! माता मदालसा अपने में हर्ष ध्वनि कर रही है, तो ब्रह्मचारी जब तप के लिये जाने लगा तो माता मदालसा ने कहा ब्रह्मचारी! मैं यह जानना चाहती हूँ कि तप किसे कहते हैं? उन्होंने कहा माता! मैं नहीं जानता कि तप किसे कहते हैं? माता मदालसा ने कहा कि उग्र क्रिया का नाम तप कहा जाता है। तुम्हारे हृदय में ब्रह्म की जिज्ञासा जागरुक हुई है। संसार के नाना प्रकार के काम, क्रोध, लोभ, मोह वाले जगत को मानो तूने त्याग दिया है और जगत को त्याग करके तू परमपिता परमात्मा के आनन्दमयी रहस्य को अपनी वृत्तियों में लाना चाहते हो, जाओ। ब्रह्मचारी तपस्यं ब्रह्माः उग्र क्रिया का नाम तप है जैसे मेघों से वृष्टि हुआ करती है। मेघों में जब विद्युत गमन करती है और जब मेघ को अपने मानो वज्र से जब छिन्न-भिन्न कर देते हैं तो उस उग्र क्रिया का परिणाम वृष्टि कहलाता है। मानो देखो, जब दर्शनों के अनुसार जब यह पृथ्वी तपा करती है तो सूर्य की किरण अपने में उग्र रूप धारण करके इस पृथ्वी को तपा देती है। ये नाना प्रकार के व्य०जनों वाली मानो देखो, ये पृथ्वी बन जाती है। तो मेरे पुत्रों! जब माता मदालसा ने ब्रह्मचारी को यह उपदेश दे दिया, तो वह नतमस्तक हो करके उनके चरणों की वन्दना करता हुआ बेटा! वहाँ से गमन करता हुआ भयंकर वन में जा पहुँचा। 10 अप्रैल, 1987, करनाल, (वैदिक विज्ञान)

माता मदालसा का पाँच वर्ष का बालक ब्रह्मवेता बन कर कहता है। हे माता मुझे आज्ञा दीजिए, मैं ब्रह्मवेता बन गया हूँ अब मैं

तपस्या करने जा रहा हूँ क्योंकि ज्ञान के पश्चात् ही साधना की उपलब्धि होती है। मैं साधना में प्रवेश करना चाहता हूँ। मुझे आज्ञा दो! माता मदालसा प्रसन्न हो गई। उनके अन्तर्हृदय में प्रसन्नता की तरंगें फूटने लगीं। वह विचारने लगी कि आज मैं कितनी सौभाग्य शालिनी हूँ। जो मेरे गर्भ से उत्पन्न होने वाला पुत्र इस संसार के वैभव में संसार के रजोगुणी तमोगुणी पदार्थों में रत नहीं है। मानो यह मेरी तपस्या का परिणाम है। अपने में हर्ष ध्वनि करती हुई बेटा! माता मदालसा पुत्र से कहती है, "हे सम्भवः पुत्रों भवः ब्रह्मे वाचन्नमे ब्रह्माः। मेरे प्यारे! माता कहती "जाओ बालक ब्रह्मवेत्ता बनो" मेरे प्यारे देखो। तपस्या करने के लिए ब्रह्मचारी भयंकर वन में चले गए। माता मदालसा के तीन पुत्र इसी प्रकार एक-एक करके ब्रह्मज्ञान के लिए वन में चले गये। 1 दिसम्बर, 1985, मथुरा, (आत्मा का भोजन)

ब्रह्मज्ञान की सार्थकता

ब्रह्म ज्ञान होना उसी काल में सार्थक होता है जब साधक को ब्रह्म का बोध हो। वह सर्वज्ञ बन तपस्वी बन तपोनिष्ठ बन जाए और परमात्मा के ज्ञान-विज्ञान में रत हो जाए। परमात्मा की आभा मे निहित होकर, अपनेपन में ही उसका वह दर्शन करने लगे। वह वाल्यम ब्रह्मे! माता मदालसा के तीन पुत्र ब्रह्मवेत्ता बन गये। 24 अपै्रल, 1990, मोदी नगर, (यागमयी साधना)

बेटा, मैंने तुम्हें कई काल में वर्णन कराया था, जिसमें दान की

बड़ी विचित्र महिमा का वर्णन है जो हमारे यहां माताएं अपने पुत्रों को प्रदान करती रही हैं। मुझे स्मरण है बेटा, जब हृदय के उद्गार उर्ध्वा में गमन करते हैं जो पुत्र को महान बना देते हैं। तो माता मदालसा के तीनों पुत्र ही ब्रह्मवेत्ता बन गये और माता ने उनसे यह कहा हे पुत्रों, जाओ तुम ब्रह्मज्ञान और यौगिकता को प्राप्त करके समाज को ऊँचा बनाओ। देखो माता द्रव्य नहीं चाहती। माता कहती है कोई भी द्रव्यपति ब्रह्मवेत्ता नहीं बन पाता। 'दानात्वा दानम् ब्रह्माः माता मदालसा ने अपने पुत्रों को समर्पित कर दिया। समर्पित क्यों किया क्योंकि कोई भी बुद्धिमान माता होगी वह यह चाहती है कि मेरा पुत्र ब्रह्मवेत्ता बन जाए। माता यह चाहती है कि मेरा पुत्र प्रभु के निकट चला जाये। माताओं के जो उद्गार हैं, वह बड़े विचित्र रहे हैं। माताओं का पुत्र निर्माण में बड़ा सहयोग रहा है। (पुष्प-58)

द्वितीय ब्रह्मवेत्ता पुत्र

माता मदालसा के गर्भस्थल में बेटा! जब द्वितीय बार आत्मा का प्रवेश हुआ तो वह उस आत्मा से भी इसी प्रकार की वार्ता प्रकट करती रही, वह कहती हे आत्मा! "अखण्डं ज्योति ब्रह्मः लोकां ब्रहे" हे आत्मा तू तो अखण्ड ज्योति है और ऐसी आनन्दमयी ज्योति है जो सदैव प्रदीप्त रहती है, वह शान्त नहीं होती है। हे आत्मा! तू आत्मा ज्योति है। तू मानो ब्रह्म से सहायता पा करके, तू ब्रह्म को अपने में धारण करने लगती है। मानो इस प्रकार आत्मा का उपदेश देते हुए गर्भस्थल में बेटा! जो इस प्रकार का माता मदालसा उपदेश

दे रही है। इसके पश्चात जब वह संसार में, इस पृथ्वी मण्डल पर आ गया, उससे माता मदालसा कहती है। हे बालक! तू पृथ्वी की गोद में आ गया है। तू वसुन्धरा की गोद में आ गया है। ये ऐसी वसुन्धरा है, जिसमें सर्वत्र ब्रह्माण्ड की प्रतिभा निहित रहती है। जिसमें मानो नाना प्रकार के ज्ञान और विज्ञान के तन्तुओं का जन्म होता है, ये वही वसुन्धरा कहलाती है। हे बालक! तू माता जननी के गर्भ से पृथक होकर के इस माता पृथ्वी के गर्भ में आ गया है। अब यही तुझे खाद्य, खनिज पदार्थों का प्रदान करती है। यही बेटा! वसुन्धरा है। जब तू इससे पृथक् हो जायेगा तो वह जो परमपिता परमात्मा है जो सर्वत्र जगत का नियन्ता है वही तो मानो तुझे आनन्द अपनी लोरियों का पान करायेगा। वहाँ ज्ञान रूपी लोरी है यहाँ खाद्यान्न रूपी लोरियाँ हैं और इस माता की लोरियों का पान करता हुआ तू देख, ब्रह्मवेत्ता बनने की इच्छुकता में लग, मेरे प्यारे! देखो, माता उस बाल्य को भी इस प्रकार का उपदेश दे रही है।

वह बालक भी पाँच वर्ष का ब्रह्माचारी माता से कहता है माता मुझे आज्ञा दो, मैं ब्रह्मवेत्ता बनूँ। अब, मैं तपस्या करने जा रहा हूँ। मेरे प्यारे! माता मदालसा ने कहा, हे बालक! मैं जानना चाहती हूँ, ये तपस्या तुम्हें कहाँ से प्राप्त हुई है। उन्होंने कहा माता ने ज्ञान दिया है और उससे ही मुझमें ज्ञान की उग्र रूप धारा बनी है। मेरी अन्तरात्मा के सहयोग से। यही तो इसकी उपलब्धियाँ कहलाती हें। आज मेरी अन्तरात्मा प्रसन्न है, माता! तूने मुझे ब्रह्मवेत्ता बनाया है। मैं इस संसार के अव्ययों में रत रहना नहीं चाहता जहाँ किसी का मान

हो रहा है, कोई अपमानित हो रहा है। मैं मान और अपमान दोनों से रहित होकर के, वह जो चेतना है जो इस संसार को, और मुझे धारण किये हुए है, उसकी गोद में जाना चाहता हूँ। मेरे प्यारे! देखो, माता बड़ी प्रसन्न हुई, माता ने कहा धन्य है तू ब्रह्मचारी! मेरा अन्तरात्मा बड़ा प्रसन्न है। मेरे प्यारे! देखो, वह भी तपस्या के लिये चला गया। 8 अप्रैल, 1987, करनाल (मेरठ), (वैदिक विज्ञान)

तृतीय ब्रह्मवेत्ता पुत्र

विचार आता रहता है, माता मदालसा के गर्भ में जब तृतीय बार आत्मा का प्रवेश हुआ तो माता उसे ये उपदेश देती रहती, ”हे आत्मा! मेरे शरीर में तूने वास किया है। तू कहाँ से आया है? तू कौन से चित्त मण्डल से आकर के मेरे हृदय में प्रवेश कर गया है? हे आत्मा! हे बालक! तू मेरा हृदय है। हे आत्मा! तू चेतना है, मानो देखो, तू नाना प्रकार के अवगुणों से पृथक् रहता है। ”आत्मा ब्रह्मः लोकाम्“ मेरे प्यारे! देखो, आत्मा के कारण ही नाना प्रकार के लोक-लोकान्तरों का निर्माण होता है। मेरे प्यारे! देखो, भूः भुवः स्वः ये तीन प्रकार की आभाओं का जन्म होता रहता है। जिसमें बेटा! तीन प्रकार के परमाणु गति करते रहते हैं। उन्हीं परमाणुओं से मानो देखो, उन्हीं परमाणुओं का जब संघर्ष होता है तो वह तरंगें उद्बुद्ध होकर के मानव के जीवन को स०चालित करती रहती हैं। मेरे पुत्रों! देखो, वही तो विज्ञान अपनी आभा में गति करता रहता है। नेत्रें की पुतलियों में रत हो करके वह एक प्रकाश का मूलक बन जाता है।

मेरे पुत्रों! देखो, माता मदालसा अपने ब्रह्मचारी को गर्भ में यह शिक्षा दे रही है और कहती है ब्रह्मचारी! तू संसार के भौतिक विज्ञान को जान करके तुझे आध्यात्मिकवाद में प्रवेश करना है। आध्यात्मिक विज्ञान में तुझे रत रहना है। तो मेरे पुत्रों! जब इस प्रकार की शिक्षा माता प्रदान कर रही है। जिसे गर्भ में बाल्य ग्रहण कर रहा है। जब वह बाल्य, मुनिवरों! माता के गर्भ से पृथक् होता है तो उस समय कहती है "आत्मा ब्रह्मे" हे आत्मा, तू ब्रह्म को जान। मेरे प्यारे! देखो, जब यह पाँच वर्ष का ब्रह्मचारी भी ब्रह्मवेत्ता बन गया तो बेटा! ऐसा मुझे स्मरण है, ऐसा साहित्य कहता है कि बेटा! वह भी तपस्या के लिए भयङ्कर वन को चला गया। 8 अप्रैल, 1987, करनाल (मेरठ), वैदिक विज्ञान

तीन वर्ष के पुत्र के प्रश्न

जब वह आत्मा माता मदालसा के गर्भ स्थल में थी तो वह गर्भ में स्थित आत्मा से वार्ता प्रकट करती रहती थी। आत्मा से आत्मा का मिलान होता है। आत्मा से आत्मा का समन्वय होता है। आत्मा से आत्मा की धाराओं का परिवर्तन हो जाता है। मेरे प्यारे! जब यह बाल्य कुछ उच्चारण करने लगा तो माता ने उसके हृदय को उज्ज्वल बना दिया। मेरे प्यारे। उनका बाल्य कुछ प्रबल हुआ वार्ता प्रकट करने लगा तो उस माता से प्रश्न करने लगा। केवल तीन वर्ष का बाल्य माता से यह कहता है कि हे माता! माता का आभूषण क्या है? माता मदालसा कहती है कि माता का आभूषण माता की वाणी

है। उसकी वाणी में पवित्रवाद होना चाहिए। जब पुनः उसने यह प्रश्न किया कि माता का आभूषण क्या है? तो माता कहती है ”यगाम् ब्रह्मः वन प्रवे यागः“ हे पुत्र! जो माता पुत्र को योग की तरह प्रदीप्त बना देती है, जो ज्ञान रूपी अग्नि पुत्र में प्रवेश करा देती है, तो वह पुत्र माता का पवित्र आभूषण माना गया है। मेरे प्यारे! पुत्र ने पुनः कहा कि माता का आभूषण क्या है? माता मदालसा ने कहा हे बालक! हे ब्रह्मवर्चोसि! माता का आभूषण यह है कि माता का पुत्र, योगी बन जाये। माता का पुत्र संसार के वैभव में रमण करने वाला न हो। माता का पुत्र योगेश्वर बन जाए, वह लोकान्तरों की उड़ान वाला हो। वह आत्मा परमात्मा से मिलान करने वाला हो, वह सर्वत्र राजाओ का भूषण बन जाए, अधिराज बन करके रहे। ऐसा पुत्र माता का आभूषण माना गया है। मेरे प्यारे! पुनः जब प्रश्न किया कि ”हे माता! तू मेरी प्रिय माता है। परन्तु मैं यह पुनः उच्चारण करना चाहता हूँ कि माता का आभूषण क्या है? माता मदालसा कहती है ”सम्भवः वेदः ब्रह्माः लोकः“ हे बालक! हे ब्रह्मवर्चोसि! माता का आभूषण वह है कि माता के पुत्र को मृत्यु का भय न रहे। वह मृत्यु को अपने से दूर कर दे। मृत्यु उसके आंगन में न रहे। उसमें अन्तर्द्वन्द्व न रहे। वह माता का पुत्र मानवीत्य और निर्भयता दोनों को प्राप्त हो और वही माता का वास्तविक आभूषण है। मेरे प्यारे! बालक मौन हो गया।

एक समय माता मदालसा याग कर रही थी पुनः ब्रह्मचारी ब्रह्मवर्चासि, बालक प्रश्न करने लगा ”हे माता! तू मेरी प्रिय माता है। तू ममत्व को धारण करने वाली याज्ञिक है। माता का कौन सा याग

है? मेरे प्यारे! मदालसा ने कहा कि माता का याग वह है जिससे माता अपने में जो शक्तियाँ है उन्हें एकत्रित करके हृदय रूपी यज्ञशाला में जो धुकधुकियों की आहुति देती है और उसके पश्चात् माता कर्त्तव्यवादी बन जाती है, संकीर्णता की आहूति दे देती है और बालक की पालना करती है, लोरियों को देती हुई उसे ब्रह्मज्ञान का उपदेश देती है, उसे तेजोमयी बनाने के लिए प्रेरित करती है, यही माता का प्रिय याग है। वह बालक राष्ट्र या किसी भी क्षेत्र में गमन करने वाला हो। संसार के वैभव से संसार के वैभव में रस नहीं होता। माता ने उसको निर्माणित करके संसार को अर्पित कर दिया है, राष्ट्र को अर्पित कर दिया है, पृथ्वी माता को प्रदान कर दिया है। पृथ्वी माता उस पुत्र को अपने में धारण कर लेती है। मेरे प्यारे। मुझे स्मरण है कि माता मदालसा के तीन पुत्र थे। तीनों वह कितने ब्रह्मवेत्ता थे। वह सदैव ब्रह्म से वार्ता प्रकट करते रहते थे। वह ब्रह्मचारी पाँच वर्ष के होते ही माता से कहते, हे मातेश्वरी! "आपने हमें याज्ञिक बना दिया, अब हम आध्यात्मिक याग के याज्ञिक बन गए हैं। अब हमें आज्ञा दीजिए, हम भयंकर वन में तपस्या करने जा रहे हैं।

मेरे प्यारे! माता प्रसन्न हो गयी। माता कहती है कि यह मेरा अहोभाग्य है, आज मैं कितनी सौभाग्यशाली बन गयी हूँ, आज मेरा बाल्य ब्रह्म से वार्ता प्रकट करने जा रहा है। ब्रह्मचारी, वर्चोसी बनकर के आत्मीयत्व को जानने के लिए ब्रह्मयाग करने जा रहा है। माता उस समय प्रसन्न हो रही है। मेरे प्यारे शिलाक, प्रव्हाण और दालभ्य,

तीनों भयंकर वन में जा करके संसार के विषय वासनाओं का साकल्य बना करके, काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह इत्यादियों का साकल्य बना करके उसकी आहुति दे, ब्रह्मयाग कर रहे है। हृदय में उसको अर्पित कर रहे हैं और ब्रह्मवेत्ता बनकर उनके द्वारा ब्रह्म की उड़ान उड़ी जा रही है। 21 नवम्बर, 1982, लाजपतनगर (नई दिल्ली),पुष्प-40

ब्रह्मचारी कौन?

मेरे प्यारे! देखो, पाँच वर्ष का ब्रह्मचारी, पाँच वर्ष का माता मदालसा का पुत्र बेटा! देखो, वह एक समय माता से बोला कि हे मातेश्वरी! अब मुझे आज्ञा दीजिए "ब्रह्मवेत्ता ब्रह्मणो व्रताः" मैंने ब्रह्म के उपदेश का तो पान कर लिया है। अब मैं मानो देखो, मनन और चिन्तन करने जा रहा हूँ। मुझे भयङ्कर वन में जाने के लिये आज्ञा दीजिए। मेरे प्यारे! देखो, माता बड़ी प्रसन्न हुई और माता ने कहा कि मेरा जो उद्देश्य था, मेरे अतीत में मैंने एक सङ्कल्प किया था, कि मेरे गर्भ से ऐसे बालक का जन्म हो, जो ब्रह्मवेत्ता बन पूर्ण हुआ। मेरे पुत्र! तुम्हें सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण, तीनों गुणों की मैंने शिक्षा प्रदान की है। मेरे प्यारे! वह बालक ब्रह्मचरिष्यामि वह मुनिवरों! भयङ्कर वन को चला गया और भयङ्कर वन में जाकर के बेटा! छः माह के पश्चात मेरे पुत्रे! देखो, चिन्तन करने के पश्चात, उस बाल्य का माता के गृह में पुनः प्रवेश हुआ।

माता ने कहा, हे बाल्य! हे ब्रह्मचरिष्यामि! ब्रह्म की जिज्ञासा

वाले हे बालक! कैसे मेरे द्वार पर पुनः तुम्हारा प्रवेश हुआ है? बालक ने कहा हे माता! मैं तुमसे कुछ जानना चाहता हूँ। उन्होंने कहा तुम उद्गीत गाओ, क्या जानना चाहते हो? उन्होंने माता मदालसा से कहा-हे माता! यह ब्रह्म क्या है जिसका तुमने मुझे उपदेश दिया है और यह कहा है कि "ब्रह्मणां ब्रह्माः कृतं लोकाम्" उन्होंने कहा ब्रह्म उसे कहते हैं, जो संसार का अधिपति है, इस संसार को रचने वाला है। एक-एक परमाणुवाद मानो देखो, इसमें जो गति आ रही है, यह जो संसार गतिवान हो रहा है ये ब्रह्म की प्रतिभा से गतिवान हो रहा है। मेरे प्यारे! उन्होंने कहा चलो, यह मैंने स्वीकार कर लिया। परन्तु देखो, हम जानना क्या चाहते हैं? इसके सम्बन्ध में? माता ने कहा कि तुम अपने को जानना चाहते हो और अपने को जानकर के मानो देखो, जहाँ तुम्हें जाना है वहाँ के लिये तुम सदैव अपने में अपनेपन का चिन्तन कर रहे हो। उन्होंने कहा-धन्यं ब्रह्मे। उन्होंने कहा-हे मातेश्वरी! हम यह और जानना चाहते हैं कि ये जो जगत है, यह किसमें व्याप्त हो रहा है? मानो देखो, यह जो जगत है ब्रह्मणां, ब्रह्म से ही यह व्याप्त है। जहाँ भी तुम दृष्टिपात करोगे वहीं तुम्हें यह जगत् उस ब्रह्म से व्याप्त होता हुआ दृष्टिपात आयेगा। मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने कहा, हे माता! मैं यह और जानना चाहता हूँ कि यह जो लोक- लोकान्तरों की जो माला बनी हुई है, यह जो लोक-लोकान्तर हैं, ये किसमें पिरोये हुए हैं? उन्होंने कहा कि जो लोक-लोकान्तर हमें दृष्टिपात आ रहे हैं यह माला है और माला मानो देखो, माला में एक सूत्र होता है और उस सूत्र में नाना मनके पिरोए

हुए होते हैं। इसी प्रकार यह जो ब्रह्माण्ड है यह जो लोक लोकान्तरवाद है। यह मानो देखो, ब्रह्म सूत्र में पिरोया हुआ है। यह ब्रह्मसूत्र में पिरोकर के एक पिण्ड के रूप में दृष्टिपात आ रहा है। जैसे, मानो देखो, हमारे गर्भ में तुम्हारा निर्माण हुआ और नाना प्रकार के परमाणु एकत्रित होकर के, उनका एक पिण्ड बन गया है और पिण्ड में देखो, एक अभिमानी आत्मा है जो अपने को 'अहं ब्रह्मास्मि' कहकर के ब्रह्म के समीप जाना चाहती है। हे बाल्य! ब्रह्मणां ब्रहां ये जो ब्रह्माण्ड है, यह जो लोक लोकान्तरवाद है, एक सूत्र में पिरोया हुआ है और लोक-लोकान्तरवाद ही नहीं एक-एक परमाणु भी इसमें पिरोया हुआ है।

मेरे पुत्रे! देखो, ब्रह्मणः ब्रह्म कृतं देवाः वेदके ऋषियों ने इस प्रकार का वर्णन किया है। माता मदालसा के वाक्यों को पान करने वाला ब्रह्मचारी बोला कि हे मातेश्वरी! तुम मुझे ब्रह्मचारी क्यों कहती हो? मैं नहीं जान पाता हूँ कि तुम ब्रह्मचारी मुझे उच्चारण किये जा रही हो? उन्होंने कहा हे ब्रह्मचारिष्यामि! तुझे ब्रह्मचारी इसलिये कह रही हूँ कि इसमें दो शब्द माने गये हैं। ब्रह्म है, और चरी है। यह जो चरी है, इसका नाम प्रकृति है और ब्रह्म परमपिता परमात्मा को कहा जाता है। मानो जो दोनों का मन्थन करने वाला है वह मन्थन कर रहा है। ब्रह्मचरिष्यामि बप्रतम् जो प्रत्येक मानो आभा को अपने में दृष्टिपात करने वाला है और वह ब्रह्म अस्सुमत देखो, ब्रह्म और चरी दोनों का ही मन्थन करता है। मानो देखो, दोनों के गर्भ में एक मृत्यु देखो, नृत्य कर रही है। मृत्यु को जो दूर करना चाहता है, वह

ब्रह्मचारी कहलाता है। इसीलिए तू ब्रह्मचारी है। क्योंकि तू अपने में महान कहलायेगा। मेरे पुत्रों! जब माता मदालसा ने यह कहा तो ब्रह्मचारी ने कहा हे माता! यह भी मैंने स्वीकार कर लिया। यह आपने जो मुझे उत्तर दिया, परन्तु ये जानना चाहता हूँ ब्रह्मचारी कौन है?

ब्रह्मचारी पुनः यह प्रश्न करने लगा कि ब्रह्मचारी कौन है? उन्होंने कहा हे बाल्य! जो साधक होता है और साधना में प्रवेश करता है, मानो देखो, जो प्रत्येक श्वास "मानं ब्रहे कृतं लोकाः" प्रत्येक श्वास को मानो देखो, तरङ्ग को ब्रह्मसूत्र में जो पिरोने वाला है, वह ब्रह्मचारी कहलाता है। मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने कहा हे माता! यह भी मैंने जान लिया। परन्तु मेरा यह प्रश्न है कि ब्रह्मचारी कौन है? उन्होंने कहा हे बालक! ब्रह्मचारी वह है जो मोक्ष की पगडण्डी को ग्रहण करना चाहता है। जो प्रकाश की पगडण्डी में प्रवेश कर जाता है और अन्धकार की पगडण्डी से दूर हो जाता है। क्योंकि दो प्रकार के मार्ग हमारे यहाँ माने गये हैं। एक मानो इस संसार का मार्ग है और एक चेतना का, ब्रह्म का, प्रकाश का मार्ग है। जिसे ज्ञानवान ग्रहण करते हैं। हे ब्रह्मचारी! जो ज्ञानवान् बनकर के अन्धकार को दूर करने वाला है, वही ब्रह्मचारी कहलाता है। मेरे प्यारे! देखो, ब्रह्मचारी ने स्वीकार कर लिया उन्होंने कहा माता! यह भी मैंने स्वीकार कर लिया परन्तु मैं यह जानना चाहता हूँ, ब्रह्मचारी कौन है? उन्होंने कहा- हे पुत्र! ब्रह्मचारी वह कहलाता है, जो इस संसार को विजय कर लेता है और संसार को वह विजय करता है, जो मन को अपने में धारण

करता हुआ प्राण में प्रवेश कर देता है और प्राण प्रतिष्ठा जिसके विचारों में प्रवेश हो जाती है। देखो, मन, प्राण और विचार जब ये तीनों एक सूत्र के मनके बन जाते हैं, तो वह ब्रह्मचारी मृत्यु को विजय कर लेता है और वही ब्रह्मचारी कहलाता है। मेरे प्यारे! देखो, माता मदालसा का बाल्य, छः वर्ष का ब्रह्मचारी यह उनसे प्रश्न कर रहा है।

पुनः उसने ये प्रश्न किया कि हे माता! ब्रह्मचारी कौन कहलाता है? ब्रह्मचारी तुम किसे उच्चारण करती हो? उन्होंने कहा ब्रह्मचारी वह कहलाता है, जो मानो देखो, "ब्रह्मणं ब्रभा कृतं" जो वसुन्धरा को जानता है। मानो देखो, वसुन्धरा क्या है? वसुन्धरा कहते हैं, जो पालन करने वाली है। मानो देखो, वसुन्धरा मेरे प्यारे! देखो, जो पृथ्वी से लेकर के और मुनिवरों! देखा, माता और वह जो परमपिता परमात्मा वसुन्धरा है, इन तीनों को जानने वाले को बेटा! ब्रह्मचारी कहते हैं। मेरे प्यारे! देखो, माता के उपदेशों को, देखो, कृतिका को पान करके वह मौन हो गया। उसने कहा माता! यह मैंने जान लिया परन्तु मेरा एक प्रश्न और रह गया कि ब्रह्म किसे कहते हैं?

माता मदालसा ने कहा ब्रह्म परमपिता परमात्मा को कहते हैं। जिसमें ब्रह्माण्ड सर्वत्र पिरोया हुआ है। ब्रह्म, आत्मा को भी कहते हैं। जो देखो, आत्मा इस शरीर में वास कर रहा है जिस आत्म चिन्तन में मानव अपनी प्रवृत्तियों को ऊर्ध्वा में गमन कराता रहता है। मानो देखो, यह जो ब्रह्म है, यह आत्मा है, यह आत्मा जिसके कारण यह मानव का शरीर चेतन रहता है और चेतना में गमन करता रहता है

और ज्ञान को प्राप्त करता रहता है, वह ब्रह्म कहलाता है। मेरे प्यारे! देखो, एक परमपिता परमात्मा ब्रह्म है, जिसके कारण यह ब्रह्माण्ड देखो, गतिवान हो रहा है। नाना प्रकार के लोक-लोकान्तर गतिमान हो रहे हैं, वह ब्रह्म कहलाता है तो मेरे प्यारे! देखो, विचार-विनिमय क्या? जब माता ने यह वाक् प्रकट किया तो ब्रह्मचारी अपने में मौन हो गया। उसने कहा धन्य है मातेश्वरी! देखो, उस बालक का सौभाग्य है, जिस बालक की माता बुद्धिमती हो, बुद्धिमान हो और ज्ञानवान होकर के माता वसुन्धरा की भाँति जो हमारा पालन करने वाली हो।

तो मेरे प्यारे! देखो, यह वाक् ऋषि-मुनियों के विचाराधीन हुआ कि मानो देखो, मानव के बाल्यकाल से लेकर के मृत्यु पर्यन्त माता के गर्भ से ले करके मानो देखो, इस संसार में शरीरों को त्यागने से पूर्व आत्मतत्व का ध्यान जिसे हो जाता है, वो मानो देखो, अपनी आभा में प्रवेश कर जाता है। तो मेरे प्यारे! देखो, ऋषि मुनियों ने एकत्रित होकर के इनके ऊपर बड़ा अनुसन्धान किया और विचार-विनिमय किया है और उन्होंने कहा है कि माता जब यह स्वीकार करती है कि मैं अपने बाल्य को संस्कार देना चाहती हूँ, विचार देना चाहती हूँ, तो उसके पश्चात वह याग करती है। याग रचाती है, मानो देखो, वो याग के द्वारा बाल्य को शिक्षा प्रदान करती है। मानो देखो, बाह्य पदार्थों को आन्तरिक जगत में उन्हें ले जाती है और उसके विचार जो उनमें भावना है, उन्हें जब वह प्रवेश करा देती है, तो बेटा, माता अपने जीवन में धन्य हो जाती है।

मेरे प्यारे! देखो, माता ने जब प्रथम बाल्य को ब्रह्मवेत्ता बनाया, द्वितीय को ब्रह्मवेत्ता बनाया। तृतीय को ब्रह्मवेता बनाया। मेरे प्यारे! जब तीनों पुत्र उनके ब्रह्मवेत्ता बन गये मानो ब्रह्म जिज्ञासा में प्रवेश हो गये और वह माता से प्रश्न करते रहते, और वे ओजस्वी और देखो, विवेकी बनकर के वो भयङ्कर वनों में प्रवेश कर गये। 16 फरवरी, 1987, सुवाहेड़ी (बिजनौर)

५ मदालसा का पुरुषार्थ

मानव को जो भी गान गाना चाहिए हृदय से गाना चाहिए। क्योंकि जितना भी संसार का महत्ता वाला कर्म है वह सर्वत्र एक गान के रूप में है।

माता मदालसा जब गान गाती थी तो अपने अन्तःकरण से गाती और अपने हृदय को दृढ़ बना लेती थी। परिणाम यह कि उनका पाँच वर्ष का बालक ब्रह्मवेत्ता बन करके माता से आज्ञा ले कि माता अब मैं ब्रह्मवर्चोसि अग्नि को जाना चाहता हूँ। माता प्रसन्न हो रही है और यह उच्चारण कर रही है कि आज मेरा जो पुरुषार्थ है, मेरा गान है, मेरा शुभ कर्म, मेरा शुभ गायन है वह सफल हो गया है। माता अपने में हर्ष ध्वनि कर रही है और यह उच्चारण कर रही है कि मैं कितनी सौभाग्य शाली हूँ आज मेरा पुत्र ब्रह्मवेत्ता बनने के लिए जा रहा है।

माता हृदय से गान गाती है और उसके गर्भ में जब हम जैसे पुत्र जरायुज रूप में रहते हैं तो उस समय माता हृदय से जब गान गाती है तो उसमें माता मदालसा की भांति अपने पुत्र को अपने गर्भ

में ही ब्रह्मवेत्ता बनाने की उत्सुकता लग जाती है। 19 जनवरी, 1983, सुवाहेडी (बिजनौर), पुष्प-40

वैज्ञानिक माता मदालसा

माता मदालसा जहां श्रोत्रिय विज्ञान को जानती थीं, वहीं प्राणायाम विज्ञान को भी जानती थी। वह अपने गर्भ स्थल में यह अनुभव कर लेती थी कि कैसी बुद्धि वाला पुत्र मेरे गर्भ से जन्म लेगा। माता मदालसा इसे ज्ञान-विज्ञान के द्वारा अपने पुत्र को ब्रह्मवेत्ता बनाती थी। हमारे यहाँ इस विज्ञान का ज्ञान माता को होना चाहिए। हमारी माताएं जो इस विज्ञान मे रमण करती हैं वह अपने बालक की आभा को जानती हैं। माता विचार उनकी आभा उनके पुत्रों में परिणत हो जाती है। 1 अक्टूबर, 1981, नगोला, पुष्प-40

राजा की चिन्ता

तीनों ब्रह्मचारी जब ब्रह्मवेत्ता बन गये। अब राजा को यह चिंता हुई कि मेरा राष्ट्र आगे कैसे चलेगा? जब तीन-तीन ब्रह्मचारी ब्रह्मवेत्ता बन गये हैं। अब मेरा राज्य कैसे चल पायेगा? ये तो तभी चलेगा जब राष्ट्रवेत्ता का जन्म होगा। मेरे प्यारे! जब माता के गर्भस्थल में चतुर्थ ब्रह्मचारी की आत्मा का प्रवेश हुआ तो बेटा! राजा ने उस माता मदालसा से कहा, हे देवी! हमारा मनुवंश का बड़ा विचित्र राष्ट्र चला आ रहा है। यह राष्ट्र कैसे चलेगा? जब यह सब पुत्र सन्यास को प्राप्त हो जायेंगे। हे ब्रहे! मैं जान नहीं पा रहा हूँ कि आगे राष्ट्र का वेत्ता कौन बनेगा? माता मदालसा ने कहा- प्रभु मैं भी नहीं

जानती। मैंने तो यह प्रतिज्ञा की थी कि पुत्र मेरी इच्छा अनुसार होंगे। उन्होंने कहा देवी! मेरी इच्छा यह है कि एक बालक तुम्हारे गर्भ से देखो, राष्ट्रीय बन जाये और वह अयोध्या का अधिराज बने। 8 अप्रैल, 1987, करनावल (मेरठ), (वैदिक विज्ञान)

मदालसा का राजनिष्ठ पुत्र

माता मदालसा ने कहा, भगवन् अब की बार जिस राजकुमार का जन्म होगा। राजन्! आपका यह पुत्र राजा बन जायेगा। परन्तु मैं बारह वर्ष के पश्चात् अपना शरीरान्त करूँगी। क्योंकि इसके पश्चात मैं संसार में रहना नहीं चाहूँगी। यह मेरी प्रतिज्ञा है। राजा मौन हो गये। माता मदालसा ने विचार किया कि इस आत्मा को कोई शिक्षा नहीं देनी है। उसे कोई शिक्षा नहीं दी। उस आत्मा से कोई चर्चा नहीं की और अब राष्ट्रीय अन्न को ग्रहण किया। मेरे प्यारे! पुत्र माता के गर्भ में पनप रहा है। राष्ट्रीय विचार आ रहे हैं। जब वह गर्भ से पृथक हुआ तो उसकी पालना भी राष्ट्रीय विचारों में होने लगी।

माता मदालसा आगे सन्तान को जन्म न देने के लिए संकल्पबद्ध हो गयी। आचार्य के समक्ष उन्होंने संकल्प किया था कि प्रभु यदि मैं गृह में प्रवेश हो गयी तो ब्रह्मवेत्ता सन्तान को ही जन्म दूंगी। यदि सन्तान ब्रह्मवेत्ता नहीं होगी और मेरे पति ने मेरी वार्ता का उल्लंघन किया तो उसके पश्चात एक सन्तान को जन्म देकर मैं परलोक को चली जाऊंगी। यही उसने राजा से कहा। भगवन्! जब यह बाल्य बारह वर्ष का ब्रह्मचारी हो जाएगा तो उस समय मैं अपने

शरीर को त्याग दूंगी। 21 अप्रैल, 1990, मोदी नगर, (यागमयी साधना)

ब्रह्मवेत्ता पुत्र को उत्पन्न न करने पर मदालसा का शरीर त्याग

मदालसा जब गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने लगी, तो उससे पूर्व माता मदालसा का यही विचारा था कि मैं अपने गर्भस्थल से महान पुत्रों को जन्म देना चाहती हूँ। उन्होंने अपने गर्भ स्थल में देवी सम्पदा का पूजन करके आत्मा का ज्ञान अपने गर्भ स्थल में प्रवेश कराया था वह बालक को जब लोरियों का पान कराती तब उन्हें ब्रह्म का उपदेश देती रहती थी। जब यह ब्रह्म का उपदेश पूर्ण हो जाता तो पाँच वर्ष के पश्चात वह बालक ब्रह्मवेत्ता बन करके, माता के चरणों को छू करके गृह को त्याग देते। माता मदालसा देवी सम्पदा का पूजन कर रही थी, ब्रह्मवेत्ता बन करके पुत्रों को ब्रह्मवेता बना रही थी। उसका यह हृदयग्राही बन गया था कि इस संसार में मुझे कोई कुछ दृष्टिपात नहीं आ रहा है। मेरे गर्भ स्थल से उत्पन्न होने वाला पुत्र ब्रह्मवेता होना चाहिए, वह ब्रह्म की उड़ान उड़ने वाला और दर्शनों की उड़ान उड़ने वाला हो और जब राजा ने यह कहा, देवतम् ब्रह्मो वृताः। हे देवी राष्ट्र का उद्धार कैसे होगा? राष्ट्र कैसे महान बनेगा? तब माता मदालसा कहती है, हे राजन्! एक साधारण सन्तान को जन्म देने के पश्चात् मुझे सन्तान को जन्म देने का अधिकार नहीं रहेगा। मैं आगे सन्तान को जन्म नहीं दे सकूंगी। मेरे प्यारे! देखो, वह चतुर्थ बालक राजवंश को प्राप्त हुआ। राजस्वी बन गया। वह

माता का संकल्प था कि मुझे अपने जीवन को उत्तरायण बनाना है। वह बालक को गायत्री माता की गोद में प्रवेश करा कर और स्वयं गायत्री छन्दों के पठन-पाठन दर्शनों का अध्ययन करती। जब बालक बारह वर्ष का हो गया तो राजा को अपने समीप विद्यमान करके देवी बोली राजन्! अब मैं अपने शरीर को त्याग रही हूँ। वह बोले कि देवी! तुम इस शरीर को क्यों त्याग रही हो? माता मदालसा ने कहा, कि मैं इसलिए त्याग रही हूँ क्योंकि मेरे जीवन का उत्तरायण आ गया है। अब मेरे जीवन में दक्षिणायन नहीं रहा। आपको प्रतीत है मैंने बारह वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन किया है। मैंने ब्रह्म मे अपने को लीन होने के लिए ब्रह्मचरिष्यामी मानो ब्रह्म ने आभा को प्राप्त किया है। अब मैं अपने शरीर को त्यागना चाहती हूँ। राजा ने कहा हे देवी। मेरा यह गृह शून्यता को प्राप्त हो जायेगा। उन्होंने कहा हे भगवन्! यह तो मेरी प्रतिज्ञा थी। मैंने संस्कार से पूर्व आचार्य से और आपसे यह कहा था कि पाँच वर्ष तक मेरे संरक्षण में बालक का पालन-पोषण-शिक्षा होनी चाहिए। परन्तु आपने वाक्य को स्वीकार नहीं किया। इस कारण मैं बारह वर्ष तक अपने जीवन को उत्तरायण बना करके अपने शरीर को त्यागना चाहती हूँ।

माता मदालसा ने उस समय अपने शरीर को गायत्री की गोद में प्रवेश करके प्राणायाम किया और प्राण की गति के द्वारा उदान, आत्मा और चित्त, तीनों का समन्वय करके इस शरीर को उदान प्राण के द्वारा आत्मा के साथ त्याग दिया। शरीर को त्यागने के पश्चात द्यौ-लोक को प्राप्त हो गई। उन्हें मोक्ष की प्राप्ति हो गयी। 20 अप्रैल,

1977, अमृतसर, (देवपूजा)

मातृधर्म से मोक्ष की प्राप्ति

माता मदालसा जब मनु वंश में संस्कारित हुई और वहाँ उन्होंने जब तीन पुत्रों को जन्म दिया, तीनों पुत्रों से प्रेम किया और प्रेम करते हुए उन्हें ब्रह्मवेत्ता बना दिया। पाँच वर्ष का ब्रह्मचारी ब्रह्म की उड़ान उड़ रहा है, ब्रह्म से वार्ता प्रकट कर रहा है, माता से प्रश्न कर रहा है, शास्त्रर्थ कर रहा है और वह माता प्रेम से उन्हें ब्रह्म का उपदेश दे करके ब्रह्मवेता बना रही है। वही माता मदालसा स्वयं भी मोक्ष को चली गई। माता मदालसा ने चार सन्तानों को जन्म दिया तीन को ब्रह्मवेता और एक को राजा बना करके, गायत्री छन्दों का पठन पाठन करती हुई श्रुति में परिणत हो करके, परमपिता परमात्मा की इच्छा कहकर अपने शरीर को प्राणायाम के द्वारा त्याग दिया और मोक्ष के आंगन में प्रवेश हो गई। उन्हें मोक्ष नहीं हुआ किन्तु मोक्ष के निकट हो गई। मोक्ष के निकटतम अगले लोकां में जन्म देकर के उनका मोक्ष हो गया।

अकर्तव्य राष्ट्र और समाज के लिए घातक

व्यापक विचारों में जब हम चले जायेंगे तो वास्तव हमें हमारा मोक्ष प्राप्त हो जायेगा। देवियाँ मोक्ष में नहीं जा सकती यह विचार एक आक्रमणीय विचार है। जब यह दैवी का शरीर आत्मा ज्ञानी बन सकता है, क्योंकि ज्ञान और कर्म इस आत्मा का मौलिक गुण है, वह सर्वत्रता में इस प्रकार का क्रिया कलाप कर सकता है, तो मोक्ष

में क्यां नहीं जा सकता। महानन्द जी ने कहा कि कुछ देवियों को मोक्ष हुआ। यह कहना है कि कुछ दैवीय आत्माएं थीं, जिन्हें मोक्ष प्राप्त हुआ। यह वाक्य इनका विकृतता में चला गया। यह वाक्य यथार्थ नहीं है क्योंकि आत्मा तो एक लिंग है वह पुल्लिंग या स्त्रीलिंग नहीं कहलाता।

संसार में प्रेम होना चाहिए, संसार में कर्त्तव्य होना चाहिए, अकर्तव्य में मोह आ जाता है, विडम्बना आ जाती है। वही विडम्बना राष्ट्र और समाज का विनाश कर देती है। 15 मार्च, 1986, बरनावा, पुष्प-51

कन्या याग

यागों का चयन करते हुए महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने एक कन्या याग का वर्णन किया है। नाना यागों में कन्या याग का भी अपने स्थान में महत्व माना गया है। परन्तु कन्या कहते किसे हैं और कन्या याग क्या है? वेद के ऋषियों ने इसके ऊपर अनुसंधान किया। वेद में आया है कि कन्या याग होना चाहिए। वेद का ऋषि कहता है और वेद में मन्त्र आता है कि कन्या सबसे प्रथम देव लोक में रहती है, उसके पश्चात् पितर लोक में रहती है। इसके पश्चात् पतिलोक को प्राप्त होकर वहाँ याग करने का उसे अधिकार प्राप्त होता है। ऐसा वेद का ऋषि कहता है, अर्थात वेद का आचार्य कहता है, याज्ञवल्क्य मुनि कह रहे हैं। 10 सितम्बर, 1983, त्रिनगर (नई दिल्ली), पुष्प-39

मुनिवरों देखा, माता मदालसा का जीवन व्यतीत होता रहा वह बाल्य बारह वर्ष का हो गया तो एक आसन पर बाल्य है, एक पर अपने पति राजा को बैठाकर माता मदालसा ने कहा, ”भगवन् विराजिये और मुनिवरां! देखो, एक स्थली पर पुत्र है, तो द्वितीय पर राजा। उन्होंने कहा- हे राजन्! मेरा बारह वर्ष का काल पूर्ण हो गया है। अब मैं अपने शरीर को त्याग रही हूँ, जहाँ से मेरा आत्मा ब्रह्मे। मैं अपने लोक को जा रही हूँ। अब मैं अपने परलोक को जा रही हूँ। जहाँ से मेरा आगम हुआ था, भगवन! अब मैं वहीं जाना चाहती हूँ। राजा ने कहा देवी! हमारा क्या बनेगा? माता मदालसा ने कहा, भगवन्! मैं नहीं जानती, मेरी तो प्रतिज्ञा है, मैंने जो वेद के अध्ययन के साथ प्रतिज्ञाएं की हैं वह मेरी देखो महान हैं। ”प्रभु! हे राजन्! जो प्रतिज्ञा मैंने की है उस संकल्प को नहीं त्यागूंगी। यह संसार कहाँ जाता है, संसार की क्या गति होती है। इसे मैं नहीं जान पायी। परन्तु मेरा एक ही संकल्प है, जो मैंने आचार्य के चरणों में विद्यमान होकर किया है। वह संकल्प पूर्ण हो गया है और मैं उस संकल्प के आधार पर शरीर त्यागना चाहती हूँ। 21 अप्रैल, 1990, मोदी नगर, (यागमयी साधना)

मुनिवरों! देखो, इसने साथ ”अप्रतं ब्रह्माः“ याग किया और गायत्री का जप करके उन्होंने एक वसीयत अपने पुत्र को दी और वह उसके कण्ठ में नियुक्त कर दी उसमें दो ही शब्द थे कि पुत्र यह संसार निस्सार है। नमस्तं ब्रह्माः हमारे आचार्यों की, जो पवित्र विद्या है वह मानव को ऊर्ध्वा में उपदेश दे रही है। हे माता! तू वसुन्धरा है!

तू वसुन्धरा बन करके, हमें अपने गर्भ स्थल में वसा रही है। तब तू वसा लेती है तो यह संसार महान बन जाता है। 1 दिसम्बर, 1985, मथुरा, (आत्मा का भोजन)

माता मदालसा जब अपने शरीर को त्यागने लगी तो उनके चारों पुत्र उनके आंगन में विद्यमान थे। महर्षि प्रव्हाण, महर्षि शिलक, महर्षि दालभ्य और मुनिवरों रेनवृचीक (अलार्क)। उस समय महर्षि प्रव्हाण ने कहा कि माता! अब तुम कहाँ जा रही हो? उन्होंने कहा, हे पुत्र! यह तो मुझे प्रतीत नहीं कि मैं कहाँ जा रही हूँ। परन्तु मैं अपने शरीर को शुक्लपक्ष में त्यागना चाहती हूँ। उन्होंने (प्रव्हाण) कहा हे मातेश्वरी! तुम्हारा जीवन तो बाल्य काल से ही शुक्ल पक्ष में कहलाता है, आज शरीर को त्यागते समय शुक्ल पक्ष की कामना क्यां कर रही हो? माता ने कहा-”हे पुत्र! मैं इसलिए कामना कर रही हूँ क्योंकि मैं शुक्लपक्ष में जाना चाहती हूँ। जिससे मेरा अगला जीवन प्रकाशमयी बन जाए। मेरे प्यारे! देखो महर्षि शिलक बोले-”माता तुम तो बाल्य काल से ही हमें ब्रह्मज्ञान देती रही हो। ब्रह्मज्ञान का वर्णन कराती रही हो, आज भी तुम ब्रह्मज्ञान का वर्णन करा रही हो। परन्तु हम यह जानना चाहते हैं कि अब तुम्हारा वास कहाँ होगा? माता मदालसा ने कहा, ”हे पुत्रों मैं नहीं जानती कि यह मेरा शरीर कहाँ जायेगा, परन्तु मैं इतना जानती हूँ कि मैं शुक्लपक्ष में जाना चाहती हूँ। जिससे मुझे प्रकाश ही प्रकाश प्राप्त हो, मेरे पुत्रों! महर्षि प्रव्हाण बोले, ”हे माता! तुम कौन से प्रकाश को चाहती हो?“ माता मदालसा ने कहा कि मैं आत्म प्रकाश को चाहती हूँ। मैं उस प्रकाश

को चाहती हूँ जिससे यह संसार मेरे लिए उदासीन हो जाए। मेरे प्यारे देखो, उस काल में बारह वर्ष का ब्रह्मचारी जो राजा बनने वाला था वह उनके पति के समीप विद्यमान था, परन्तु तीनों पुत्र जो उन्होंने ब्रह्मवेत्ता बना दिये थे वह माता के समीप विद्यमान थे। शरीर को त्यागने से पूर्व जब ब्रह्मचारियों ने माता मदालसा से प्रश्न किये, तो उसके पश्चात पन्द्रह दिवस तक वह गायत्री माता की गोद में चली गई। जब पन्द्रह दिवस पूर्ण हो गये और माता मदालसा के प्रत्येक श्वास में प्रभु की प्रतिभा निहित हो गई। जब पूर्ण अमावस्या का समय आ गया, अमावस्या के पश्चात शुक्ल पक्ष जब पूर्ण रूपेण आ गया तो बेटा! गायत्री माता से वह कहती है कि माता मैं तेरी गोद में आ गई हूँ। अब मैं अपने शरीर को त्यागना चाहती हूँ।

जो महापुरुष होते हैं, जो मेरी पुत्री वीरांगना होती हैं, विदुषियां होती हैं वह अपने संकल्प के आधार पर अपने शरीर का अन्त कर देती हैं, जिससे यह जीवन प्रकाश में चला जाए। 28 अक्टूबर, 1985, सरधना (मेरठ), (तप का महत्व)

माता मदालसा ने प्राणायाम किया। प्राण अपान और उदान की पुट लगाकर समान को एकाग्र करती हुई उन्होंने गायत्री छन्दों का पठन-पाठन करते हुए साथ में प्राण को आधृत किया। निरोध करने के पश्चात कुम्भक, रेचक, प्राणायाम की गतियों में लाकर उन्होंने अपना शरीर त्याग दिया और यह कहा, ”देवम् ब्रह्मा, देवम् ब्रह्मे, देवम् गायत्री, देव सम्मवा देवता ब्रहे।“

यह उद्गीथ गाते हुए अपना शरीर त्याग दिया। राजा बड़े व्याकुल

हुए। पुत्र और पतिदेव ने माता मदालसा का संस्कार किया। संस्कार के पश्चात अपने वृत्तियों में उन्होंने पुत्र को राज्य देकर स्वयं भयंकर वनों में तप के लिए चले गये। कुछ समय तपस्या करके उन्होंने अपने शरीर का प्राणान्त कर दिया। 21 अप्रैल, 1990, मोदी नगर, (यागमयी साधना)

मेरे पुत्रे! स्वर्ग में वही जाता है और मोक्ष को वही प्राप्त होता है जो अपने शरीर को स्वेच्छा से त्यागता है और ज्ञान से उसका भरण होता है। उसे न मोह होता है न ममता होती है। न काम होता है न क्रोध होता है। 13 अप्रैल, 1977, आजमपुर (बिजनौर), पुष्प-35

आत्मा इस शरीर को त्यागकर कहाँ जाता है? देखो अन्त में शरीर को त्यागते समय जो विचार रहते हैं उन्हीं विचारों का मानो एक सूत्र बना करके उसी पर रमण करता है और वह देखो मन्तव्य करके माता के शरीर में प्रवेश हो जाता है।

कुछ आत्मायें ऐसी हैं जो देव लोक में चली जाती हैं उनमें जो योगाभ्यास है, कुछ समय तक निर्द्वन्द होकर के योगी आत्मा मानो देखो क्षेत्र में भ्रमण करती हैं। मुनिवरों देखो उन्हें मोक्ष नहीं हुआ होता परन्तु ऐसी कुछ आत्माओं को जीवन मुक्त कहते हैं। जीवन मुक्त उसे कहते हैं जो मानो देखो जीवन से मुक्त हैं, मरण से मुक्त हैं। परन्तु वह 'मध्यम योगम् ब्रह्मे' वेद की आख्यायिका कहती है वह जीवन से मानो इसलिए मुक्त है क्योंकि वह शरीर को स्वेच्छा से धारण करते हैं और स्वेच्छा से इस शरीर को त्याग देते हैं।

बेटा! जैसे मदालसा ने यह कहा था कि मैं संस्कार राजा से तब

करा सकती हूँ जब मैं अपनी इच्छा के अनुसार, मैं अपने क्रियाकलाप करूँ। राजा ने स्वीकार कर लिया। जब उनके तीन ब्रह्मचारी देखो ब्रह्मवेत्ता बन गये और एक राजा बन गया तो उस समय उन्होंने यह प्रतिज्ञा की कि अब मैं बारह वर्ष के पश्चात् अपने शरीर को स्वेच्छा से त्यागूँगी। 26 जून, 1992, खुर्रमपुर (गाजियाबाद), (स्वर्ग का मार्ग)

६ माताओं को संदेश

माता मदालसा एक वाक्य कहा करती थीं, वेद की विदुषी यह कहती रहती थी कि मेरे पुत्र की मृत्यु न हो। वह अपने गर्भ में आने वाली आत्मा से अपनी आत्मा का समन्वय करती रहती थीं और उसे ब्रह्मज्ञान की धाराएं अर्पित करती रहती थीं। माता मदालसा यह कहती थीं जो माता यह चाहती है कि मेरे पुत्र की मृत्यु न हो, मेरा पुत्र मृत्युमयी बन जाये, तो गर्भावस्था में आत्मा का जब गर्भ में प्रवेश हो तो उस आत्मा से विवेचना और अपनी वार्ता प्रकट करनी चाहिए और ब्रह्मज्ञान को उस आत्मा की अन्तःस्थली में ओतप्रोत कर देना चाहिए। 3 जनवरी, 1988, कावली (मुफ्फरनगर), (विश्वामित्र का धनुर्याग)

राजा और राज्य

तो मेरे प्यारे! कुछ ऐसा स्मरण है कि अलर्क राज्य करता रहा। परन्तु राष्ट्रीय प्रणाली को त्याग दिया। जब भगवान मनु ने बेटा! राष्ट्रीय प्रणाली का निर्माण किया था और राष्ट्र का निर्माण किया, तो

बेटा! एक समय भगवान मनु से महती ऋषि ने यह कहा कि महाराज। तुम राष्ट्र का निर्माण क्यों कर रहे हो? उन्होंने कहा मैं इसलिये कर रहा हूँ क्योंकि प्रजा में, समाज में अकर्तव्यवाद आ गया है। कर्तव्यवाद लाने के लिये मैं राष्ट्र का निर्माण कर रहा हूँ। सबसे प्रथम राष्ट्र का जो निर्माण करने वाले थे वो भगवान् मनु थे। बेटा! मनु ने ऋषियों की सहायता से, राष्ट्र का निर्माण किया था। मेरे प्यारे! भगवान मनु ने ये कहा था कि राजा के राष्ट्र में, राजा को अध्वर्यु कहते हैं और राजा के यहाँ एक मछली से लेकर के मानो प्रत्येक प्राणी की रक्षा होनी चाहिए। ये भगवान् मनु ने कहा था। तो मेरे प्यारे! जब ऋषि ने यह कहा कि महाराज! तुम राष्ट्र का निर्माण इसलिए कर रहे हो कि प्रजा कर्तव्यवादी बन जाये। उन्होंने कह, हाँ प्रभु! तो भगवान् मनु ने, बेटा! राष्ट्र का निर्माण किया। तो इसी प्रकार देखो, उन्होंने एक नियमावली बनाई कि राजा पचास वर्ष की आयु या मानो देखो, पिचहत्तर वर्ष की और जो ज्यादा तपस्वी हो वह सौ वर्ष की आयु में मानो देखो, अपने आप सन्यास को प्राप्त कर ले और वह अपने राज्य को त्याग कर के, तपस्या करने लगे। मेरे प्यारे! भगवान मनु ने यह नियम, यह अप्रतम् अपने राष्ट्र के निर्माण करते समय बेटा यह नियमावली बनाई। वास्तव में यह कहा उन्होंने कि ब्रह्मचर्य, गृहस्थ आश्रम पूर्णकर और देखो, वह जो वानप्रस्थ वह विद्यालयों में शिक्षा देने वाले हों और मुनिवरों! देखो उसके पश्चात वह भ्रमण इत्यादि करते सन्यास को प्राप्त हो जायें। यह राष्ट्रीय प्रणाली देखो, भगवान मनु ने इस प्रणाली का निर्माण किया और

निर्माणवेत्ताओं ने बेटा! अन्त में ये कहा कि देखो, सन्यास लेते समय प्रभु को प्राप्त हो जाना चाहिए। 16 फरवरी, 1985, स्वाहेड़ी (बिजनौर)

अलर्क का राजमोह

हमारे यहाँ यह माना है कि संसार में सबसे प्रथम यदि किसी नगरी का निर्माण हुआ है तो बेटा! वह अयोध्या है, भगवान् मनु ने जिसका निर्माण किया। मेरे प्यारे! अयोध्या का निर्माण भगवान् मनु ने किया है क्योंकि मनु वृत्तियों में "ब्रह्माः वाचः देव" मेरे प्यारे! देखो, हजारों मनु वंशज ने बेटा! अयोध्या में राज्य किया। जब वह राजाधिराज बन गया। उस राजा के पुत्र भी हो गये। पौत्र भी होने लगे। तब भी वह राजस्थली को नहीं त्याग रहा था। ऋषि मुनि आते कि महाराज! अब तुम्हारा काल समाप्त हो गया है, अब तुम अपने ज्येष्ठ पुत्र को राष्ट्र देकर के तपस्या करने चलो। अलर्क ने कहा मैं इस राष्ट्र को नहीं त्यागूगाँ। वह राष्ट्र की ममता में, ऐश्वर्य में परिणत हो गया था। 10 अप्रैल, 1987, करनाल (मेरठ), (ब्रह्मविज्ञान)

वह अलार्क राज्य करता रहा। उनका गृहस्थ आश्रम सम्पन्न हो गया और वानप्रस्थ भी उसी स्थली पर पहुँच गया। वह सन्यास स्थलियों में परिणत हो गया। किन्तु वह राष्ट्र के इतना तल्लीन हो गया कि वृद्ध होकर भी राष्ट्र को नहीं त्याग रहा था। उसने ऋषि-मुनियों की मर्यादा अथवा उनकी जो परम्परा थी उसका उल्लंघन किया। भगवान मनु ने जब राष्ट्र का निर्माण किया था तो उन्होंने

जीवन को चार आश्रम में बाँटकर कहा था कि ब्रह्मचर्य आश्रम के पश्चात् गृहस्थ आश्रम, गृहस्थ आश्रम के पश्चात् वानप्रस्थ आश्रम है, उसके पश्चात् सन्यास आश्रम है, ब्रह्मचर्याश्रमं समाप्य गृही भवेत् गृही भूत्वा वनी भवेद्वनी प्रव्रजेत्॥ शतपथ ब्राह्मण का, 14॥ सन्यास में जाकर राजा को परमात्मा का चिन्तन करना है। राजा जब इतना त्यागी और तपस्वी हो जाता है तभी राष्ट्र और समाज उन्नत बनता है। जो राजा अपने चौथेपन को भी राष्ट्र में समाप्त कर देता है। वह राजा राजा नहीं कहलाता है। मानो वह राष्ट्र भी राष्ट्र नहीं कहलाता। यह तो देखो मर्यादा का उल्लंघन करना है। परमात्मा के क्षेत्र में अपने को अपनी मर्यादा को नष्ट करना है।

मेरे प्यारे परिणाम यह हुआ राष्ट्र में त्रही-त्रही हो गयी। मुनिवरां! जब त्रही-त्रही हो गयी तो महापुरुष जो तपस्वी पुरुष थे उनमें भी त्रही-त्रही हो गयी, क्योंकि राजा अपने राष्ट्र को नहीं त्याग रहा था। वह तो तीनों सन्यासी (प्रव्हाणा, शिलक और दालभ्य) थे, माता ने जिन्हें सन्यासी बनाया थे। उनके पास जाकर ऋषियों ने पुकार की। ”आपाम् ब्रहे“ कि तुम भी उस माता मदालसा के पुत्र हो, तुम्हारा वह राजा भी माता मदालसा का पुत्र है उसे सन्यास के मार्ग पर गमन कराओ। उन्होंने इस वाक्य को स्वीकार किया।

मनुष्यों को उचित है कि ब्रह्मचार्याश्रम को समाप्त कर के गृहस्थ होकर वानप्रस्थ होकर संन्यासी होवें अर्थात अनुक्रम से आश्रम का विधान है।

वनेषु च बिहृत्यैवं तृतीयं भागमायुषः।

चतुर्थमायुषो भागं त्यक्त्वा सङ्गान्परिव्रजेत्॥ मनु0॥

इस प्रकार वनों में आयु का तीसरा भाग अर्थात् पचासवें वर्ष से पिचहत्तरवें वर्ष पर्यन्त वानप्रस्थ होके आयु के चौथे भाग में संगों को छोड के परिव्राट् अर्थात संन्यासी हो जाये।

ब्रह्मवेत्ता पुत्रों द्वारा राष्ट्ररक्षा

मेरे प्यारे! देखो, वो तीन सन्यासी माता मदालसा के पुत्र जो महापुरुष थे। वे ऋषिवर विचारने लगे कि अयोध्या में तो बड़ा पापाचार हो रहा है। मुनिवरों! उन्होंने कहा-भगवन्! क्या हो रहा है? राजा संन्यासी अवस्था में भी सन्यास और तपस्या को नहीं जा रहा है, राष्ट्रीय प्रणाली का विनाश होने जा रहा है। मानो ऐसा कोई यत्न किया जाये जिससे यह राजा सन्यास ले ले और अयोध्या में देखो, उसका पुत्र राज का अधिकारी बन जाये, जिससे हमारे वंश की जो परम्परा है अथवा जो भी नियमावली है वह इसी प्रकार बनी रहे। तो मेरे पुत्रे! यह विचार करते हुए वे तीनों सन्यासी राजा के समीप आये, राजा ने अपनी स्थली को त्याग दिया और राजा ने कहा कहो भगवन्! आज कैसे आगमन हुआ है मुनिवरों का? मेरे प्यारे! उन्होंने एक स्वर में कहा-हे राजन! इस राष्ट्र को त्यागो, अपने जेष्ठ पुत्र को राज्य दे करके भयङ्कर वन में तपश्चर बनो। राजा ने कहा, ”यह मुझे स्वीकार नहीं है। मुझे राष्ट्र बहुत प्रिय लग रहा है। मैं इस राष्ट्र में रत हो गया हूँ मुझे यह बहुत प्रियतम है। मेरे प्यारे! देखो, ऋषियों की वार्ता को उन्होने स्वीकार नहीं किया। बेटा! देखो, द्वितीय राजा से

तीनों ऋषियों का सम्मिलन हुआ। तीनों ऋषियों ने स्वयं दूसरे राजा (काशीराज) से प्रार्थना की कि इस पर आक्रमण करो। एक दूसरे राजा से मिलकर के उस राजा पर आक्रमण कराया तो बेटा! देखो, वह "आक्रमण ब्रह्म" उस राजा ने आक्रमण किया था। अधिराज बन गया, जिन्होंने आक्रमण किया था, उसको जो राष्ट्र नहीं तज रहा था। कारागार में स्थिर कर दिया।

जब वह राजा कारागार में चले गये तो मुनिवरों! कारागार में, मानो जो आपत्तिकाल में होता है, उसमें मानव के संस्कार जागरुक होते हैं। भिन्न-भिन्न प्रकार के संस्कारों की उपलब्धियाँ होने लगती हैं। जब मुनिवरों! देखो, उन्हें विचार आया कि मेरी माता मदालसा, जब शरीर को त्यागने लगीं तो मेरे कण्ठ में एक वसीयत उन्होंने दी थी तो बेटा! उन्होंने उस वसीयत मानो देखो, लेखनी को अपने सम्मुख किया तो मुनिवरो! देखो, उसमें एक ही शब्द था माता का, कि हे पुत्र! यह निस्सार है, इसमे कोई सार नहीं है पुत्रवत्। इस शब्द को ग्रहण करते ही मुनिवरों! उनके संस्कार जागरुक हो गये और उन्होंने कारागार के कर्मचारियों से कहा जाओ, राजा से कहो कि वह सब वार्ता स्वीकार कर रहे हैं, मैं इस काल-आवृत्तियों से दूरी रहना चाहता हूँ, मेरे प्यारे! देखो, वह वार्ता राजा तक पहुँची। राजा सन्यासियों के सम्मुख पहुँचे उन्होंने कहा-हे ऋषिवर! देखो, वह राजा बड़ा व्याकुल हो रहा है। वो सन्यास के लिए तैयार हो गया है। मेरे प्यारे! देखो, वह सन्यासी जब कारागार में उनके निकट आये तो उनके चरणों को स्पर्श किया और कहा कि मेरी माता ने जो वार्ता

मुझे प्रकट की है, मुझे जो वसीयत दी है, मैं उसे स्वीकार कर रहा हूँ। मैं जो यह राष्ट्र है इसे त्याग कर मानो देखो, मैं भयंकर वन को तपस्या के लिए जा रहा हूँ। तो मेरे प्यारे! देखो, वह भयंकर वन में तपस्या के लिये चले गये और अपने ज्येष्ठ पुत्र को अधिराज बनाया और वह महापुरुष मेरे पुत्रे! राष्ट्र को राज्य वृत्तियों में परिणत करके बेटा! भयंकर वन में चले गये।

बेटा! देखो, गृह वह कहलाता है। जिस गृह में त्याग की प्रवृत्ति बनी रहे, वह गार्हपत्य नाम की अग्नि कहलाती है। गृह वह ही प्रियतम है। गार्हपत्य नाम की अग्नि का अभिप्राय यह है कि जिस गृह में माता तपस्वी है, पिता भी तपस्वी बना हुआ है। मुनिवरों! उसके पश्चात् जब गृह आश्रम में ज्येष्ठ पुत्र उत्पन्न हो जाये, तो उसके युवा राष्ट्र की या गृह की सम्पत्ति प्रदान कर देनी चाहिए। यह ऋषि-मुनियों की नियमावली, निर्माणित की हुई थी। उसके पश्चात् देखो, वानप्रस्थ ले ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणियों को शिक्षा दे। राजाओं के यहाँ एक नियमावली यह भी थी परम्परागतों से कि कन्याओं की शिक्षा भिन्न हो और ब्रह्मचारियों की शिक्षा भिन्न हो। मेरे पुत्रों! भगवान मनु के काल से लेकर के वर्तमान के काल तक उसके अवशेष प्राप्त होते रहे हैं। वानप्रस्थ गृहस्वामिनी और वानप्रस्थी जब विद्यालयों में ऊँची शिक्षा प्रदान करते हैं, अपने अनुभव को देते हैं, याग इत्यादि करने में वो संलग्न रहते हैं। बेटा! देखो, वह जो विदुषी है वह विद्यालय में ब्रह्मचारिणियों को विदुषी बनाती है। अपने अनुभव और देखो, सरल सी सर्व शिक्षा को प्रदान कर देती है, तो ब्रह्मचारिणियाँ

अपने कर्तव्य का पालन करती हुई याग इत्यादियों में बेटा! संलग्न होकर के गृहसूत्रें को अपनी माला के रूप मे अपने कण्ठ में धारण करने लगती हैं। मेरे प्यारे! इसी प्रकार विद्यालयों में जब ब्रह्मचारी अध्ययन करता रहता है, तो वह गार्हपत्य नाम की अग्नि का पूजन करता हुआ, अपने में महान तपश्चर बन जाता है। हमारे ऋषि-मुनियों ने सृष्टि के प्रारम्भ में एकत्रित होकर के यह नाना प्रकार की नियमावलियों का निर्माण किया है। उन्हीं नियमावलियों में जब मानव अपने में रत रहता है तो यह गृह स्वर्ग बन जाता है। समाज और राष्ट्र भी स्वर्ग बन जाता है। राजा और प्रजा अपने को सौभाग्यशाली अपने को स्वीकार करते रहते हैं।

विचार यह है कि माता मदालसा की यह गाथा इसलिये प्रकट की कि माता जब गार्हपत्य नाम की अग्नि की पूजा करती है पितर भी जब गार्हपत्य नाम की अग्नि की पूजा करता है तो बेटा! उसके पश्चात् हवनीय अग्नि में प्रवेश हो जाता है। आह्वनीय अग्नि उसे कहते हैं जहाँ मेरे प्यारे! देखो, विद्यालयों में शिक्षा प्रदान की जाती है। वह विद्यालय बेटा! पवित्र बनते हैं, जिन विद्यालयों वानप्रस्थियों द्वारा शिक्षा प्रदान की जाती है। वह विद्यालय बेटा! पवित्र बनते हैं क्योंकि अनुभव आचार्य मेरे प्यारे! देखो, जब शिक्षा देने वाले होते हैं, अपने द्वारा चरित्र की प्रतिभा भी देते रहते हैं, नैतिकता उनके समीप रहती है, बेटा! वे गृह और आश्रम और राष्ट्र की वेदी में प्रवेश हो जाते हैं। मुनिवरों! देखो, ऋषि मुनियों ने अपने में बेटा! इसी प्रकार का विचार दिया, इसी प्रकार को वेदमन्त्रें से लेकर के उन्होंने एक भूमिका

बनायी। एक माला बनायी जीवन की, चार आश्रम की व्यवस्था दी कि मानव का जीवन इस प्रकार व्यतीत होना चाहिए। मेरे प्यारे! जब यह वानप्रस्थ काल भी समाप्त हो जाता है। शिक्षा देने के योग्य नहीं रहते, उनका तपस्या का जीवन तो बन ही गया होता है। तब विद्यालय को त्यागकर के भयंकर वनों में अपने जीवन को आग्नेय बना करके मेरे प्यारे! जैसे आग्नेय वस्त्र होते हैं उसी प्रकार अपने मन, कर्म, वचन को आग्नेय बना करके बेटा! वो तपस्या में परिणत हो जाते हैं। भयंकर वनों में जाकर के वो तप कर रहे हैं। परमात्मा से आत्मा की वार्ता कर रहे हैं। अपने ज्ञान का मन्थन कर रहे हैं। मेरे प्यारे! देखो, परमपिता परमात्मा का जो दिया हुआ अनुपम ज्ञान है अथवा प्रकाश है, उस प्रकाश में अपनी पगडण्डी को बना लेते हैं और मोक्ष के लिये तत्पर हो जाते हैं।

हे मानव! तू अपने बाल्यकाल से वृद्धकाल तक अपने जीवन को महान बनाता चल। क्योंकि वृद्धकाल कोई काल नहीं हेता है। मानव का जीवन जब अस्वस्थता में परिवर्तित होता है तो उसको हमारे यहाँ वृद्धकाल कहते हैं। वास्तव में वृद्धकाल कोई काल नहीं होता, यह अशुद्ध कल्पना कही है। जब मानव अपने जीवन में परमपिता के निकट ब्रह्मचर्य, त्याग और तपस्या से रहता है तो उस मानव को रूग्ण सूक्ष्म होते हैं। मानो देखो, उसे वृद्धपन नहीं आता है वह परमपिता परमात्मा को अन्त में प्राप्त हो जाता है।

७ धर्म और राष्ट्र एक सूत्र दो मनके

तो आओ, मेरे पुत्रों! जब महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज मानो बेटा! तपस्या करके पुनः अपने विद्यालय में आ पहुँचे। उन्होंने जो तपस्या के काल में, अपने मनस्तव का शोधन किया और अपनी प्रतिक्रियाओं को विचित्र बनाया और उन्होंने जो लेखनियाँबद्ध की उस काल में, वे लेखनियाँ बेटा! ब्रह्मचारियों के मध्य में आई। मेरे प्यारे! देखो, ब्रह्मचारी ऋषि की उन लेखनियों को पान करते रहे। याज्ञवल्क्य मुनि ने एक लेखनीबद्ध की शतपथ ब्राह्मण की। जिसमें उन्होंने लोकों का वर्णन किया है। मानो देखो, उन्होंने भिन्न-भिन्न प्रकार के लोकों की विवेचनाएँ की। सबसे प्रथम वे मानो देखो, यागों की कल्पना करने लगे और भिन्न-भिन्न प्रकार के याग और उन यागों के क्रिया कलाप करने वाले, भिन्न-भिन्न लोकों का वर्णन उन्होंने किया। तो मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने एक कन्या याग का भी वर्णन किया है। बहुत पुरातनकाल हुआ जब बेटा! इन वाक्यों को लेकर ऋषि मुनियों ने, अपने में समाधिस्थ होकर के यागों का वर्णन किया है। याग का वर्णन करते हुए उन्होंने बेटा! सबसे प्रथम कन्या याग का वर्णन किया। हमारे यहाँ, जहाँ नाना प्रकर के याग होते हैं, जैसे वाजपेयी याग है, अग्निष्टोम याग है, अश्वमेध याग है और मुनिवरों! देखो, देवी याग है, पुत्रेष्टि याग और वृष्टियागों का वर्णन प्रायः वैदिक साहित्य में आता रहता है परन्तु वहाँ एक कन्या याग का भी वर्णन आता है। हमारे यहाँ आदि ऋषियों ने बेटा वैदिक साहित्य को विचारा और वैदिक साहित्य में मानव की प्रतिदिन की क्रियाओं का उनके जीवन के क्रिया कलापों का बेटा वैदिक मन्त्रें को लेकर के विश्लेषण

किया। वह विश्लेषणां क्या है? मैं उसमें ही जाना चाहता हूँ।

बहुत पुरातन काल हुआ जब ऋषि मुनियों ने बेटा! इसके ऊपर विश्लेषण किया उन्होंने कहा मानव के जीवन में जब आध्यात्मिक याग और मानवी प्रतिभाओं में रत होकर के मानो भौतिक यागों का चलन, मानव के लिए एक धार्मिक और व्यावहारिक क्षेत्र बन जाता है। आधुनिक काल का मानव कहता है कि धर्म मानो देखो, भिन्न है और राष्ट्रवाद भिन्न है। मैंने अपने विचारों को ले करके यह कहा है कि राष्ट्र और धर्म एक ही सूत्र के दोनों मनके हैं। राष्ट्र का जब वर्णन आता है तो वह कर्तव्यवादियों की सहायता के लिए आता है, मानो देखो, धर्म के मर्म को जानने वाले मुनिवरों! देखो, वे कर्त्तव्य में रत रहते हैं। परन्तु एक क्षेत्र वह है जिसे मुनिवरों! हम आध्यात्मिकवाद कहते हैं। आध्यात्मिकवाद की क्रियाओं का मैंने बेटा! बहुत पुरातन काल में वर्णन किया था। मानो जिसे धार्मिक ऊर्ध्वा में गति कहते हैं। धार्मिक क्षेत्र में मानव अपने धर्म की क्रियाओं को लाता है। तो मेरे प्यारे! देखो, मुझे ऐसा स्मरण है। ऋषि मुनियों ने धार्मिक और राष्ट्रीयता को एक ही सूत्र में पिरोया। दोनों एक ही सूत्र के मनके होने से, दोनों ही विचित्र कहलाते हैं।

मानव आध्यात्मिकवाद में, धार्मिक और कर्त्तव्य दोनों है। देखो "धर्म ब्रह्माः" धर्म तो मानव का कर्त्तव्य है और आध्यात्मिकवाद को देखो, उसमें ऊर्ध्वा गति कहलाती है। जहाँ वह परमपिता परमात्मा की पगडन्डी का उत्सुक बन जाता है। मानो उसे आध्यात्मिक विज्ञान, आध्यात्मिक धारा कहते हैं। धर्म उसे कहते हैं जो उसका गुण हो

जैसे मानो देवता अपना क्रियाकलाप कर रहे हैं, अपने-अपने रूपों में रत हो रहे हैं। जैसे अग्नि का गुण है तेजोमयी। तो तेजोमयी उसका धर्म है। परन्तु जल का जो धर्म है वह शीतलता है, प्राणवर्धक है। देखो, पृथ्वी का जो गुण है वह गुरुत्व है। इसी प्रकार वायु का जो गुण है वह गति है। उसमें संचारित रूप से जो क्रिया हो रही है। चाहे वह मानव के शरीर में हो, चाहे वह बाह्य-जगत् में हो। मानो देखो, वह एक अप्रतम् धर्म कहलाता है। जिससे प्रत्येक मानव अपने जीवन में धार्मिक बनता है।

धर्म किसे कहते हैं? क्योंकि होना तो मानव का स्वाभाविक गुण है। उस धर्म को हम कहाँ तक ले जाएँ। उस धर्म को मानो विज्ञान से लेकर के यौगिकवाद तक ले जाते है, आध्यत्मिक विज्ञान में भी ले जाते है। 15 दिसम्बर, 1985, लाजपतनगर (नई दिल्ली), (तप का महत्व)

नर-नारी समान रूप से मोक्ष के अधिकारी

माता मदालसा जब मनु वंश में संस्कारित हुई और उन्होंने जब तीन पुत्रों को जन्म दिया। तीनों पुत्रों से प्रेम किया और प्रेम करते हुए उन्हें ब्रह्मवेत्ता बना दिया। पाँच वर्ष का ब्रह्मचारी ब्रह्म की उड़ान उड़ रहा है, ब्रह्म से वार्ता प्रकट कर रहा है, माता से प्रश्न कर रहा है, शास्त्रर्थ कर रहा है और वह माता प्रेम से उन्हें ब्रह्म का उपदेश दे करके ब्रह्मवेता बना रही है। वही माता मदालसा स्वयं मोक्ष को चली गई। माता मदालसा का जीवन स्मरण आता है कि वह चार सन्तानों

को जन्म दे करके तीन को बह्मवेत्ता तथा एक को राजा बना करके गायत्री छन्दों का पठन पाठन करके श्रुति में परिणाम हो करके, परमपिता परमात्मा की इच्छा कहकर शरीर को प्राणायाम के द्वारा त्याग दिया और वह मोक्ष के आंगन में प्रवेश हो गई। मोक्ष नहीं हुआ मोक्ष के निकट हो गई। निकटतम में अगले लोको में जन्म देकर के उनका मोक्ष हो गया।

जब व्यापक विचारों में जब हम चले जायेंगे तो वास्तव में हमारा मोक्ष हो जायेगा। देवियाँ मोक्ष में नहीं जा सकती यह विचार एक आक्रमणीय विचार है। जब यह आत्मा है; जब सह ज्ञानी बन सकती है। ज्ञान और कर्म इस आत्मा का मौलिक गुण है। वह सर्वत्रता में इस प्रकार का क्रिया कलाप कर सकते हैं तो मोक्ष में क्यां नहीं जा सकते? महानन्द जी ने कहा कि कुछ देवियों को मोक्ष हुआ। यह कहना है कि कुछ देवी आत्माएं थीं, यह वाक्य इनका विकृतता में चला गया। यह वाक्य यथार्थ नहीं क्योंकि आत्मा तो एक लिंग है वह पुल्लिंग या स्त्रीलिंग नहीं कहलाता।

संसार में प्रेम होना चाहिए, संसार में कर्त्तव्य होना चाहिए, अकर्तव्य में मोह आ जाता है, विडम्बना आ जाती है। वही विडम्बना राष्ट्र और समाज का विनाश कर देती है। 15 मार्च, 1986, बरनावा, (पुष-51)

यागों का चयन करते हुए महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने एक कन्या याग का वर्णन किया है। नाना यागों में कन्या याग का भी अपने स्थान में महत्व माना गया है। परन्तु कन्या कहते किसे हैं और

कन्या याग क्या है? वेद के ऋषियों ने इसके ऊपर अनुसंधान किया। वेद में आया है कि कन्या याग होना चाहिए। वेद का ऋषि कहता है और वेद में मन्त्र आता है कि कन्या सबसे प्रथम देव लोक में रहती है, उसके पश्चात् पितर लोक में कन्या रहती हैं। उसके पश्चात् पतिलोक को प्राप्त होकर वहाँ याग करने का उसे अधिकार प्राप्त होता है। ऐसा वेद का ऋषि कहता है। वेद का आचार्य कहता है। याज्ञवल्क्य मुनि कह रहे हैं। 10 सितम्बर, 1983, त्रिनगर (नई दिल्ली), पुष्प-39

मुनिवरों! देखो, हमारे यहाँ भिन्न-भिन्न प्रकार के यागों का चयन जब वैदिक आचार्यों ने बेटा! निहित किया तो एक समय याज्ञवल्क्य मुनि महाराज के यहाँ ऋषि मुनियों का और ब्रह्मचारियों का, दोनों का परस्पर विचार विनिमय होने लगा। तो ब्रह्मचारियों ने यह कहा कि यह तो कन्या याग का वर्णन है और कन्या याग में भी लोकों का वर्णन आया है। मानो जैसे वेद का वाक् कहता है कि कन्या जब इस संसार में आती है तो सबसे प्रथम वह देवलोक में रहती है। उसका देव लोक क्या है?

तो मेरे प्यारे! जब बाल्य शिशु होता है, तो शिशु मानो देखो देव लोक में रहता है। उसकी देवता रक्षा करते हैं। मानव उसकी रक्षा नहीं करता है। बाल्य है, उसे संसार का बोध भी नहीं है। वह संसार का बोधक भी नहीं है। परन्तु देखो, उस समय उसे संसार का बोध कौन करा रहा है? वह जो देवता है, जो इस मानव के शरीर में विद्यमान है। मेरे प्यारे! जो प्रवृत्तियों को एक रूप में कटिबद्ध कर

देते हैं। जब बाल्या काल होता है तो बाल्या काल में कौन कौन देवता है? बेटा! देखो, सूर्य प्रकाश देता है, अग्नि तेजोयमी बनाती रहती है। मानो देखो, सूर्य उसे प्रकाश देता है, अग्नि उसे उष्णता देती रहती है। चन्द्रमा अमृत देता रहता है। इसी प्रकार उसी के संरक्षण मे बेटा! देखो, उसे न नग्नता का ज्ञान होता है, न उसे वस्त्र का ज्ञान होता है वह देखो, जैसे माता के गर्भ में पनपा है, ऐसे ही वह पृथ्वी माता की गोद में आकर के, उसके गर्भ में आकर के बेटा! अपने में मौन हो जाता है। मानो उस काल का नाम हमारे यहाँ देवलोक कहते हैं। देवलोक का अभिप्राय यह है बेटा! लोक कहते हैं स्थली को और मुनिवरों! जहाँ देवता वास करते हैं उसे देवलोक कहते हैं। जहाँ देव प्रवृत्ति बनी रहती है, जिस काल में मानव की देव प्रवृत्ति बन जाती है मानो देखो, वह काल देवताओं का लोक कहलाता है।

15 सितम्बर, 1985, लाजपत नगर (नई दिल्ली), (तप का महत्व)

यहाँ महाराज याज्ञवल्क्य ने एक वेद मन्त्र का आश्रय लिया- ”कन्या भूतम् ब्रह्मणः व्रक्षम पितर लोकम् ब्रहे, अरुणाम् ब्रहें कृतम् पतिलोकम् भूयशतम् ब्रहे।“ याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने इसकी विवेचना करते हुए कहा है कि कन्या पहले देवलोक में रहती है उसके पश्चात् पितर लोक में रहती है, पितर लोक को प्राप्त होने के पश्चात पति लोक को प्राप्त होकर उसे याग करने का अधिकार प्राप्त होता है। यहाँ याग की सीमा को उन्होंने बद्ध किया है। इसमें यहाँ नाना प्रकार के प्रसंग आते रहते हैं। ब्रह्मचारी को भी ब्रह्मचर्य आश्रम में याग करने का अधिकार है। वह गार्हपत्य नाम की अग्नि की पूजा

करता है और याग करता है, जिससे उसका ज्ञान बलवती होता है और उसके मस्तिष्क में जो नाना प्रकार की ग्रन्थियां हैं स्पष्ट होती है। जटापाठ, घनपाठ, मालापाठ में वेद गान गाने से,उसके अन्तर्हृदय की ग्रन्थियाँ में स्पष्टीकरण आ जाता है और वह अपने में स्वीकार करता है कि मैं प्रकाश के मार्ग पर जाना चाहता हूँ, प्रकाश में रत रहना चाहता हूँ।

कन्या पहले देवलोक में रहती है। जो उसका बाल्यकाल होता है वह कन्या का देवयान हेता है, देवलोक होता है और वहाँ देवता उसकी रक्षा करने को तत्पर होते हैं। देवता से भी आभूतम हो जब पितर-लोक को प्राप्त होती है, "पितरश्चम् ब्रह्मा पितरश्चम् ब्रह्मे कृतम्" तब कन्या की रक्षा करने वाले पितर जन हैं। वह उसका पितर लोक कहलाता है जहाँ माता के संरक्षण में, अपने अन्तर्हृदय में छवि देने वाली कन्या पितर को प्राप्त होती रही है। हमारे यहाँ पितरों के बहुत से पर्यायवाची शब्द है। माता भी पितर है, पिता भी पितर है, आचार्य भी पितर कहलाता है। यहाँ पितरों की विवेचना करते हुए कहा है माता पितर इसलिए कि वह अपने गर्भस्थल में पितर बन करके शिक्षा प्रदान करती है। पितर का अर्थ है जो रक्षक होता है, रक्षा करने वाले को ही पितर कहा जाता है और पिता इसलिए पितर, वह भी रक्षार्थी बना हुआ है, रक्षा कर रहा है। रक्षा करते हुए, उसे शिक्षा देता है। आचार्य इसलिए पितर हैं, क्योंकि आचार्य उसे नाना प्रकार की विधाओं में परिणत कर देता है। 'पितरश्चम् ब्रह्मा पितरश्चम् बह्मे कृतम्' वह सब पितर कहलाते हैं, वह पितर-जन आचार्य जब कन्या

को शिक्षा प्रदान करते हैं। 'दिव्याम्' गुरु और शिष्य के रूप मे विद्यमान होकर के नाना प्रसंगों में चले जाते हैं। जैसे एक समय माता मदालसा पितर लोक में अपना अध्ययन कर रही थी, तो अध्ययन करते हुए, अपने आचार्य से उसने यह प्रश्न किया, प्रभु यदि मैं बुद्धिमत्ता को प्राप्त हो गयी तो मैं इस संसार में गृहों में प्रवेश करना नहीं चाहूँगी। वह वेद विद्या का अध्ययन करती रही तथा बहुत काल पश्चात् उसे कई वेदमन्त्रें में पितर याग की महिमा का, पुत्र याग की महिमा का वर्णन स्मरण किया, तो आचार्य से बोली, मेरी इच्छा यह बन रही है यदि भगवन् जब पितर लोक से कुलज्यों को प्राप्त होऊँगी तो मेरे गर्भ से जब पुत्र-पुत्री का जन्म हो तो वह संसार के वैभव में न परिणत हो, वह ब्रह्मज्ञानी बने और ब्रह्मवेत्ता बनकर के महानता को गमन कराता रहे। ऐसा मानो कि वह सहस्रें राजाओं के समान होता है जो ब्रह्मवेता होता है, ब्रह्मनिष्ठ हेता है और ब्रह्म की प्रतिभा में स्तर रहने वाला होता है। जहाँ कन्या अपने में अध्ययन कर रही है दर्शनों की आभा में रत हो रही है, मानो कि वह पितरयाग योग कहलाता है। 21 अप्रैल 1990, मोदी नगर (गाजियाबाद), यागमयी साधना

कन्या का द्वितीय लोक है पितृ लोक अर्थात पितर लोक कहलाता है, याग मयी साधना। बेटा! जब कन्या युवा होने लगती है तो उसकी संरक्षणाता पितृ लोक में होती है। पितृ उसे शिक्षित बनाते हैं। वही कन्या जब देवलोक से उपराम होती है तो मानो संसार के क्षेत्रें में परिणत हो जाती है तो वह उसका पितृलोक कहलाता है। वे

पितृ कौन हैं? बेटा! जो उसकी रक्षा करते हैं? मेरे प्यारे! देखो, वे पितृ, जो गृह में माता-पिता के रूप में रहते हैं। विद्यालयों में आचार्यों के रूप में रहते हैं। मानो देखो, वे कन्या के पितृ कहलाते हैं। उन्हीं की संरक्षणता में, उसके जीवन की धाराओं का प्रायः जन्म होता रहता है। जहाँ धाराओं का जन्म है वह ही मानो देखो, कन्या का पितृ लोक कहलाता है। तो मेरे प्यारे! पितृ लोक का अभिप्राय क्या है? मानो देखो, जैसे आचार्य पितृ है। माता-पिता पितृ है। मानो देखो, जो अपने से आयु में प्रबल है, वे उस कन्या के पितृ कहलाते हैं। तो उस काल में वह उनकी संरक्षणता में कहलाती है। तो तब कन्या का दायित्व बेटा! पितरों के ऊपर हो जाता है। वे पितर लोकं भवितेः ब्रह्माः वेद की धारा कहती है कि हम पितरों की धाराओं में, सदैव रत रहते हैं।

वे पितर हमारे जीवन की एक मौलिकता बन करके रहते हैं। मेरे प्यारे! देखो, एक कन्या याग का जहाँ वर्णन आता है। तो कन्या याग के वर्णन में बेटा! पितर लोक का भी वर्णन आता है। मानो देखो, जब माता-पिता के संरक्षण में कन्या रहती है, विद्यालय में आचार्य के संरक्षण में रहती है। तो विद्यालय में आचार्य उसे त्याग युक्त बना देता है। कैसे त्याग युक्त बनाता है? मुनिवरों, उसे विद्या का अध्ययन कराता हुआ, उसे बोध करा देता है कि यह संसार मानो देखो, क्या है? इस संसार में देखो, जहाँ तुम विद्यमान हो ये पितर लोक है, तो पितरों के लोक में बेटा! जब वह रत रहने लगती है। तो पितरों की प्रतिभा उसके समीप आनी प्रारम्भ हो जाती है। महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि

महाराज की ये तपस्या का फल है। मानो उन्होंने जो प्रत्येक क्षेत्र में अनुसंधान कर अपने में क्रियाकलाप किया है और उसको मुनिवरों! देखो, क्रिया में लाने का प्रयास किया। तो उन्होंने कहा- ये पितृलोक मानो देखो, आचार्यों का लोक है। आचार्य कुल में जब ब्रह्मचारिणी प्रवेश करती है तो उसे अपने गर्भ में धारण करके मानो देखो, कन्या को प्रतिभाशाली बना देते हैं। माता मदालसा का जीवन मुझे स्मरण है, माता मदालसा विद्यालय में अध्ययन कर रही है, परन्तु उनका त्याग पूर्वक अध्ययन हो रहा है। यह उसका पितृ लोक है। गृह में भी पितृ लोक है, विद्यालय में भी पितृलोक है, मार्ग में भी पितृलोक है। तो मेरे प्यारे! देखो, इसी संरक्षणता में उनका पालन हो रहा है। वे अपने में भव्यता को प्राप्त हो रही हैं। वेद का मंत्र ये कहता है, "कन्या पितृलोक ब्रह्माः वाचं ब्रह्मेः देवत्वां लोकाः" वेद का एक-एक मंत्र को लेकर के ऋषि मुनियों ने बड़ा अनूठा अनुसंधान किया। वहाँ कन्या का याग मेरे पुत्रों देखो, अपने पितरों द्वारा इसका पालन हो रहा है। पितरजन मानो देखो, उसकी रक्षा कर रहे हैं और पितरों को ज्ञान कौन करा देता है? जो जड़ देवता हैं, जो शरीरों में क्रियाकलाप कर रहे हैं, उनका बोध कौन कराता है? बेटा! देखो, चैतन्य देवता, आचार्य बोध कराता है। आचार्य कहता है, हे देवत्वं! हे "मम ब्रहेः हम तुम्हारे पितृभिः लोकाम्" आओ, पितृ याग करेंगे। मेरे प्यारे! देखो, वह पितरलोक में प्रवेश हो करके पितरों का याग, पितरों की सेवा करेंगे। तो मेरे प्यारे! देखो, यह पितरलोक कहलाता है।

वेद का आचार्य कहता है। "कुलेभ्यो ब्रह्माः कुलेभ्योः पतस्य कृते

प्रह्रे व्रातं वाचन्नमं ब्रह्माः" वेद का वाक् कहता है कि पितर लोक से मानो उपराम होते ही मेरे प्यारे! वह "कुलेभ्योः नमः" कुल का परिवर्तन हो करके पतिलोक को प्राप्त हो जाती है। वही कन्या जो देवलोक में थी, मानो पितर लोक में थी, अब पति लोक में चली गई। मानो देखो, पति कहते हैं, रक्षक को। वास्तव में देखो, पति की बड़ी विस्तृत व्याख्या हमारे वैदिक साहित्य में आती रहती है। हमारा वैदिक साहित्य देखो, पति की विवेचना करता है कि सबसे प्रथम तो मानो देखो, अपनेपन में जब कन्या यह स्वीकार कर लेती है कि मैं अधिपत्यवादी बनूँ। तो मानो देखो, वह पति कुल में अपने प्रवेश करा देती है। तो यह पतिलोक की उसकी लौकिक विवेचना हुई कि उसका स्थान मानो परिवर्तन हो गया है, वह पति लोक को प्राप्त हो गई। पति लोक में मानो इसने अपना वास किया है। तो मानो देखो, यह तो व्यावहारिक व्याख्या हुई।

वेद का ऋषि इसकी एक बड़ी विचित्र व्याख्या करता है। वह कहता है "कलेभ्योः प्रमाणां ब्रह्मेः कन्या देवो ब्रहेः पतिलोकश्चमम्" मानो देखो, परमपिता परमात्मा सब का पति है। वह सबका स्वामित्व करने वाला है। मानो देखो, वह पति है। वह कैसा अनुपम पति है? तो मेरे प्यारे! जब कन्या व्यावहारिक पति कुल को प्राप्त हो गई, पति लोक में प्रवेश कर गई, तो मुनिवरों! देखो, उसके शासन का परिवर्तन हो गया। मानो व्यावहारिक जो जगत् है उसका आदान और प्रदान हो गया है। जब आदान प्रदान हुआ तो आदान-प्रदान के पश्चात् मानो देखो, वही पति अपने में मानो देखो, शिशु की स्थापना करता

है। वे पितर बनने की इच्छा प्रकट करता है। तो मानो देखो, वह जो पति पितर बन रहा है कैसा है? और वह जो परमपिता परमात्मा पितर है वह कैसा अनुपम है? मेरे प्यारे! वह एक-एक परमाणु को, एक-एक अणु को सुगठित कर रहा है। उन एक-एक अणु, परमाणु को मेरे प्यारे! वह साधारण पितर इन लौकिक प्रक्रियाओं को नहीं जानता। मानो उस प्रक्रियाओं को मेरा प्रभु जानता है, जो निर्माणवेत्ता है, जो विश्वकर्मा बना हुआ है। मेरे प्यारे! देखो, वह कैसा विज्ञानमयी स्वरूप कहलाता है। परन्तु साधारण, व्यावहारिक पतियों को इसका ज्ञान नहीं होता! मानो वह परमपिता परमात्मा ही उसकी रचना करता है। पिता ब्रह्मेः जब वह पति पितर बनने की इच्छा प्रकट करता है तो अपनी देवी से कहता हे! देवी! अब हम पितर याग में प्रवेश कर रहे हैं। तो उस समय वे पितर याग करते हैं, परन्तु उसके परमाणुओं की जो प्रक्रियाएँ हैं, वे कैसे होती है इसको न माता जानती है, न पितृ जानता है मानो देखो, न पति जानता है, न पत्नी जानती है।

मेरे प्यारे! देखो, वह जो मेरे प्यारा प्रभु है वह जो संसार का नियन्ता है अथवा संसार का पतित्व करने वाला है। वह माता के गर्भस्थल में परमाणुओं को आदान-प्रदान करता हुआ उनको सुगठित कर देता है, उनका मिलान कर देता है। वह विश्कर्मा बनकर के रचना कर रहा है और कैसी रचना है? माता के गर्भस्थय में माता के मस्तिष्क से लेकर के, पितरों के मस्तिष्क से लेकर जिन परमाणुओं का प्रेक्षण हुआ है मानो उन्हीं पितरों के परमाणुओं से उनके बाल्य की प्रवृत्तियों का निर्माण करा देता है। मेरा प्रभु कितना

वैज्ञानिक है? बेटा! वह कितना विश्वकर्मा है। यदि माता मानो यौगिक बन गई है तो यौगिक परमाणुओं से बालक का निर्माण कर देता है। यदि माता और पितर दोनों मानो देखो, राष्ट्रवादी बन गए है तो पुत्र भी राष्ट्रीय अंकुरों से निर्माणित हो जाता है। तो मेरे प्यारे! इनको कोई नहीं जानता। मेरा प्रभु ही जानता हैं, मेरा देव ही जानता है जो मेरा महापिता है, जो संसार का नियन्ता है। माता के गर्भस्थल में विद्यमान हो करके बेटा! परमाणुओं का आदान प्रदान करता रहता है। वह परमाणु मानो अपनी अपनी स्थलियों पर निर्मित होकर के सर्वत्र ब्रह्माण्ड के वह उसमें निहित हो जाते हैं। मेरा प्रभु वह कितना महान पति है, कितना वह महान वैज्ञानिक है।

मानो देखो, इसलिए माता मदालसा का तो यह दृढ़ विश्वास हो गया था। माता मदालसा ने तो ये कहा भी था कि हे संसार के पतियों! तुम मानो देखो, इतनी प्रतिभा नहीं जानते, जितना वह मेरा स्वामी है, प्रभु है वह जानता है। वह कैसे निर्माण करता है? मानो वह कैसे ब्रह्मवेत्ता का निर्माण करता है गर्भ स्थल में, इसको तू नहीं जानता। मानो देखो, परमात्मा जानता है। मानो देखो, उसकी प्रतिभा को लेकर के माता के लिए प्रत्येक नौ माह में, नौ प्रकार का अन्नाद और नौ प्रकार का आहार बन जाता है तो उन कणों को लेकर के माता उसका निर्माण करती है। उसकी इसी प्रकार की वृत्तियाँ बन जाती है। मेरे प्यारे! देखो, मदालसा ने कहा कि जब शिशु (गर्भ में) प्रवेश करे, तो प्रभु की गोद में चली जाओ।

प्रत्येक मेरी पुत्रियों का कर्त्तव्य है कि वह प्रभु की गोद में चली

जाएँ, जिससे इस संसार का निर्माण हो जाए। संसार में ब्रह्मवेत्ता और बुद्धि जीवी प्राणियों का जन्म होता रहे। ऐसा मानो देखो, माता मदालसा ने कहा है। मानो जहाँ गर्भ में शिशु का प्रवेश हुआ, तो प्रभु का चिन्तन करना। मानो देखो, शुद्ध और बुद्ध की विवेचना माता को करनी है। संसार की कोई वस्तु नष्ट नहीं होती। किसी वस्तु का विनाश नहीं होता। जब विनाश नहीं होता तो उन्हीं की विवेचना करना उसका कर्त्तव्य बन गया और जब वही शिशु, वही बाल्य माता की लेरियों का पान करने लगा तो मानो देखो, उस समय माता वेद मंत्र की व्याख्या कर्णों में प्रवेश कराती है कि यह संसार तो कुछ है ही नहीं। यह संसार तो निस्सार है, यह संसार तो अपवाद वृत्तियों में रत होता रहता है। इस प्रकार की विवेचना माता मदालसा शिशु से करती रहती है। उसके प्रत्येक अंकुरों में बेटा! ज्ञान और विज्ञान को परिणत कराती रहती। तो मुनिवरो! देखो, उसी तपस्या का फल यह हुआ कि माता मदालसा का पाँच वर्ष का पुत्र ब्रह्मवेत्ता बन भंयकर वन को चला गया। वह तपस्वी बन गया, बुद्धिजीवी बन गया। प्रभु का गुणगान गाने वाला बन गया। मेरे प्यारे! देखो, उसका संसार एक विचित्र बन गया।

मुनिवरों! देखो, कन्या के लेकों का वर्णन महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने किया और याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने बेटा! पितर लोक और पति लोक को प्राप्त होने वाली कन्या का वर्णन किया। जो बेटा! अपने पति के अप्रतम देखो पति कुलेभ्यो मानो देखो, उस लोक को प्राप्त हो जाती है। उस पति लोक में प्रवेश करके उसको अपना गृह

लोक बना लेती है। गृह लोक बनाकर के मानो देखो, वह उसके पति का लोक ही नहीं रह जाता। उस पर उसका स्वतः अधिकार बन जाता है। उसका भी लोक बन जाता है। जहाँ शासन का परिवर्तन हो तो मानो देखो, इस प्रकार जो परमपिता परमात्मा जो संसार का नियन्ता है उसका पति है।

तो मुनिवरो! देखो, पतियों की विवेचना का अभिप्राय यह है कि पति कहते हैं, रक्षक को। मानव को रक्षा करनी चाहिए। एक दूसरे की रक्षा में, जब ये मानव परिणत रहता है, उसी में लगा रहता है तो उसका जीवन महान बना रहता है। जैसे मुनिवरों! देखो, परमात्मा संसार का पिता बन गया। मुनिवरो! देखो, वह प्रकृति का पति बन गया। प्रकृति का पति बनकर के नाना प्रकार के व्यजंनों वाले इस संसार की रचना हो गई। चार प्रकार की सृष्टियों में ये संसार विभक्त हो गया। चाहे वह पृथ्वीमण्डल में रहने वाला मानव समाज हो, चाहे मंडल में रहने वाला हो, किसी भी लोक-लोकान्तरों में गति करने वाला क्यों न हो। परन्तु सर्वत्र ये ही चार प्रकार की सृष्टियाँ कहलाती हैं। किसी में अग्नित्त्व प्रधान है, तो किसी में दूसरे तत्त्व की प्रधानता है, तो वे भी उसी में रत है। मानो देखो, इस प्रकार जंगम-अण्डज सृष्टि ये लोक-लोकान्तरों में बेटा! देखो, निहित रहने वाली है।

मेरे प्यारे! देखो, वेद का ऋषि कहता है, कन्या यागां भविते लोकाम्। याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने बेटा! शतपथ ब्राह्मण में कोई स्थली ऐसी नहीं छोड़ी, कोई विषय ऐसा नहीं छोड़ा जिसको उन्होंने अपने में धारण नहीं किया हो। मानो देखो, सर्वत्रता में परिणत न

हो। वे सब विषयों को अपने में धारण करते रहे और एक कन्या याग का विषय ऐसा है जिसमें संसार के अन्य विषय मानो इसके अन्तर्गत प्रवेश कर जाते हैं।

तो मेरे प्यारे! देखो, विचार विनिमय क्या? कन्या का पहला लोक, देवलोक रहता है, जहाँ उसकी देवता रक्षा करते हैं। दूसरा लोक पितृलोक जहाँ पितृजन रक्षा करते रहते हैं और पतिलोक को प्राप्त होने पर पति रक्षा करता है। पति का अभिप्राय यह कि जो रक्षक है। सबसे महान पति तो वह है मानो देखो, जो मुनिवरो! देखो, संसार की रक्षा करने वाला है। जो परमपिता परमात्मा के नामों से वर्णन किया जाता है। इस संसार में परम्परागतों से बेटा! रजोगुण छाया हुआ है। उसमें मानो एक दूसरे के नष्ट करने की प्रवृत्ति भी बनी रहती है। मानो देखो, यह विचारधारा आ जाती है कि वह जो मेरा स्वामी है, पति है। मानो देखो, उसमें ये रजोगुण, सतोगुण नहीं व्यापते हैं। न तमोगुण व्यापता है। वह अपने को व्यापक बना करके रहता है। मुनिवरों! देखो, इसमें सबको धारण कर रहा है। अपने में मानां ढक लेता है जैसे माता अपने गर्भस्थल में, अपने बाल्य को शांत मुद्रा में ढाप लेती है। इस प्रकार मेरे पुत्रों! देखो, ये ब्रह्माण्ड भी इसी प्रकार ढापने की क्रिया व्रतों में रत होता रहता है।

याज्ञवल्य मुनि महाराज ने बारह वर्ष का तप करने के पश्चात एक शतपथ ब्राह्मण नाम की पोथी का निर्माण किया। उस पोथी में नाना प्रकार के यागों का चयन किया। सबसे प्रथम मुनिवरो! देखो,

उन्होंने देवयाग, उसके पश्चात् वाजपेयी याग, अग्निष्टोम याग, वृष्टियाग, पुत्रेष्टियाग, कन्या याग, देवीयाग, अजामेधयाग, अश्वमेध यागों, नाना प्रकार के यागों का चयन होता रहता है।

पतिलोक को प्राप्त कर कन्या याग में प्रवेश कर जाएँ। हे कन्या! तू अपने याग को ऊँचा बनाती हुई, देव लोक को विचारते हुए, अपनी देव प्रवृत्ति बना और मानो देखो, पितरलोक में रहते हुए अपनी पितर प्रवृत्ति बना और पतिलोक को प्राप्त होकर के अपनी इन्द्रियों का संयम करके पुत्रेष्टि याग कर। मानो देखो पतिलोक को प्राप्त हो अपने जीवन को महान और पवित्र बना करके तुझे अपने जीवन की धारा को महान बनाना चाहिए। 15 सितम्बर, 1985, लाजपत नगर (नई दिल्ली), तप का महत्व

पति लोक में जाने के पश्चात् उसे याग करने का अधिकार है। वेद मन्त्र कहता है।

'तदरस्तम् ब्रह्मे वरणाम् पुत्रों समन् ब्रवमृ कृतम् देवत्वाम् यागा'

यहाँ पुत्रयाग करने का अधिकार उस कन्या को है जो पतिलोक को प्राप्त हो जाए। यहाँ सन्तान की उत्पत्ति का नामकरण याग माना गया है। हमारे दर्शनों के मीमांसाकार मीमांसा करते हुए कहते हैं कि प्रत्येक क्रिया का नाम याग माना गया है। याग का अभिप्रायः हूत करना। याग का अभिप्राय है अपने में महानता को प्राप्त होना। वहाँ पतिलोक को प्राप्त होकर उसे याग करना है, पुत्रेष्टी याग में परिणत हो जाता है। सन्तान को जन्म देना भी याग है। दर्शनाचार्य ने कहा है कि इसे कन्या याग कहते हैं। जैसे वाजपेयी याग है, अग्निष्टोम याग

है और भी नाना प्रकार के याग हैं इसमें मानव परिणत रहा है। माता याग कर रही है। याग में वेदमन्त्र यहाँ तक कहता है कि माता, अपने गर्भ के अन्तरात्मा से वार्ता प्रकट कर रही है। 'सम्भवे ब्रहे' हे आत्मा! कैसे मेरे गर्भ में तेरा वास हुआ है मैं जानना चाहती हूँ। माता यह कहती है तो माता शिक्षा देती है तुझे ब्रह्मवेत्ता बनना है, ब्रह्मनिष्ठ बनकर तुझे प्रकृति के क्षेत्र में ब्रह्म को ही दृष्टिपात करना है। इस प्रकार की शिक्षा माता देती रहती है तो माता का यह जीवन महानता को प्राप्त होता है। इसको कन्या याग करते हैं। कन्या याग ही पुत्रेष्टि याग में परिवर्तित होता रहा है। वेद के आचार्यों ने कहा है कि जहाँ यह पुत्रेष्टि याग है वहीं वाजपेयी याग का वर्णन अथवा धनुर्याग का वर्णन भी आता रहा हैं। धनुर्याग किसे कहते हैं-आचार्य और जब ब्रह्मचारी एक स्थली पर विद्यमान हो धनुर्विद्या अपनों को प्रदान करता है तो धनुर्विद्यायें अपने में महानता को प्राप्त होती है। मुझे वह काल स्मरण आ रहा है जिस काल में माताएं अपने पुत्रों को लेकर नदी के तट पर अपने ब्रह्मचारियों को, पुत्रों को अस्त्र-शस्त्रों की विद्या प्रदान कराती रहती थी। वह धनुर्याग कहलाता है जिसे मेरी प्यारी माता अपने यशोबल से उसे ग्रहण कराती रही है क्योंकि शिक्षा देने वाली माता भिन्न-भिन्न प्रकार की शिक्षा देती रही है। द्वापर के काल में माता गंगा, अपने पुत्र भीष्म को देववृत्त को धनुर्याग की विद्या प्रदान करती रहती है इसलिए उनका धनुर्याग बड़ी सफलता को प्राप्त होता रहा है और आचार्य उस विद्या को नहीं प्रदान कर सकता जो माता देती रही है। 'मताम् ब्रह्मे'। त्रेता के काल में, सीता

महर्षि बाल्मीकि के आश्रम में विद्यमान होकर धनुर्विद्या प्रदान करती रहती थी। वेद का अध्ययन कराती रहती थी। इसलिये मेरी माताओं का धनुर्याग पर अधिपत्य शासन होना चाहिए जिससे उनकी पुत्र-पुत्रियों में एक महानता की प्रतिभा आ जाए और यह राष्ट्र और समाज उन्नति को प्राप्त हो जाए।

आज यह इतिहास के पृष्ठ हैं, जब मेरी प्यारी मातायें बाल्य को धनुर्याग में परिणत कर उसे आचार्य को प्रदान कर देतीं और वह कहतीं, हे आचार्यजनों! मेरे बाल्य को धनुर्याग में पारंगत करो, जिससे हमारा समाज ऊँचा बने और धनुर्याग की रक्षा हो। वेद की रक्षा उस काल में होती है जिस काल में वेद के मन्त्रें को क्रियात्मकता का स्वरूप प्रदान किया जाता है उसी के पश्चात् वे वेद की रक्षा कर सकते हैं। केवल उद्गीत गाने वाला तो उद्गीत ही गाता रहता है जब याग होता है।

बेटा माता अरुणादति का जीवन तुम्हें स्मरण ही होगा वह ब्रह्मचारियों को विद्यालय में धनुर्याग की शिक्षा देती रहती। वे आचार्य, अपने पति महर्षि वशिष्ठ से कहती इन्हें ब्रह्मज्ञान भी प्रदान करो। ब्रह्मज्ञान और धनुर्याग दोनों एक दूसरे के पूरक कहलाते हैं। नाना प्रकार की प्रायः विद्यायों की शिक्षा प्रायः हमारे यहाँ उदगीत गा मेरी पुत्री को प्रदान की जाती। मुझे स्मरण आता रहता है महर्षि भारद्वाज मुनि के आश्रम में भी, महर्षि कपिल मुनि के आश्रम में भी कन्याओं को शिक्षा प्रदान की जाती है और इस प्रकार की विद्यायें भी प्रदान की जाती है। जिन विद्याओं से माता अपने गर्भ स्थल में अपने पुत्र

को ऊँचा बनाती रही है। जिस देवता की हमें पूजा करनी है, उसी देवता की पूजा करके माता अपने गर्भ स्थल में उसी देवता के गुणों को भरण करती रही है। उसी गुणों वाले देवता के गुणों का ध्यान करते हुए पुत्रों को जन्म देती रही है। हमारे यहाँ परम्परागतों से ही उस विद्या की प्रतिभा प्रायः मानव मस्तिष्क में रही है।

हमारे यहाँ जैसे दीपावली मानो दीपराग की प्रतिभा आती रहती है उसी प्रकार मल्हार राग की भी प्रतिभा आती रही है। प्रायः दो प्रकार के रागों का वर्णन हमारे वैदिक साहित्य में आता रहा है और उसके ऊपर मानव परम्परागतों से अन्वेषण करता रहा है यह दोनों प्रकार की जो विद्यायें है जिससे हमारे यहाँ दीपावली दीपमालिका बन गान गाने लगती है। मानव का जो प्राण है उस प्राण से अपान को, सामान और व्यान को जो खेचरी मुद्रा द्वारा मुद्रित करता है तो उससे दीपमालिका बन जाती है। इसी प्रकार शीतली प्राणायाम में जैसे योगी उदान और समान दोनों प्राणों का समन्वय कराता हुआ प्राण की उसमें पुट लगाकर शीतली प्राणायाम करता है, तो शीतली प्राणायाम से 'जलम् प्राणम् ब्रहे वृता' वायुमण्डल में जो शीतल जल के परमाणु हैं वे उद्बुद्ध हो जाते हैं और वे वृष्टि के रूप में, गान के रूप में परिवर्तित होते रहते हैं। यह योग, मन और प्राण दोनों की साधना है। यह साधना शारीरिक, देखो ब्रह्मचर्य की आभा में की जाती है। उस समय यह सर्वत्र विद्या उद्बुद्ध हो जाती है, जिसको देखो क्रियात्मकता में परिणत किया जाता है। महर्षियों ने देखो इसका इस प्रकार उद्गीत गाया है। त्रेता के काल में माता अरूणादति

इस विद्या को जानती थी। महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज भी इसे जानते थे। सतयुग के काल में तो नाना ऋषि इस प्रकार के हुए हैं और नाना ऋषि द्वापर के काल में भी रहे हैं। जो इस विद्या को जानते थे। जैसे महर्षि दुर्वासा मुनि इस विद्या को जानते थे। जो योगी प्राण को अपान में, अपान को उदान में, उदान की समान में, समान को व्यान में पुट लगाना जानता है वह सर्वत्र विद्याओं में परणित हो जाता है। वह इस विद्या में रत हो जाता है। यह भी याग माना गया है।

हमारे यहाँ कन्या याग का जहाँ वर्णन आता है यही धनुर्याग का वर्णन भी है। धनुर्याग की विधाओं में सर्वत्र जानकारी करायी जाती है। मुझे स्मरण आता रहता है महर्षि भारद्वाज मुनि के यहाँ धनुर्याग का प्रायः चयन होता रहा है। महर्षि विश्वामित्र के आश्रम में-दण्डक वनों- में भी इस धनुर्विद्या का चयन होता रहा है। मैंने तुम्हें कई काल में वर्णन कराया आज उसकी पुनःरुक्ति किये देता हूँ। महर्षि विश्वामित्र को वशिष्ठ ने कहा, दण्डक वनों में याग करो। महर्षि विश्वामित्र ने दण्डक वनों में एक धनुर्याग किया और धनुर्याग किया तो 'यागम् ब्रह्मे' वह जब याग में परिणात हो गये तो नाना ब्रह्मचारी उनके वाक्यों को पान करने आ गये। राजकुमारों को लाकर धनुर्याग को पूर्ण कराया। यह धनुर्विद्या क्या है? अस्त्र-शस्त्रें की विद्या है, अणु-परमाणुओं की पवित्र विद्या है। जो महर्षि भारद्वाज के आश्रम में भी थी। महर्षि विश्वामित्र इस विद्या को जानते थे और ब्रह्मचारियों को इसकी शिक्षा देते थे। वेद का ऋषि कहता है कि यह संसार एक

प्रकार की यज्ञशाला है, इसमें प्रत्येक मानव याग कर्म करने के लिए ग्राया है, याग ही हमारा जीवन है, याग करना ही हमारा कर्त्तव्य है इसलिये यह संसार जो परमपिता परमात्मा ने रचा है यह एक प्रकार की यज्ञशाला है, यहाँ प्रत्येक मानव याग कर्म करने के लिये ग्राया है। याग कैसा प्यारा है? कहीं मेरी प्यारी मातायें पुत्रेष्टि याग करती रही है। पुत्रेष्टि याग किसे कहते हैं? पुत्र को उत्पन्न करने वाली जो माता ग्रपने पुत्र को गर्भ में महान् बना देती है वही पुत्र याग कहलाता है। 21 ग्रप्रैल, 1990, मोदी नगर, (याग मयी साधना)

'यामग् ब्रह्मा वर्णास्थ सम्भवे वर्णाम् सम्वते'

मेरे प्यारे! इसको कन्या याग कहते हैं। याज्ञवल्क्य मुनि कहते हैं, कन्या सबसे प्रथम देव लोक में रहती है। उस समय देवता उसका पालन करते हैं। उसके पश्चात् वह पितृ लोकों को प्राप्त होती है। पितृ लोकों में जाने के पश्चात् वह याग करती है विद्या का। विद्या का ग्रध्ययन करना, ब्रह्मचरिष्यामि ग्रपने ब्रह्मचर्य को देवलोक में पहुँचाना, यह उस माता वीरांगना का कर्त्तव्य बन जाता है। संस्कार होने के पश्चात् वह कन्या पति लोक को प्राप्त होती है ग्रौर पति लोक को प्राप्त हो करके वह याग करती है। हमारे यहाँ वेद के ऋषि कहते हैं सन्तान को उपार्जन करने का नाम याग माना है। हमें याग करना है संसार में जितना भी जीवन का क्रिया-कलाप है उस सर्वत्रता का नाम याग माना गया है। हमें बेटा! ग्रपने जीवन को महान् बनाना है। हमें ग्रपने जीवन को ऊर्ध्वा में पहुंचाना है क्योंके मेरे प्यारे! पतिलोकाम् ब्रह्मः, पति लोक को प्राप्त हो करके ब्रह्म का चिन्तन

करना है और याग करना है। 10 दिसम्बर, 1981, त्रिनगर (नई दिल्ली), पुष्प-39

महर्षि प्रव्हाण महर्षि शिलक और महर्षि दालभ्य यह तीनों माता मदालसा के पुत्र थे। जब माता मदालसा अपने विद्यालय में इन्हें ब्रह्मवेत्ता को उपाधि प्रदान कर रही थी, तब एक समय उन्होंने गृह की स्थलियों माता की आज्ञा से त्याग दिया तो सोमकेतु ऋषि महाराज जो वायु गोत्रिय कहलाते थे, वह उनके समीप जाकर के अध्ययन करने लगे। वह अपने में रत होने लगे तो मुनिवरों! देखो, जब वे तीनों विधाता अध्ययन कर रहे थे तो एक समय महर्षि प्रव्हाण, बेटा! भ्रमण करते हुए गंगा के तट पर पहुंचे। गंगा के तट पर जैसे ही विद्यमान हे गये तो वह सन्धि का काल था, तो सन्ध्या करने लगे तो बेटा! मुझे स्मरण है कि उसमें एक कृतिकमयी ग्राह था जो एक प्राणी था तपस्या करते हुए स्वाति ब्रह्मचारी को अपने में धारण करने लगा।

मैंने यह श्रवण किया है कि उस समय महर्षि प्रव्हाण ने तपस्या में यह अपने में मनन किया और देखो, प्रार्थना की कि हे मगर! तुम इस ब्रह्मचारी को छोड़ दो, अन्यथा यह बड़ा अनर्थ हो जायेगा। मगर ने कहा, "मैं इसको नहीं त्यागूँगा।" उन्होंने कहा किसी प्रकार तुम इसको त्याग सकते हो? मगर ने कहा, "एक प्रकार से त्याग सकता हूँ यदि इसके बदले में मुझे मेरा भोज्य प्राप्त हो जाए।' क्योंकि यह ब्रह्मचारी मेरा भोज्य बन गया है, यह मेरा भोज्य है। इससे मेरा प्राण गति करेगा। महर्षि प्रव्हाण ने कहा कि तुम मुझे आहार कर लो।

ग्राह ने कहा मैं तुम्हें आहार कर सकता हूँ। अप्रतम् मुझे इसके बदले अपना मानसिक प्रिय सभी कुछ प्रदान करो।

उस समय जब वह महर्षि प्रव्हाण उन्हें प्रदान करने लगे तो मुझे ऐसा प्रतीत होता है, ऐसा श्रवण किया है कि महर्षि प्रव्हाण ने अपने श्वांस को, प्राण सूत्र को सूत्रित करते हुए मेरे प्यारे! देखो, ग्राह के उदर में प्रवेश कर गये। जब उदर में प्रवेश कर गये तो उन्होंने ग्राह को त्याग दिया। तब महर्षि प्रव्हाण समाधिस्थ गये। तो बेटा! मुझे स्मरण है कि वह व्यान प्राण को जानते थे। वह व्यान प्राण को मूलाधार से ले करके अपान प्राण को मुनिवरों! देखो, रीढ़ के साथ-साथ गमन करा करके ब्रह्म रन्ध्र में प्रवेश कराना जानते थे; कृतिकाओं में वृणित होना जानते थे। वह तीन दिवस उसके उदर में रहे। तब ग्राह ने यह प्रार्थना की कि प्रभु मैं प्रतिभाषित हो गया हूँ। मैं दुखित हो गया हूँ। तुम मेरे शरीर से दूर चले जाओ।

मुझे कुछ ऐसा स्मरण है कि वह योगेश्वर, वह योगी मुनिवरों! देखो, ऋषि प्रव्हाण उसके उदर से दूर हो गये। तो यह कितना महान् 'दान' है जो प्राणी की रक्षा करने के लिए अपने प्राणों की बलि प्रदान कर रहे हैं। अपने प्राणों का दान दे रहे हैं। यह सर्वत्र दानी बने हुए ऋषि थे।

हमें विचारना है, अनुसंधान, अन्वेषण करना है, हमे अपने जीवन को किस प्रकार महान् बनाना है, पवित्र बनाना है। बेटा! हमें दान देना है, प्रवृत्तियों का, हमें अहिंसा परमोधर्मः में परिणत हो जाना है। द्रव्य का दान, क्या? जहाँ मानव द्रव्य का सदुपयोग करता है, उसे

भी हम दान कहते हैं। परन्तु एक मानव भावना से किसी प्राणी की रक्षा करता है, माता दानेषु बनी हुई है, जो प्राणों से प्राणों का संचालन कर रही है, वह भी एक मुनिवरों! राजा अपनी प्रजा के लिए तपस्या कर रहा है। वह प्रजा को ऊँचा बनाना चाहता है और देखो, अपनी प्रवृत्तियों को अपने तपों में रत कर करके वह दानेषु बन जाता है प्रजा के लिए और प्रजा उसका अनुसरण करके उसके लिए दानेषु बन जाती है और राज्य ऊर्ध्वा में गति करने लगता है। 28 अप्रैल, 1984, वजीरपुर (दिल्ली), (आध्यात्मवाद)

मुनिवरों देखो एक समय गाड़ीवान रेवक मुनि महाराज के यहां नाना ऋषि-मुनि विद्यमान थे। जिनमें बेटा! महर्षि प्रव्हाण, महर्षि शिलक महर्षि दालभ्य, महर्षि विभाण्डक, महर्षि वैशम्पायन, महर्षि सुकेता और मुत्तिका सोमकेतु इत्यादि ऋषि मुनियों का एक समाज एकत्रित हुआ था। गाड़ीवान रेवक मुनि महाराज बड़े तपस्वी थे सदैव तपस्या में रत रहते थे। क्योंकि हमारे यहाँ ऋषि नाना प्रकार के अनुष्ठान करते रहे हैं। वह भी नाना प्रकार के अनुष्ठान करने वाले थे। विचार केवल यह रहता है कि हम अन्धकार से प्रकाश में चले जायें। हमारे जीवन में अन्धकार न आए, हम प्रकाश के लिए सदैव चेतन रहें और वे सदैव प्रकाश ही प्रकाश चाहते। तो मुनिवरों! देखो, ये नाना प्रकार के अनुष्ठान हैं, जिसमें तप है, ज्ञान है, अध्ययन है और जितने भी यह क्रियाकलाप हैं, इन सर्वत्र क्रियाकलापों में साधक का एक ही मन्तव्य रहता है कि मेरी मृत्यु न आ जाए। प्रत्येक मानव परम्परागतों से ही सृष्टि के प्रारम्भ से ले करके मानो, यह विचार

करता रहा है कि मेरी मृत्यु न आ जाए, मैं अन्धकार में न चला जाऊँ। क्योंकि अंधकार में जाना ही मृत्यु कहलाती है। अन्धकार ही अज्ञान है तो ज्ञान में चलें। ज्ञान में, प्रकाश में सदैव जाने के लिए तत्पर रहें। ऋषि-मुनियों का यह चिन्तन और मनन रहा है और वह सदैव मानो देखो, उद्गान गाने वाले रहे हैं।

तो मुनिवरों! देखो, गाड़ीवान रेवक मुनि महाराज से महर्षि प्रव्हाण और शिलक दोनों ने यह वर्णन किया कि-"प्रभु हम यह जानना चाहते हैं कि जितना भी यह जगत् है, मानो यह चार प्रकार की सृष्टियाँ हमें दृष्टिपात आती हैं। सबसे प्रथम स्थावर, द्वितीय अण्डज है, तृतीय जंगम और चतुर्थ उद्भिज। यह चार प्रकार की सृष्टि कहलाती है। ये चारों प्रकार की जो सृष्टियाँ हैं मानो यह जो हमें दृष्टिपात आ रही हैं इनकी प्रतिष्ठा कहाँ होती है? हम इनकी प्रतिष्ठा को जानना चाहते हैं कि यह कहाँ प्रतिष्ठित हो जाती हैं? तो मुनिवरों! देखो, गाड़ीवान रेवक मुनि को एक सौ पाँच वर्ष हो गये थे, गाड़ी के नीचे तपस्या करते। वह तपश्चर कहलाते थे। तो मेरे प्यारे! देखो, गाड़ीवान रेवक मुनि बोले-"हे ब्रह्मवेत्ताओं, हे ब्रह्मचरिष्यामि मानो यह तो हमारा बड़ा ही सौभाग्य है, कि आप हमारे यहाँ इस प्रकार का चिन्तन और मनन करते रहते हो। परन्तु देखो, तुम यह जानना चाहते हो कि यह चारों प्रकार की सृष्टि कहाँ ओत-प्रोत रहती है, और यह कहाँ प्रतिष्ठित हो जाती है तब गाड़ीवान रेवक ने कहा- "मेरे विचार में तो यह आता है कि यह जो चारों प्रकार की सृष्टि जो हमें दृष्टिपात आ रही है कहीं स्थावर के रूप में, कहीं मानो अण्डज

के रूप में, कहीं जंगम और उद्भिज के रूप में, यह सर्वत्र सृष्टि मानो देखो, इसकी जो प्रतिष्ठा है वह पृथ्वी में लय हो जाती है मानो देखो, यह पृथ्वी, गुरुत्व को अपने में धारण करने वाली है और इसलिए मानो यह पृथ्वी में ओत-प्रोत हो जाती है। जब किसी भी काल में मानव ने इस पर चिन्तन और मनन किया है कि इस पृथ्वी में यह संसार मानो सर्वत्र समाहित हो जाता है उसी में मानो देखो, इसकी तप प्रतिष्ठा रहती है।

तो मुनिवरों! देखो, ऋषियों ने कहा प्रभु जब हम आचार्य कुलों में, विद्यालयों में अध्ययन करते थे, तो आचार्य हमें यह निर्णय कराते रहते थे। परन्तु हम तो जानना चाहते हैं कि ये जो चारों प्रकार की सृष्टि जब यह पृथ्वी में ओत-प्रोत हो जाती हैं तो यह पृथ्वी भी तो कहीं न कहीं प्रतिष्ठित होती होगी। उन्होंने कहा "भद्रं ब्रह्मे!" देखो, जितना मैं जानता हूँ उतना उसका वर्णन करूँगा। गाड़ीवान रेवक मुनि महाराज ने उत्तर देना प्रारम्भ किया। उन्होंने कहा, "कि यह जो जितना भी जगत है मानो देखो, यह सर्वत्र पृथ्वी में और यह पृथ्वी आपोमयी ज्योति में लय हो जाती है, जब यह आपो में प्रवेश हो जाती है, तो जल मग्न हो जाती है। तो मानो देखो, जल में यह पृथ्वी ओत-प्रोत हो जाती है, उसी में प्रतिष्ठित हो जाती है। तो मेरे पुत्रों! देखो, यह वाक् उच्चारण करने के पश्चात् ऋषि मौन होने लगे। ऋषि ने कहा, "मेरे विचार में तो मानो यही आता है। मैं जब विद्यालयों में, आचार्यों के यहाँ अध्ययन करता था तो मुझे आचार्यजन इसी प्रकार का निर्णय देते रहते थे इसीलिए और निर्णय

यह ब्रह्मं बृही व्रताः देवाः“ मानो देखो, इसी में यह ओत-प्रोत हो जाती है। मेरे प्यारे! देखो ऋषि पुनः उपस्थित हो करके बोले- ”भगवन्! हम यह जानना चाहते हैं कि यह जो पृथ्वी है यह आपो में प्रतिष्ठित है परन्तु यह आपो कहाँ ओत-प्रोत हो जाते हैं, यह आपो कहाँ प्रतिष्ठित हो जाते हैं? महर्षि रेवक ने कहा यह जो आपोमयी ज्योति है, यह जो हमें दृष्टिपात आती है, यह अनन्तमयी धारा में रत होने वाली है। मानो देखो, यह अग्नि में ओत-प्रोत हो जाती है, अग्नि इसको अपने में निगल जाती है। ये अग्नि में ओत प्रोत होने वाला है। जो मानो देखो, भिन्न-भिन्न प्रकार की अपने स्वरूप में रत रहने वाली अग्नि है, जिसको वैदिक साहित्य में चार प्रकार की अग्नि कहा है। एक अग्नि मानो देखो, अहिंवनीय है, जिस अग्नि में ब्रह्मचारी तपता है। द्वितीय अग्नि का नाम गार्हपत्य है जिसमें गृहस्थी तपता रहता है। प्रत्येक मानव और प्रत्येक माता यह चाहती है कि मेरा गृह स्वर्ग बन जाए। तो मानो देखो, ऋषि कहते हैं कि जब तक गार्हपत्य नाम की अग्नि की पूजा नहीं होगी तब तक मुनिवरां! देखो, गृह स्वर्ग नहीं बन सकता। गर्हपत्य नाम की अग्नि उस जो गृह में प्रदीप्त रहती है जहां माता पिता बेटा! दर्शनों का अध्ययन करते हैं मानो देखो, प्रातःकालीन अग्नि का चयन करते हैं, हूत करते हैं, देव पूजा करते हैं। तो मानो देखो, उनके आचरण के क्रिया-कलापों को बालक, बालिका अपने में ग्रहण करते हैं और उसी के अनुसार बरतने लगते हैं। तो बेटा! वह गृह स्वर्ग बन जाता है। आज कोई मानव राष्ट्र को स्वर्ग बनाना चाहता है तो सबसे पहले राजा के जो कर्म,

क्रियाकलाप है, वह सुन्दर होना चाहिए। जब वह सत्यवादी बन करके मानो देखो, नाना प्रकार की अग्नि का चयन करते हैं, विचारों की अग्नियों का चयन करते हुए वह गार्हपत्य अग्नि का चयन करते हुए याग कर्मों इत्यादि में रत हो जाते हैं तो राष्ट्र भी उसी के अनुसार बरतने लगता है, प्रजा बरतने लगती है तो राष्ट्र भी पवित्र बन जाता है।

तो मेरे पुत्रों! देखो ऋषि कहता है-"हे ब्रह्मणां! हे मेरे ऋषिवर! यह गार्हपत्य अग्नि के पश्चात् तृतीय अग्नि दक्षिणाग्नि नाम की अग्नि कहलाती है जो भी कहलाती है जिसमें वानप्रस्थ तपता है और मुनिवरों! उसके पश्चात् अन्य चतुर्थ अग्नि वैश्वानर है जिसमें सन्यस्त तपा करता है। ब्रहणां वर्णों व्रणां ब्रह्मे कृतं वेद का वाक् कहता है कि इस अग्नि से तो वर्ण की स्थापना हुआ करती है। मेरे पुत्रों! देखो, गाड़ीवान रेवक ऋषि ने कहा तो वैशम्पायन इत्यादि ने भी उनसे यह प्रार्थना की; कि हे प्रभु! हम यह जानना चाहते हैं कि अग्नि की भी तो कहीं न कहीं प्रतिष्ठा है, चारों प्रकार की अग्नियां हैं और मानो देखो अणु और परमाणु में रत रहने वाली अग्नि यह कहाँ प्रतिष्ठित हो जाती है? हमारे आचार्यों ने ऋषि-मुनियों ने एक-एक परमाणुवाद में बेटा! देखो, ब्रह्माण्ड का दर्शन किया है और एक-एक परमाणु में इतना परमाणुवाद है उसमें इतनी स्थिरता है कि मुनिवरों! देखो, ब्रह्माण्ड जिसमें निहित हो जाता है।

तो मेरे पुत्रों! देखो, जब ऋषि ने इस प्रकार अपना निर्णय देना प्रारम्भ किया तो ऋषि 'वर्णनं ब्रह्मे वाचं कृति लोकाम्' मेरे पुत्रों!

देखो, प्रव्हाण ऋषि ने कहा 'हे भगवान! मैं यह जानना चाहता हूँ कि अग्नि की प्रतिष्ठा कहाँ है? उन्होंने कहा आत्म ब्रह्मे वायुः सम्भवं ब्रह्मे, इसकी प्रतिष्ठा वायु में है। यह वायु भी मानो देखो इसे अपने में प्रतिष्ठित कर लेती है अपने में धारण कर लेती है। तो मेरे पुत्रों, जब रेवक ऋषि ने इस प्रकार अपना विचार देना प्रारम्भ किया-"कि यह वायु सम्भवतः मानो यह जो अग्नि है यह वायु में ओत-प्रोत हो जाती है मानो देखो, उसी में रत हो जाती है। मेरे पुत्रे! देखो, आपो ब्रह्मणे प्राणं यह प्राण सत्ता को प्रदान करने वाली है, गति देने वाली है। मेरे पुत्रों! देखो, जब ऋषि ने इस प्रकार निर्णय दिया तो उन्होंने कहा-प्रभु! मेरी इच्छा यह है कि हम यह और जानना चाहते हैं कि यह वायु किसमें प्रतिष्ठित है? गाड़ीवान रेवक ने कहा कि वायु अन्तरिक्ष, में प्रतिष्ठित है।

मेरे पुत्रों! देखो, परमाणु तीन है गुरुत्व, तरलत्व और तेजोमयी। इन तीनों परमाणुओं को गति देने वाली वायु है और जहाँ वो गति कर रहे हैं, उसको आकाश कहते हैं, उसे अन्तरिक्ष के रूप में वर्णन करते रहते हैं। तो मेरे पुत्रों! देखो, जहाँ शब्द विचरण करता है शब्द के साथ में चित्र भी विचरण करता है मानो देखो, उनके क्रिया-कलाप भी उनके साथ ही विचरण करने लगते हैं। मेरे पुत्रों! देखो, महर्षि गाड़ीवान रैवक मुनि महाराज ने कहा कि मेरे विचार में तो ऐसा आता है कि परमाणुवाद की वृत्तियों में रत यह जगत् मानो देखो, एक सूत्र में प्रतिष्ठित होता हुआ दृष्टिपात आता है।

मेरे प्यारे! देखो, ऋषिवर गाड़ीवान रैवक उस समय मौन हो गये

और मौन होने के पश्चात् उन्होने पुनः यह प्रार्थना की 'हे ऋषिवर! हम सब अपने में अपनेपन का चिन्तन करते रहते हैं। हमारा विचार है, हम आपसे कुछ जानने के लिए और विचार विनिमय करने के लिए आए हैं। प्रभु! हमारी इच्छा यह है कि आप हमारे कुछ प्रश्नां का उत्तर दीजिए? आपने यह जो हमें निर्णय कराया है कि यह अन्तरिक्ष मानो देखो, शून्य बिन्दु में अर्थात् यह महत्तत्व में ओत-प्रोत हो जाता है। यह क्या है? मेरे प्यारे! देखो, ऋषि-मुनियों की शैली बड़ी विचित्र रही है उच्चारण करने की। मानो देखो, ध्रुवा से ऊर्ध्वा में और ऊर्ध्वा से ध्रुवा में उनकी उड़ान रही है। मेरे पुत्रे! देखो, अब ध्रुवा की वार्ता प्रारम्भ हुई जिसके बाद उन्होंने कहा-प्रभु! हम यह जानना चाहते हैं कि यह जो महतत्व शून्य है, यह अन्तरिक्ष में सर्वत्र दृष्टिपात आ रहा है। क्या यह उसी में ओत-प्रोत हो जाता है और शून्य अदृश्य हो जाता है। हे मेरे प्रभु! शून्य बिन्दु में यह जागृत इकाई में दृष्टिपात आने लगता है तो हम यह जानना चाहते हैं कि यह मानो देखो 'चन्द्रं ब्रह्मा' यह शून्य, यह महतत्व कहाँ ओत-प्रोत होना प्रारम्भ हो जाता है। गाड़ीवान ने कहा-यह चन्द्रमा में है। चन्द्रमा अमृत की वृष्टि करने वाला है और चन्द्रमा ही मानो देखो अमृतमयी कहलाता है यह अपने में रसों को अमृत कराता है। मानो देखो, ये चन्द्रमा में प्रतिष्ठित होता है यह चन्द्रं ब्रह्मणे देखो, जो अमृत को अपने में धारण करता हुआ मानों उसकी वृष्टि करता है।

तो मुनिवरां! देखो, ऋषि ने कहा-'प्रभु! यह जो चन्द्रमा है यह किस में ओत-प्रोत रहता है? मैं जानना चाहता हूँ, उन्होंने कहा- यह

चन्द्रमा सूर्य में ओत-प्रोत होता है, यह सूर्य भी अपनी सहायता को देता रहता है इसी से ऊर्जा लेता है और चन्द्रमा रात्रि रूपी अहिल्या को अपने गर्भ में, धारण करता रहता है। मानो देखो, यह रात्रि जो अहिल्या है, यह अन्धकार है यह चन्द्रमा मानो देखो, इसको अपने में धारण करता है। यह शक्ति, ऊर्जा सूर्य से लेता है। यह सूर्य ही हमारा प्रकाशक है, नाना प्रकार को देने वाला है। मानो देखो, यह तो द्यौ से प्रकाश लेता है, चन्द्रमा को प्रदान करता रहता है। चन्द्रमा पृथ्वी को अमृत देता है, अमृत देने के पश्चात् मानो सूर्य उसे तपायमान बनाता रहता है। तो मेरे पुत्रों! देखो, ऋषि ने कहा कि यह सूर्य अपने में प्रकाशमान रहता है मानो यह अपने में वृत्तियों में रत रहने वाला है और द्यौ से इसका समन्वय रहता है।

मेरे प्यारे! देखो, ऋषि बड़े प्रसन्न हुए और वैशम्पायन ने कहा- "धन्य है प्रभु! आपने हमारे अन्धकार में मानो देखो, प्रकाश लाना प्रारम्भ किया, आप प्रकाशमयी है। मुनिवरों! देखो इतने में प्रव्हाण ने पुनः प्रश्न किया कि यह जो चन्द्रमा है यह सूर्य से ऊर्जा लेता है, सूर्य द्यौ से प्रकाश लेता है। यह मानो देखो, सूर्य कहां प्रतिष्ठित रहता है भगवन्? तो मेरे प्यारे! देखो, ऋषि ने कहा कि यह गन्धर्व लोकों में ओत-प्रोत हो जाता है।

मानो देखो, गन्धर्व नाम हमारे वैदिक साहित्य में बेटा, बुद्धि का है, गन्धर्व नाम के लोक भी हैं और नाम जो गान गाने वाला है, जो वेदों का स्वरों से गान गाता है, उसे भी गन्धर्व के रूप मे वर्णित किया गया है। परन्तु देखो, यहाँ प्रकरण यह कहता है कि गन्धर्व

मराडल हैं। जो सौर मराडल हमें दृष्टिपात आता है मानो देखो उस सौर मराडल का अन्तिम जो मनका है वह गन्धर्व कहलाता है। मानो देखो, जैसे एक माला में नाना प्रकार के मनके एक सूत्र में पिरोये जाते हैं वह मनका सुमेरू कहलाता है। उस समेरू के सदृश्य मानो देखो, गन्धर्व कहलाता है। हमारे यहाँ जिस भी काल में विज्ञान पनपा है वह विज्ञान अपनी आभा में बड़ा विचित्र रहा है क्योंकि विज्ञान में देखो नाना वैज्ञानिक उड़ाने उड़ते हैं। जब से मराडलों में मानव जाता है, निर्णाय देता हुआ चिन्तन और मनन करता हुआ तो मुनिवरों! देखो, सौर मराडलों में प्रवेश करता हुआ आकाश गंगा में प्रवेश कर जाता है। यह गन्धर्व सौर मराडल का अन्तिम मराडल कहलाता है और उसी में यह चन्द्रमा, सूर्य इत्यादि ओत-प्रोत रहते हैं। उसी में मानो ओत-प्रोत हो करके अपना एक तारतम्य बना लेते हैं। वही तारतम्य बेटा! शनि से समन्वय हो जाता है इसी प्रकार आचार्य ने यह वर्णान किया कि ब्रह्मवेत्ताओं! मेरे विचार में तो यह आता है कि यह सूर्य गन्धर्व लेकों में ओत-प्रोत हो जाता है।

मेरे पुत्रों! देखो, इतने में महर्षि प्व्हाराा ने यह प्रश्न किया कि हे प्रभु! जब हम माता की गोद में विद्यमान थे और माता के गृह में शिद्धा प्रारम्भ हुई तो हम माता से यह प्रश्न करते रहते थे। माता हमें वर्णान कराती रहती थी। हम यह जानना चाहते हैं प्रभु! कि यह जो हमने माता से, आचार्यों से जो गन्धर्व श्रवण किया है यह गन्धर्व लोक कहाँ ओत-प्रोत होता है। उन्होंने कहा- यह जो गन्धर्व है यह मानो देखो, इन्द्र लोकों में ओत-प्रोत हो जाता है, इन्द्र ही व्रतम्

कहलाता है।

वैदिक साहित्य में बेटा! इन्द्र नाम राजा का है, इन्द्र नाम आत्मा का है, इन्द्र नाम परमात्मा का है मेरे पुत्रों, देखे, यहाँ इन्द्र नाम लोक को भी कहा गया है और इन्द्र नाम सूर्य को भी कहते हैं परन्तु इन्द्र का अभिप्राय यह कि जो शासन करने वाला हो जो वह इन्द्र कहलाता है। जैसे राजा भी वही इन्द्र कहलाता है जो अपने में संयमी हेता है, अपनी इन्द्रियों पर विजय करने वाला है और आध्यात्मिक विज्ञान में उसे रत करा करके प्रत्येक इन्द्रियों के विषयों को जान लेता है। वही राजा इन्द्र कहलाता है। इन्द्रियों पर जो शासन करता है वही मानो देखो, इन्द्रपति कहलाता है। मेरे पुत्रे! देखो, परमपिता परमात्मा का नाम इन्द्र है। जो संसार का स्वामी, नेतृत्व करने वाला है, मेरे पुत्रे! इन्द्र नाम आत्मा का भी है परन्तु आत्मा के इस शरीर से पृथक होने के पश्चात् जब यह शरीर शून्य गति को प्राप्त हो जाता है उससे पूर्व जब तक इसमें आत्मा विद्यमान होता है जब तक यह आत्मा इन्द्र है। मानो वही सर्वत्र इन्द्रियों को गति देने वाला है। प्राण सूत्र से इसका समन्वय हो करके और प्रत्येक इन्द्रियों में मानो आत्मा प्राण के साथ ही देखो, उसमें गति और ज्ञान की प्रतिभा दृष्टिपात आती रहती है।

आत्मा इन्द्र है परमात्मा इन्द्र है राजा इन्द्र है मानो देखो, सूर्य की नाना प्रकार की किरणें हैं जो सायंकाल को मुनिवरो! देखो, उसी में सिमट जाती है। प्रातःकाल में मानो देखो सहत्रें भुजाओं वाला जो किरणों में रत रहने वाला है वही सूर्य बेटा पुनः से देखो, प्रकाश

देना प्रारम्भ कर देता है।

तो मेरे पुत्रों! देखो, गाड़ीवान रैवक ऋषि ने इस प्रकार जब अपना निर्णय दिया तो ऋषियों ने कहा-"धन्य हैं प्रभु!" पुनः उन्होंने कहा-प्रभु! हमारी इच्छा यह है, हम जानना चाहते हैं कि यह इन्द्र किसमें प्रतिष्ठित हो जाता है? उन्हांने कहा हे! वैशम्पायन, हे! प्रव्हाण, हे ब्रह्मवेत्ताओं! तुम जानते तो हो परन्तु देखो, मैं तुम्हे इसका उत्तर दिये देता हूँ कि यह जो इन्द्र है यह प्रजापति में ओत-प्रोत हो जाता है। यह जो प्रजापति है, वह राजा होता है प्रजा का नेत्तृत्व करने वाला हो। मेरे पुत्रों! देखो, जो प्रजा का निर्माण करने वाला हो, प्रजा में नाना प्रकार की चेतना प्रदान करने वाला हो उसका नाम प्रजापति कहलाता है। वह प्रजा का स्वामी है, नेत्तृत्व करने वाला है, निर्माण करने वाला है। मानों देखो, वह इन्द्र कहलाता है। वही प्रजापति कहलाता है मानो देखो, एक ही सूत्र में दोनों मनके कहलाते हैं। हे प्रजापति! हे प्रजा के स्वामी! मानो देखो, हे परमात्मा! तू हमारी रक्षा कर तू हमारा नेतृत्व करने वाला है।

मेरे पुत्रों! देखो, ऋषि प्रव्हाण ने कहा हे प्रभु! एक समय हम दण्डक वनों में ऋषि तत्वमुनि महाराज के विद्यालय में अध्ययन कर रहे थे, उन्होंने भी हमें इस वाक्य को इसी प्रकार निर्णय कराया जैसे आपने निर्णय कराया। हम यह जानना चाहते हैं कि यह प्रजापति कहां ओत-प्रोत होता है? उन्होंने कहा यह प्रजापति याग में ओत-प्रोत हो जाता है यागां ब्रह्मणां ब्रह्मे व्रतं नाभ्याम बृही। मुनिवरों! देखो यह याग में प्रतिष्ठित हो जाता है, प्रजापति याग में है। क्योंकि जितना

यह संसार है यह सर्वत्र यज्ञमयी कहलाता है यह एक प्रकार का याग हो रहा है यह जो दृष्टिपात आने वाला ब्रह्माण्ड है। बेटा! यह एक माला के रूप में दृष्टिपात आ रहा है। उसको धारण करने वाला परम्परा यह एक प्रकार की यज्ञशाला है। इस यज्ञशाला में परमपिता-परमात्मा स्वयं ब्रह्मा है और मुनिवरां! देखो, यह आत्मा यजमान है। आत्मा यजमान बन करके योग कर रहा है। प्रकृति का इसमें पंचरूप है। यही मानो होता बन करके याग हो रहा है। जितना भी संसार का सुकर्म है, सुक्रिया कलाप है उस सर्वत्र का नाम मुनिवरों! देखो, याग कहलाता है।

मेरी प्यारी माता याग कर रही है जब अपने पुत्र-पुत्रियों को मानो बाल्य, बालिकाओं को शिक्षा देना प्रारम्भ करती है। विद्यालयों में याग हो रहा है। जब विद्यालयों में सुविचार दे करके आचार्य उन्हें अपने चरणों में विराजमान करते और वह बाल्य अपने हृदय की मानो देखो कामना और वृत्तियों का अध्ययन कर प्रदान करते हैं तो यह याग हो रहा है। तो राजा मानो देखो, प्रजा को कर्तव्य में लाने के लिए तत्पर हो रहा है तो वह देख, याग हो रहा है। मेरे पुत्रों! देखो, यजमान यज्ञशाला में विद्यमान हो करके अग्निहोत्र कर रहा है, अग्नि के मुखार्बिन्दु में बेटा! देखो, वह स्वाहा कह रहा है, वह याग कर रहा है। मानो देखो, धनुर्याग हो रहा है, अग्निष्टोम याग हो रहा है भिन्न-भिन्न प्रकार के यागों में मानव परिणत रहता है और उसी में यह प्रजापति ओत-प्रोत हो करके मानो उसी में रत रहता है।

तो मेरे पुत्रों! देखो, इतने में प्रव्हाण जी ने यह प्रश्न किया, कि

महाराज यह वाक्य तो मेरे आचार्यजन और पितरजन भी वर्णन कराते रहते थे। हम यह जानना चाहते हैं कि याग कहाँ प्रतिष्ठित रहता है? मेरे पुत्रों! देखो, ऋषि कहता है कि याग दक्षिणा में रहता है। परन्तु दक्षिणा का अभिप्राय यह है कि यजमान की अपनी जो त्रुटियां है अपने में जो दोष बन गये हैं मानो देखो, उसे वह पुरोहित को प्रदान करता है। द्रव्य तो केवल उदर की पूर्ति के लिए प्रदान कर रहा है परन्तु दक्षिणा का अभिप्राय यह यजमान में परिणत हो रही त्रुटियों से उपराम होने के लिए वह पुरोहित से प्रार्थना करता है, प्रभु! मैं आपको दक्षिणा अर्पित करना चाहता हूँ। पुरोहित उसे स्वीकार करता है और उसे महानता देता है। तो मेरे पुत्रों! देखो, अपनी त्रुटियों को त्यागने का नाम दक्षिणा कहलाता है देखो, याग दक्षिणा में प्रतिष्ठित रहता है उसी में ओत-प्रोत होता है।

मेरे पुत्रों! देखो, ऋषि वैशम्पायन ने कहा 'प्रभु! मेरी यह प्रार्थना है। आपसे, मैं जानना चाहता हूँ कि यह जो दक्षिणा है, मानो यह कहाँ ओत-प्रोत रहती है? गाड़ीवान रैवक ने कहा, "यह श्रद्धा में रहती है।' श्रद्धामयी देहि देखो "श्रद्धाणां ब्रह्मे" जब हृदय से मानव उपराम होता है, परमात्मा के मार्ग में गति करता है और यज्ञोमयी अपने जीवन को बनाता है तो मानो श्रद्धा उत्पन्न होती है और उसी श्रद्धा में दक्षिणा रहती है।

तो मेरे पुत्रों! देखो, इतने में वैशम्पायन ने पुनः प्रश्न किया कि जब श्रद्धा हृदय में ओत-प्रोत रहती है तो यह जो हृदय है यह हमारा सर्वत्र मानो देखो इस ब्रह्माण्ड का पुंज कहलाता है। मेरे पुत्रे! देखो,

रूप, रस, गन्ध शरीर के हैं, प्राण सत्ता इत्यादि जितने भी क्रिया कलाप शरीर के हैं वह सब हृदय मे ओत-प्रोत हो रहे हैं, हृदय में ही उनका चित्रण होता रहता है।

तो मेरे पुत्रों! देखो, जब गाड़ीवान रैवक मुनि महाराज जी प्रसन्नता में आये, तो उन्होंने कहा- हे ऋषिवर! अब प्रश्न करना तुम्हारे लिए सुयोग्य नहीं है क्योंकि यह जो हृदय है इसका परमात्मा के हृदय से समन्वय हो जाता है और जब परमात्मा के हृदय से समन्वय होता है तो मानो देखो, परमात्मा का हृदय और आत्मा का हृदय जब एक हो जाता है तो मानो देखो उसी पद्धति को देखो, आचार्यों ने मोक्ष कहा है। क्योंकि उस समय संसार एक प्रतिभा में रत हो जाता है। तो मेरे प्यारे! देखो, परमात्मा का हृदय और परमात्मा के हृदय में मानव का हृदय, मानव में हृदय में श्रद्धा, श्रद्धा में दक्षिणा, दक्षिणा में याग और याग में प्रजापति, प्रजापति में इन्द्र और इन्द्र में मुनिवरों! देखो, गन्धर्व और गन्धर्व में सूर्य, सूर्य में चन्द्रमा यह मानो देखो ध्रुवा से ऊर्ध्वा में, ऊर्ध्वा में जब मानव चला गया 'ध्रुवा ब्रह्मणे' देखो ऊर्ध्वा में से इसी प्रकार देखो, यह संसार दृष्टिपात आता है। मुनिवरों! देखो, इसी प्रकार अपने में निश्चित हो जाता है। जहाँ 'शून्यं ब्रह्मे' मेरे पुत्रे! देखो, अन्तरिक्ष और अन्तरिक्ष से वायु और वायु से अग्नि और अग्नि से आपोमयी ज्योति और आपोमयी ज्योति में बेटा! गुरुत्व यह संसार बेटा! इसी प्रकार रचना में दृष्टिपात आने लगता है। तो मेरे पुत्रे! देखो, विचार-विनिमय क्या, चन्द्रमा से लेकर के तुम्हें इस संसार में आना है और मुनिवरों! देखो,

विद्यालय में प्रतिष्ठा से ले करके वह शून्य बिन्दु में चला जाता है! मेरे पुत्रे! देखो, यह अनुपम जगत है जिसके ऊपर ऋषि-मुनि परम्परागतों से बेटा! अपने में अनुसन्धान करते रहते हैं। 3 जनवरी 1988 बावली (मेरठ), (महर्षि विश्वामित्र का धनुर्याग)

मन-प्राण-विचार की एक सूत्रता ही तप है

मेरे पुत्रे! बहुत पुरातन काल हुआ, जब वेद मन्त्रें का उद्गीत गाते हुए ऋषि मुनियों ने बेटा! अपने में उद्धृता की ओर मुनिवरों! एक समय गाड़ीवान रैवक मुनि महाराज की अध्यक्षता में वह जो ऋषि-मुनियों का समाज बेटा, महर्षि भारद्वाज मुनि के आश्रम में बेटा! विद्यमान हुआ, मानो सब ऋषि अपने-अपने आसनों पर विद्यमान हैं, तो ऋषि जब अपने में उद्गीत गाने लगे तो बेटा! देखो, उस समय भारद्वाज मुनि महाराज ने अपनी सर्वत्र विज्ञानशाला का दर्शन कराया और विज्ञानशाला का दर्शन कराने के पश्चात व्रत्तं ब्रह्मणा वायु संभव ब्रह्मे लोकम् मेरे प्यारे! देखो, जब उसमें अभ्युदय होने लगा तो मुनिवरां! देखो, महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज ने कहा कि भगवन् उद्गीत गाइए, अब आप क्या चाहते हैं? महर्षि रैवक ने कहा- हे भगवन्! जैसा आपकी इच्छा हो, परन्तु वैसा ही उद्गीत गाया जाए तो उन्होंने कहा- कि ब्रह्मणां ब्रह्म कृतं भद्रं भविता रेतु मया वर्णास्सुति।

तो मुनिवरो! देखो, महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज ने न्यौदा में से कुछ मन्त्रें का उद्गीत गाया और उद्गीत गाते हुए, भारद्वाज ने कहा- कि प्रभु! जो आपकी इच्छा हो, वह मुझे वर्णन कराइए, परन्तु मैंने तुम्हें

अपना आशय प्रकट किया है कि मानो देखो, मेरी माता की जो प्रेरणा है वह बड़ी भव्य रही है। महर्षि रैवक ने कहा- कि माता कैसे प्रेरणा देती है? तो मुनिवरां! देखो, इतने महर्षि दालभ्य जी उपस्थित हुए और दालभ्य जी ने कहा- कि मेरी माता का नाम मदालसा था और माता मदालसा मानो देखो, अपने गर्भ के शिशु से वार्ता प्रकट करती रहती, मानो देखो, शिशु से कैसे वार्ता प्रकट हेती है यह बड़ा एक गम्भीर विषय कहलाता है।

मेरे प्यारे! देखो, प्रथम हमारे यहाँ विद्यालयों में जब ब्रह्मचारिणियाँ अध्ययन करतीं, तो मानो आचार्यों ने उन्हें प्राण विद्या के ऊपर बड़ा बल देते और यह कहते कि प्राणविद्या प्रत्येक ब्रह्मचारिणियों के हृदय में वास करनी चाहिए। तो बेटा! वह प्राणविद्या क्या है? एक प्राण होता है, एक अपान प्राण होता है। अपान प्राण और प्राण दोनों का जब सम्मिलन होता है और उदान प्राण के साथ में मानो देखो, जब प्राण अपान और उदान को साथ ले करके गमन करते हैं तो मानो देखों, वह जो शिशु वास कर रहा है, गर्भ में जो आत्मा विद्यमान है वह माता अपनी प्रेरणा वहाँ तक प्रेरित करती रही है और उन्होंने वर्णन किया है। हे आत्मा! तूने मेरे गर्भ स्थल में वास क्यों किया है? क्योंकि तू बुद्धिमान है। हे आत्मा! निरंजन है, तू अखण्डता में परिणत रहने वाला है। तूने यहाँ कैसे वास किया है?

तो मुनिवरो! देखो, उस समय ब्रह्मा वह जब यह वार्ता प्रकट करता है तो 'आत्मा ब्रह्मेण' आत्मत्व की एक अग्नि गर्भ स्थित आत्मा में प्रदीप्त हो जाती है और अग्नि प्रदीप्त हो करके बेटा! अन्तर जगत

में पूर्ण रुपेणता को प्राप्त करता हुआ, जब बाह्य जगत में आता है तो बाह्द जगत में बेटा! माता उससे पुनः यह प्रश्न करती है। परन्तु देखो, माता अपने में ममत्व को धारण करने वाली है। जितना भी ज्ञान और विज्ञान है वह बेटा! देखो, माताओं के हृदय में प्रदीप्त रहना चाहिए। क्योंकि माता विज्ञान की आभा में रत रहने वाली कृतियाँ मानी गई हैं। तो मानो देखो, वह इस प्रकार की आभाएँ आध्यात्मिक विज्ञान, अपने में परम्परागतों से बड़ा रहस्यमय रहा है बेटा! मानव आध्यात्मिकवाद के ऊपर चिन्तन मनन करता रहा है क्योंकि आध्यात्मिकवाद परमपिता परमात्मा की एक महती और अनुकम्पा मानी गई है। तो मुनिवरों! देखो, महर्षि दालभ्य ने कहा- कि माता जब लोरियों का पान कराने लगीं, तो बुद्ध, शुद्ध, निरंजन ये तीन शब्द उच्चारण करती रहती तो मानो जब हम प्रबल हुए तो माता से प्रश्न करते, आत्मा के सम्बन्ध में प्रश्न करते रहे, तो माता इनका उचित उत्तर देती रही है। तो मानो देखो, माता जब बाल्य को, अपना सखा बना करके और वह मानो आध्यात्मिकवाद में परिणत कर देती है तो मानो बेटा! जैसे माता विचार देती है और माँ की जो संरक्षणता है, वे विद्यालय है, कोई और विद्यालय संसार में नही है।

तो मेरे प्यारे! देखो, माता के इस विद्यालय की चर्चाएं महर्षि प्रव्हाण ने की, और बेटा! देखो, वह इतना उदगीत गा करके वह अपने आसन पर विद्यमान हों गए तो मुनिवरो! देखो, इतने में महर्षि श्वेतकेतु उपस्थित हुए और श्वेतकेतु ने कहा कि- जो महर्षि प्रव्हाण ने वाक्य कहा है यह बड़ा प्रेरणादायक है, परन्तु यह विचार का भी

विषय है और इस पर हमें विचार-विनिमय करना चाहिए। मानो देखो, श्वेत ऋषि बोले कि- जब मैं माता के आंगन में विद्यमान था। तो वह प्राण और अपान को जानती थी। प्राण और अपान की जानने वाली मेरी माता शीतली प्राणायाम से जब अपने विचार प्रवेश कराती रहती तो मानो देखो, उससे हमारा जीवन एक महान बनने लगा और संसार की जितनी भी प्रतिभाएँ हैं, वह सर्वत्र मानो देखो, हमारे समीप आने लगीं, और विचार आते रहे। साधक बन गये, माताओं की सदैव यह इच्छा रहती है कि मेरे गर्भ से उत्पन्न होने वाला बाल्य, बुद्धिमान बने और योगेश्वर भी बने। मानो तेजस्वी बनता चला जाए, जिस तेज के माध्यम से मानवीयता और अपनी तेजोमयी धारा को प्राप्त करता रहे। यह माता की प्रबल इच्छा हेती है कि संसार का विज्ञान भी उसी के समीप होना चाहिए।

मेरे पुत्रों! देखो, जब श्वेतमुनि ने ये कहा तो उन्होंने कहा कि मेरी माता मदालसा भी सदैव यही चाहती थी। श्वेतमुनि ने कहा कि जब मेरे पितरों के हृदय में, माता पिता के हृदय में यह संकल्प आया कि हमें पुत्र यागी बनाना चाहिए, तो मेरे माता-पिता ने तप किया और तप करने के पश्चात मानो देखो, पुत्र याग के लिए उन्होंने याग किया और याग करने के पश्चात मानो देखो, उन्होंने तप किया और तप करके देखो, जब एक पुत्र याग सम्पन्न हुआ तो उसके पश्चात उन्होंने अपने गृह को पुनः त्याग दिया और भयंकर वनों में तपस्या के लिए परिणत हो गए। तो मानो देखो, मानवीय जीवन में तप करना चाहिए, यदि मानव अपने को महान बनाना चाहता है,

पवित्र बनाना चाहता है तो उसे तप करना चाहिए।

बेटा! विचार आता है कि तप किसे कहा जाता है तो बेटा! देखो, तप के लिए उन्होंने बड़ी मीमांसा की और तप के लिए उन्होंने यह कहा कि तप तब सिद्ध हेता है, जब मानव का अन्न पवित्र होता है। अन्न की पवित्रता होनी चाहिए। मेरे पुत्रों! देखो, जब अन्न पवित्र होगा तो मन पवित्र हो जाएगा और जब मन पवित्र हो जाता है, तो मन, प्राण और विचार एक सूत्र में आ जाते हैं। तीन मनके जब एक ब्रह्मसूत्र में पिरोये जाते हैं। तो मानो देखो, इसका नाम तप कहा जाता है। "तपो हिरण्यं ब्रह्मा" मेरे प्यारे! देखो, याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा कि मेरे जो महापिता थे, वह मानो देखो, पिच्चासी वर्ष तक अपने अन्तः करण को जानने के लिए, वायु का सेवन करते रहे। मुनिवरों! देखो, वह केवल वायु का सेवन, जल का आहार करते थे और वह पिच्चासी वर्षों तक वायु से अन्न को ग्रहण करते थे मानो देखो, प्राण के द्वारा उन्होंने मुनिवरों! देखो, अन्तःकरण में संस्कार थे, लगभग पिच्चासी हजार जन्मों के जो उन्होंने उनका साक्षात्कार किया था। तो मेरे प्यारे! देखो, ऋषि ने जब कहा कि-हे भगवन्! अन्नादां भूतं ब्रह्मण लोकाम् मानो देखो, तपस्या से यदि हम तपस्या में परिणत होना चाहते हैं, तपस्या में रत रहना चाहते हैं। हम अपना मानो कल्याण चाहते हैं तो मेरे प्यारे! देखो, ऋषि ने यह वाक् उच्चारण करके वह भी अपने आसन पर विद्यमान हो गए।

मेरे प्यारे! देखो, इतने में महर्षि शिलक मुनि उपस्थित हुए और शिलक जी ने कहा कि देखो, पूर्व विचारोत्ताओं ने जो वार्ता प्रगट की

है वह अकाट्य है। वह मानो देखो, महानता में रत रहने वाली है परंतु मेरा तो केवल एक ही विचार रहता है कि संसार में तपस्या के संबंध में मानो देखो, जब इन्द्रियां पवित्र हो जाती हैं। उसे तप कहते हैं जब हम सब इन्द्रियों के एक-एक विषय को निश्चय कर लेते हैं उससे पूर्व सबसे प्रथम जो भी जिज्ञासु है, साधक वह अपने में यह स्वीकार करे कि परमपिता परमात्मा है और जब उसे यह निश्चय हो जाता है कि वह परमपिता परमात्मा है तो मानो देखो, वह आगे-आगे परमात्मा की कृति में रत होना चाहता है। वह ब्रह्मणां ब्रहे मानो देखो, ब्रह्म की प्रतिभा को जान करके वह अपने में रत करके और ऋत और सत् में गमन करने लगता है। ऋत कहते हैं प्रकृति को, और सत् कहते हैं ब्रह्म को। मानो देखो, जब ऋत और सत् दोनों का समन्वय होता है तो मुनिवरों! एक अमृत हमें प्राप्त होने लगता है। उस अमृत को जब हम प्राप्त करने लगते हैं तो हमारा जो वह परमपिता परमात्मा है, जो सर्वज्ञ है, जिसके आंगन में हम सब विद्यमान रहते हैं जैसे माता के गर्भस्थल में शिशु का जब निर्माण होता है तो मानो देखो, वह आत्मा माता के गर्भ से ढका हुआ रहता है। मानो उसी में ओत-प्रोत रहने वाला होता है। जब वह माता के गर्भ से पृथक् हो करके, बाह्य जगत में आता है तो मानो देखो, वह ऋत और सत् में गमन करता हुआ मानो देखो, परमात्मा की महती में रत हो कर उसी को अपने में स्वीकार कर लेता है। यहाँ ऋषि-मुनियों का अपना, अपना जो मन्तव्य रहा है। उनका हृदय है जो वह उद्गीत रूप में गाते हैं, उसके ऊपर हमें जाना चाहिए। तो मेरे प्यारे!

देखो, महर्षि शिलक यह उद्गीत गा करके शान्त हो गए। 20 अप्रैल, 1989, मोदी नगर (गाजियाबाद), (यागमयी साधना)

८ समाज को ऊँचा बनाने का कर्मकाण्ड

हमारे ऋषि-मुनियों ने बहुत पुरातन काल में बेटा! विद्यालयों में एक सभा की। उस सभा में मानो देखो, ब्रह्मवेत्ता, ब्रह्मविचारक, ब्रह्मचारी ब्रह्मश्रोत्रीय और जिज्ञासु मानो देखो सब उस सभा में विद्यमान थे। महर्षि श्वेताश्वेश्तर को उस सभा की अध्यक्षता, मानो वृत्तियों में रत किया गया और यह कहा कि यह जो समाज है, यह समाज कैसे ऊँचा बने? कौन सा क्रियाकलाप ऐसा है, जिस क्रिया कलाप को अपनाने के पश्चात् मानो यह अपने में क्रियाशील हो करके अपना आत्मोत्थान करे समाज का आत्मोत्थान तब होता है जब कि यह लोक पवित्र बन जाता है, लोक में हम प्रियता को प्राप्त हो जाते हैं। उसके पश्चात् हमारा यह मानवीयत्व, पवित्रता को प्राप्त हो जाता है, तो इसके ऊपर विचार-विनिमय किया जाये कि कौन सा क्रियाकलाप हो।

मेरे प्यारे! देखो, इसमें भिन्न-भिन्न ऋषियों के विचार आये जैसे मानो देखो देवपूजा के सम्बन्ध में, महर्षि प्रव्हाण जी उपस्थित हुए और प्रव्हाण जी ने यह कहा कि-"मेरे विचार में यह आता है कि जन-समूह के लिए एक पद्धति बना देनी चाहिए और जिस पद्धति के आधार पर वह अपने जीवन को सदैव नवीन स्वीकार करता रहे।" उन्होंने कहा, "मेरे विचार में यह आता है कि यह जो मानो देखो

देवपूजा का नृत्य है, यह ऋषि-मुनियों और वैदिकता का मानो देखो एक, नृत्य कहलाता है, इसके ऊपर प्रायः विचार-विनिमय होना चाहिए।"

मेरे पुत्रों! देखो, यह वाक्य स्वीकार किया गया और विचारने लगे कि यह पद्धति कैसे बने? तो मेरे प्यारे! देखो उसमें अपने विचार देते हुए महर्षि वैशम्पायन ब्रह्मवेत्ता ने यह कहा कि जितनी भी मानवीय पद्धति हैं, उन पद्धतियों में एक मानव-कर्मकाण्ड की स्थापना होनी चाहिए, क्योंकि कर्मकाण्ड में ही मानव कटिबद्ध हो करके, उन क्रियाओं में सफलता को प्राप्त कर सकता है। जिन क्रियाओं में मानो देखो, देवताओं का समूह विद्यमान रहता है। तो मुनिवरों! देखो यह निर्णय देते हुए अग्रणीय विचार-विनिमय की प्रतिभा का एक स्रोत, घृत उत्पन्न होने लगा। ऋषि-मुनियों में एक उत्साह, एक उल्लास इस पद्धति के लिए था तो नाना ऋषि-मुनियों ने एक ही अपना विचार दिया कि देवपूजा होनी चाहिए।

देवता कौन-कौन हैं? उन देवताओं की गणना में लग जाना चाहिए। मेरे पुत्रों! देखो, उन देवताओं के लिए निर्णय देने के लिए शुभावेतु ऋषि महाराज ने कहा कि-"यह जो मानवीय पद्धति है, 'अस्वतम् देव-पूजा' है, देवता हमारे दो प्रकार के होते हैं, एक जड़वत् हेता है और एक चेतनावत होता है। मानो देखो, चेतना में हमारे देखो देवता पितर कहलाते हैं। जैसे माता है, पितर है, आचार्यजन है, अतिथिजन है, ब्रह्मवर्चोसि हैं, पुरोहितजन जो मानव को शिक्षा दे करके ऊर्ध्वा में ले जाते हैं। वे हमारे मानो देवता

कहलाते हैं और उन देवताओं के प्रति हमें अगाध प्रीति रखनी चाहिए। उनका पूजन करना चाहिए।

वास्तविक पूजा

उनका यथोचित स्वागत किया जाये और उनको अपने हृदय में, उनके ज्ञान और विज्ञान की प्रतिभा को अपने में धारण करते हुए जब, मानव उसका प्रचार उसका चलन करता है और उनकी आज्ञा का पान करता है, तो उसको पूजा कहा जाता है। पूजा का अभिप्रायः यह नहीं है कि आज हम मानो देखो उसके चरणों की वन्दना तो कर रहे हैं और उसकी आज्ञा का पालन नहीं कर रहे हैं। तो ऐसी चरणों की वंदना से कोई लाभ नहीं है, देखो वह लाभप्रद नहीं है, लाभ उसी काल में होगा जब भी मानो हम उसके विचारों को और उसकी मान्यताओं को ऊँचा बनाने का प्रयास करेंगे।

परन्तु विचार आता है, वह कैसे माना जाये मानो पितरगण भी हमारे इतने ऊर्ध्वा में हों, वे देवत्व प्रवृत्ति वाले हो। देवता प्रवृत्ति वाले कौन होते हैं? जिसे माता में देवप्रवृत्ति वाली विचार धारा आती है। उस माता को देवता के रूप में स्वीकार करते हैं। माता भी वास्तव में माता हो, निर्माण करने वाली विचित्र हो जैसे माता मदालसा के जीवन की गाथाएँ स्मरण आती रहती हैं। माता मदालसा मानो देखो बाल्यकाल में वह वेद का अध्ययन करती थी, अध्ययन करते हुए मानो देखो जब वह 'अमृतम्' मानो देखो, मनुवंश में उसका संस्कार हुआ तो जब उसका प्रथम गर्भ था देखो वह 'गर्भाशय उष ब्रह्म', जब

उसमें एक शिशु का प्रवेश हुआ, तो माता मानो देखो प्राण के द्वारा तपस्या करती थी।

विचार आता है कि वह प्राण तपस्या क्या है? प्रत्येक मानव परम्परागतों से बेटा! प्राण की आभा को जानने में लगा हुआ है, मानो देखो, माताएं तो बाल्यकाल से इसे विद्यालय से ही जाना करती थी। ब्रह्मचारी जन भी इसे जानते थे कि प्राण अपने में प्राणत्व कहलाता है। यह प्राण नाभि से ले करके, कण्ठ के भाग से होता हुआ, यह नासिका के द्वारा बाह्य-जगत् में जाता है, और बाह्य जगत् में जब प्रवेश करता है तो बाह्य जगत से पुनः यह मानो देखो, शुद्धिकरण करता हुआ प्राण-सखा को परमाणुवाद को यह ऊर्ध्वा देखो आन्तरिक जगत् में ले जाता है। बाह्य जगत् के परमाणु का आदान-प्रदान करने वाले को प्राण कहते हैं।

मानो संसार में बाह्य जगत् में या आंतरिक जगत् में जितना भी मानो देखें। ध्रुवा में गति कराने वाली वृत्तियाँ हैं, मानो वह अपान-प्राण की मानी गई हैं। चाहे जलाशय हो, चाहे वह मतवृता हो, कोई भी क्रियाकलाप हो जो दूर जाने वाला है, वह अपान का ही कार्य है। अपान को ही उसका श्रेय गया है। जब अपान और प्राण का दोनों का समन्वय हो जाता है, यह प्राण का नीचे सम्बन्ध अपान से हो जाता है। मानो देखो वह अपने अन्तर्हृदय और अन्तर्जगत् को दृष्टिपात् करने लगता है।

माता मदालसा के जब मानो देखो ज्येष्ठ पुत्र गर्भ में था तो वह उसे मानो देखो प्राण सखा के द्वारा मन की पुट लगा करके, उसकी

अन्तरात्मा में, अन्तर्हृदय में बेटा! दृष्टिपात् करने लगी। अन्तरात्मा से अन्तर्हृदय को प्रायः दृष्टिपात् किया जाता है, जहाँ वह शिशु पनप रहा है, जहाँ देवता मानो देखो, देवत्व को प्रदान कर रहे हैं, माता मदालसा अपने में शान्त मुद्रित हो करके उसको दृष्टिपात् करती। मेरे प्यारे! देखो उस काल में माता के हृदय में यह कामना रही कि "मेरे अन्तर्हृदय में, जो मानो गर्भाशय में शिशु पनप रहा है वह शिशु महान प्रबल और विचित्र होना चाहिए और मानो देखो और वह मेरे जीवन का साथी बनकर रहे, मेरे जीवन को ऊर्ध्वा गति देने वाला हो, मेरे जीवन को मानो देखो परमात्मा की वृत्तियों में रत रहना चाहिए।" ऐसी विचारधारा, बेटा! माता मदालसा की देवपूजा के सम्बन्ध में रही है।

मुझे ऐसा स्मरण है कि माता जब अन्तरात्मा को ऐसी वृतियों में रत करा देती है और जब वह बाल्य बाह्य जगत में आता है तो मानो देखो, बेटा! माता उसका पालन-पोषण करती हुई, जब लोरियों का पान कराती है, तो उसकी मनोनीत इच्छा यह होती है। माता प्रसन्न हो करके वेद-मन्त्रें का गुणगान गाते हुए वेद-ध्वनियों में, स्मृतियों में और उपनिषदों में रत होते हुए मानो देखो, बालक को जब वह अपना रस प्रदान करती है, उस रस में रस (वैदिक ज्ञान के) का समन्वय कर देती है, जिससे वह बाल्य, ब्रह्मवेत्ता बनने के लिए अग्रसर हो जाता है।

माता मदालसा की यह एक बड़ी विचित्र धारा रही है, जो इतनी ऊर्ध्वा में विचारधारा अन्य किसी माता ने नहीं दी। माता मदालसा

यह कहा करती थी-"कि मेरे गर्भ से उत्पन्न होने वाला बाल्य यदि संसार के रजोगुण-तमोगुण में ही लगा रहा तो मानो देखो मेरा गर्भाशय ऊँचा नहीं बनेगा। मेरा गर्भाशय उस काल में ऊँचा बनेगा, जब मेरा बाल्य ब्रह्मवेत्ता हो करके और मानो ब्रह्म-विद्या का प्रसार करने वाला हो। वह ज्ञान विज्ञान में उड़ान उड़ने वाला हो और वह परमात्मा के हृदय से अपने हृदय का समन्वय करने वाला हो। वह बाल्य मेरे अन्तरात्मा के भाव को ऊर्ध्वा गति करा सकता है।" यह माता मदालसा का मानो एक महान् विचार था।

देवपूजा का अभिप्रायः यह है कि वह 'देव पूजां ब्रह्मः' वह माता देवता है, जब बाल्य उसके अनुकूल कर्म करता है, माता की आज्ञा का पालन करता है, तो माता उसे आज्ञा देती है, जिस आज्ञा से उसका नामोकरण भी ऊर्ध्वा में हो और बाल्य अपनी स्थलियों में पवित्र होता रहे। मानो देखो माता मदालसा प्रायः देखो इस प्रकार का तप करती और अपने गर्भ की आत्मा को कहती रहती- "हे शरीर में आने वाली आत्मा! तू भी एक आत्मा है तू आत्माज्ञान में रत रहने वाला आत्मा है। हे आत्मा! तू सदैव अखण्डता में रत रहने वाला है तेरा ह्रास नहीं होता है। तू अन्धकार में नहीं है, तू सदैव प्रकाश में रहती है, प्रकाश से तेरा समन्वय रहता है। प्रकाश में प्रकाश का जब मिलन होता है तो हे आत्म्! तू आत्मवेत्ता बन करके प्रभु को प्राप्त करती है।"

मेरे प्यारे! देखो जब माता इस प्रकार का विचार अपनी लोरियों में, अपने गर्भाशय में ही प्रदान करा देती है, तो वह माता मानो

देवता कहलाती है। वह कैसी माता है? जो माता अपने पुत्र के निर्माण में उसे अपनी विचारधारा विचार देने में, मानो देखो अग्रणीय रही है, उसी विचार को देने वाली माता देवता कहलाती है। अब मानो देखो उसकी आज्ञा का पालन करना, उसकी आज्ञा में रत रहना, यही, बेटा! उस माता की प्रथम पूजा है। जो देव-पूजा में रत रहने वाली है।

मेरे प्यारे! देखो हमारे यहाँ सिद्धान्त वाले कहते हैं, विचारधारा वाले कहते हैं कि पाँच वर्ष तक बालक का जो भी माता निर्माण कर देती है, वह निर्माण न तो किसी विद्यालय में, विशाल से विशाल विद्यालय में यह शिक्षा प्राप्त नहीं होती। आचार्य भी उस शिक्षा को प्रदान नहीं कर सकता, जो माता अपनी अन्तरात्मा से अपने अन्तर्हृदय से उसे भरण कर देती है और उज्ज्वल बना देती है। मेरे प्यारे! देखो वह माता कैसी उज्ज्वल माता है! आज मैं उस माता को देवता के रूप में स्वीकार करता रहता हूँ।

माता के गर्भाशय में बाल्य हेता है, तो उसकी नौ माह की अवधि होती है, नौ माह तक माता के गर्भ में रहता है। बेटा! यह नौ माह तक क्यों रहता है? क्योंकि संसार की जितनी गणना है वह नौ तक कहलाती है। जितना भी यह संसार है, इसमें जितनी भी गणना करने लगो परन्तु गणना के केवल नौ तक कहलाती है। इसीलिए नौ माह में, मानव के शरीर का निर्माण होता है। मुनिवरों नौ की आत्मा को लेते हुए, मेरे प्यारे! देखो, इसमें जो भी क्रियाकलाप है वह माता के गर्भ में हो रहा है। जब मानव गणित तक जाता है तो नौ तक

गणना करता है, और नौ के पश्चात् मानो देखो आगे गणना नहीं रहती, इसी प्रकार परमपिता परमात्मा का कैसा नियम मानो कैसा उसका नृत्य हो रहा है! माता के गर्भस्थल में नौ माह तक बाल्य रहता है।

मेरे प्यारे! देखो नौ माह तक गर्भ में बाल्य का निर्माण होता है और उसी प्रकार मानो देखो निर्माणशाला में, 'ब्रह्मणे वृत्तम्', मेरे प्यारे! देखो ज्ञान और प्रयत्न, काल और दिशा, पंच महाभूत, ये नौ कृतियाँ कहलाती हैं, परन्तु देखो जब, 'वर्णनं ब्रह्मे', मेरे प्यारे! देखो, वह उसी में रत होता रहता है। माता तू इसके ऊपर भी तो विचार कर कि तेरे गर्भ में हम जैसे शिशु नौ माह तक ही क्यों पनपते रहे हैं? नौ माह तक क्यों पनपते हैं, क्योंकि नौ तक तो संसार की गणना है। जितनी भी गणना है, वह नौ तक कहलाती है। मानो देखो नौ प्रकार की धाराएं हैं और नौ ही मानो देखो सूर्य की रश्मियाँ भी हैं। कहीं-कहीं सात प्रकार की रश्मियाँ हैं, कहीं-कहीं नौ प्रकार की रश्मियों को स्वीकार किया है।

चन्द्रमा की भी मानो देखो नौ प्रकार की अमृतमयी धाराएं हैं। कहाँ किसको, कैसा अमृत देना है, कहाँ अमृत जा करके विष बनना है, वह विष भी उसके लिए अमृत है। संसार के लिए द्वितीय विष कहलाता है, परन्तु जहां विष जा रहा है, वहाँ उसके लिए, वह अमृत न रहा है। मेरे प्यारे! देखो यह चन्द्रमा अमृत भी देता है और कहीं-कहीं विष बनाता है, कहीं-कहीं अमृत बनाता है परन्तु उसके लिए अमृत भी विष कहलाता है और विष भी अमृत का रूप धारण

कर लेता है।

मेरे प्यारे! देखो बड़ी विचित्र रचना है मेरे देव की, मेरा देव कैसा वैज्ञानिक है! बेटा, जब उस विज्ञानवेत्ता के ऊपर विचार-विनिमय प्रारम्भ होता है, तो हृदय गद्गद् हो जाता है और हम यह कहा करते हैं, 'ब्रह्मणो वृतं देवाः' वह माता देवता कहलाती है, जो इस प्रकार का, मानो देखो नौ प्रकर की औषध प्रत्येक माह में, वह एक-एक औषध का पान करती है। कहीं देखो प्रारम्भ में बालक का रस परिपक्व बनता है, त्रिवर्धा में परिपक्व बनता है, उसके पश्चात् मानो देखो वही रस स्वतः निर्माण होने लगता है, परमात्मा के नियम के आधार पर परन्तु इन्द्रियों का निर्माण होने लगता है और इन्द्रिय में जो-जो ओजत्व तेजत्व जाना है उसका वृत्त अपने में ही स्वतः जाना प्ररम्भ हो जाता है। वेदाचार्य यह कहते हैं कि गर्भ काल में मानो देखो प्रत्येक माह का औषध इस प्रकार का है, जो माता को पान करना चाहिए। विचारों से आहार से पान करना चाहिए। माता यह चाहती है कि 'मेरे गर्भ में ब्रह्मवेत्ता का जन्म हो', तो उसी प्रकार का विचार उसी प्रकार का अन्न, उसी प्रकार का औषध होना चाहिए। यदि माता यह चाहती है, 'मेरे गर्भ से राष्ट्रवेत्ता का जन्म हो तो उसी प्रकार का औषध उसी प्रकार का मानो देखो अन्न होना चाहिए। बाह्य जगत में जो भी वायुमण्डल का क्रियाकलाप है वह माता के गर्भ में भी हो रहा है। मानो समुद्र में जल प्लावन आता है तो माता के गर्भ में भी जल प्लावन की प्रक्रिया हो जाती है। यदि समुद्र बड़वान अग्नि में प्रवेश करता है तो माता के गर्भ स्थल में जो जल है, समुद्र का

भाग है उसमें भी उसी अग्नि का प्रभाव होता है। 22 मार्च, 1988, हापुड़ (गाजियाबाद), दिव्य ज्ञान

९ मदालसा पुत्रां का वार्तालाप एवं उद्बोधन

मदालसा पुत्रों की महाराजा ज्ञानश्रुति से वार्ता

मुझे स्मरण है। एक समय महर्षि प्रव्हाण ऋषि महाराज, ज्ञानश्रुति राजा के यहाँ जा पहुँचे। महाराज ज्ञान स्वरूपी महान पवित्र राजा थे। उनका राष्ट्र भी बड़ा सतो गुणी था। जब महर्षि प्रव्हाण उनके यहाँ पहुँचे तो राजा ज्ञानश्रुति ने अपने आसन को त्याग दिया और कहा आइये ऋषिवर पधारिये। वह ऋषिवर विराजमान हो गये राजा ने कहा कहो भगवान्! आज बिना सूचना के आप जैसे महान् तपस्वियों का मेरे यहाँ कैसे आगमन हुआ है? मैं इस कारण को नहीं जान पाया हूँ। मेरे पुत्रों देखो महर्षि प्रव्हाण ने कहा हे प्रभु! मैं इसलिए आया हूँ। क्यांकि मैंने यह श्रवण किया है कि महाराज ज्ञानश्रुति का राष्ट्र बहुत पवित्र है। ऋषि मुनियों की एक सभा का आयोजन हिमालय की कन्दराओं में हुआ था और यह निश्चय किया गया है कि निर्णय करो कि महाराज ज्ञानश्रुति के यहाँ उनके राष्ट्र की प्रतिभा कितनी है? उसका राष्ट्र कितना महान है? मानो देखो उसको उसका निरीक्षण करके आओ। तो उनके आदेश से मैं तुम्हारे राष्ट्र को दृष्टिपात करने के लिये आया हूँ।

मेरे प्यारे महाराज! ज्ञानश्रुति ने कहा, ऋषिवर राष्ट्र के सम्बन्ध में क्या आप जानते हैं? उन्होंने कहा मैं क्या नहीं जानता, उन्होंने कहा

आप यह जानते हैं कि राष्ट्र का अध्वर्यु कौन है? उन्होंने कहा राष्ट्र का चरित्र ही राष्ट्र की अध्वर्यु कहलाता है। मेरे प्यारे राजा ने कहा हे प्रभु आप जानते हैं कि राष्ट्र का उद्गाता कौन है? उन्होंने कहा, हे राजन! राष्ट्र की जो बुद्धिमता है अर्थात् विवेकी पुरुष ही राष्ट्र के उद्गाता कहलाते हैं। ऋषि से राजा ने कहा कि आप जानते हैं कि राष्ट्र का पुरोहित कौन है? उन्होंने कहा राष्ट्र का पुरोहित वह कहलाता है जो राष्ट्र के लिए ऊर्ध्वा में विचार करता है। उसके उत्थान का चिन्तन करता है। राजा के राष्ट्र में अपने क्षत्रियों को अपने उपदेशामृतों से पवित्र बनाता है। अपने में स्वयं चरित्रवान ओजस्वी देखो वर्चोसि बन करके और राष्ट्र के पुरोहितपनों को ऊँचा बनाता है वह पुरोहित कहलाता है। महाराजा ज्ञान श्रुति ने कहा। प्रभु! आप ये जानते हैं कि राष्ट्र का यजमान कौन है? महर्षि प्रव्हाण ने कहा, "राजन राष्ट्र का मानो वह यजमान कहलाता जो राष्ट्र का मेधा बन करके रहता है। जो राष्ट्र को यज्ञशाला के रूप में स्वीकार करता है। जैसे यज्ञशाला में से सुगन्ध आ रही है उसकी तरगें अन्तरिक्ष को प्राप्त हो रही हैं। देवता सभी उस को पान कर रहे हैं। अन्तरिक्ष तरंगों को ऊँचा बना रहे हैं। मानो दूषित वातावरण को आहार कर रहे हैं। मानो देखो वही जो जैसे यज्ञ में यज्ञशाला की तरंगे अग्नि से उद्बुद्ध होकर के सुगन्धि युक्त हो करके अन्तरिक्ष के वातावरण को ऊँचा बनाती है। इसी प्रकार मानो देखो राष्ट्र की यज्ञशाला में वही यजमान होता है जो यज्ञशाला के आँगन को भव्य बनाने वाला है। विचारों से सुगन्धित बनाने वाला है। इनका जो शब्द है। वह

अन्तरिक्ष लोक मे स्मरण करता हुआ राष्ट्र को ऊँचा बनाता है। परन्तु राष्ट्र के राजा को ही मानो यजमान कहते हैं। जो अश्वमेध याग करता है। अश्वमेध याग कौन करता है? अश्वमेध याग वह राजा करता है। जो संसार को विजय कर लेता है। मेरे प्यारे जो संसार की आभा को जानने वाला बनता है, वहीं अग्रतम ब्रह्माः लोकम शुभम भक्ति ब्रह्माण लोकम ब्रह्मस्तुः रुद्र भावाम ब्रह्मणे लोकाम।

हे राजन! तुम्हारा जो राष्ट्र है वो यज्ञ की आभा में गति करने वाला है। तुम्हारे राष्ट्र में मानवीयता की धारा पवित्र होनी चाहिये, जिससे मानवीयता तुम्हारा राष्ट्र एक आभा में रमण करता हुआ मानो देखो ऊर्ध्वागति को प्राप्त होने वाला हो। हे राजन! मानो देखो यजमान के समीप विराजमान होने वाला जो अध्वर्यु है, जो गाथा गा रहा है। राष्ट्र की आभा में रमण कर रहा है। हे राजन! वह यजमान है। जो अश्वमेध याग करता है। अश्वमेध याग वह राजा करता है जो मानो देखो प्रजा को ऊँचा बनाना चाहता है। महान आभा में रमन करने वाला सुसज्जित बनाने वाला मानो देखो स्वर्णा में अस्वन गाथा में गान गाता है। मेरे प्यारे देखो ज्ञान श्रुति ने प्रव्हाण ऋषि की विद्वत्ता को जान लिया उनकी आभा को जान लिया और आभा को जान करके यह कहा, "समविता देवस्याम् समविताः रूद्रम भवाः समविता यज्ञम भवतेः समविता संभोगप्रवा लोका।"

प्रभु एक वाक्य और जानना चाहता हूँ आपसे कि इस राष्ट्र का प्राण कौन है? मेरे प्यारे देखो ऋषि कहता है कि राजा के राष्ट्र राजा का जो विज्ञान है यदि वह आध्यात्मिक है तो वहाँ महाप्राण की

कल्पना की जाती है और यदि वह भौतिकवादी है तो प्राण की कल्पना की जाती है। मानो एक प्राण है और एक महाप्राण है। क्योंकि देखो भौतिकवाद को जान करके तो देखो वैज्ञानिक वहाँ प्राण की कल्पना करता है और वो मुनिवरों देखो केवल विज्ञानमय तरंगों में रमण करने वाला एक परमाणु को दूसरे में पिरोने वाला है। यन्त्रें का निर्माण करने वाला है। वह मानो मेरे प्यारे जो सूर्य लोकों तक की यात्र करने वाला नाना लोकान्तरों में गति करने वाला वह वैज्ञानिक राष्ट्र का प्राण कहलाता है। मेरे पुत्रों जब राजा ज्ञानश्रुति ने यह वाक्य श्रवण कर लिया तो उस समय राजा ज्ञानश्रुति ने कहा ''मत्ते बह्मे वातस्वे।''

हे बालक, हे ऋषिवर तूने किस माता के गर्भ स्थल से जन्म लिया जो इतनी विद्या को तूने प्राप्त किया। मुनिवरों देखो माता के गर्भ से उत्पन्न होने वाला ब्रह्मचारी माता की गाथा गा रहा है राजा कह रहा है कि ममत्व को धारण करने वाले, तू माता का वर्णन कर रहा है, मेरे प्यारे देखो, ब्रह्मवेत्ता पुत्र माता की गाथा गाने वाला है। उसके द्वारा माता का ही उद्गीत गाया जा रहा था तो मुनिवरों देखो वेद का ऋषि कहता है। जैसे मानो देखो यह पृथ्वी ब्रह्माण्ड की गाथा गा रही है। इसी प्रकार मुनिवरों देखो पुत्र माता की गाथा गा रहा है। माता का वर्णन कर रहा है। माता का वह पुत्र पूर्णता को प्राप्त हो रहा है। मेरे पुत्रों देखो वह बालक महान है। मानो देखो राजा ज्ञानश्रुति और देखो ऋषि प्रव्हाण दोनें का विचार विनमय होता रहा मेरे प्यारे देखो महर्षि प्रव्हाण शिलक और दालभ्य माता मदालसा के

पुत्र कहलाते थे परन्तु देखो वह प्रव्हा ब्रेह्मे सुतोहो।

मेरे प्यारे देखो ऋषि चर्चा करने लगे प्रव्हाण कहते हैं कि महाराज आप तो धन्य है। आपका राष्ट्र मानो देखो मुझे विचित्र प्रतीत हो रहा है परन्तु अब ऋषि प्रव्हाण प्रश्न करते हैं। ऋषि कहते हैं, राजा ज्ञानश्रुति तुम्हारे राष्ट्र का पालन कर्त्ता कौन है? राजा ने कहा, "राष्ट्र का पालन तो चैतन्य देव किया करते हैं। मानो कहीं ब्रह्मवेत्ता भी राष्ट्र का पालन करते हैं। मुझे तो मानो देखो बुद्धिमान समाज ने, ब्राह्मण समाज ने मानो जो ब्रह्म की उड़ान उड़ने वाले निष्पद्द ब्राह्मण होते हैं। उन गुरुओं ने मुझे चुनौती प्रदान की है और यह कहा है कि तुम सब पुरुषों में विशिष्ट हो मानो तुम देखे नियम से इस प्रजा का पालन करो। मैं तो केवल अपने स्वतः नियम का पालन करता हूँ। अब उस नियम की ओर चलने वाला ये समाज है। जैसा माता पिता गृह में करते हैं, माता-पिताओं का जो भी क्रिया कलाप होता है। जो भी उनका कर्म होता है। मानो देखो उसी के आधार पर बाल्य बालिका गृह में क्रिया कलाप करना प्रारम्भ कर देते हैं। यदि माता-पिता चरित्रवान है तो बालक भी चरित्रवान बन जाते हैं। माता-पिता यदि मानो संयमी है तो देखो गृह में बालक भी संयमी बन जाते हैं और जैसे माता-पिता मानो उद्दण्ड हैं तो बालक भी उसी प्रकार का क्रिया कलाप प्रारम्भ करने लगते हैं। मानो देखो माता-पिता बुद्धिमान है। दर्शनों का अध्ययन करते हैं। गृह में दर्शनों का चलन होता है तो बालक भी उसी प्रकार बर्तने लगते हैं। उसी प्रकार की तरंगों में सम्मिलित होने लगते हैं। इसी प्रकार मेरे पुत्रों देखो ऋषि से राजा

कहता है कि हे प्रभु मैं राष्ट्र का पालन नहीं कर रहा हूँ। मैं स्वतः अपने जीवन का अध्ययन करता हूँ और अध्ययन करके मुझे मानो पांडित्य की दृष्टि से घोषित किया गया है कि तू राजा है, प्रजा का निधि पति है। जो मैं क्रिया कलाप करता हूँ प्रजा मेरे अनुसार बर्तती रहती है। यही मेरा कर्त्तव्य है यदि ऊँचा कार्यक्रम मेरे जीवन में रहेगा तो प्रजा भी उसी प्रकार बर्तने वाली बनेगी। मेरे पुत्रों देखो जब यह वाक्य ऋषि को राजा ज्ञानश्रुति ने वर्णन कराया तो ऋषि मौन हो गये परन्तु देखो अब पुनः ऋषि प्रव्हाणा कहते हैं, हे राजन! तुम राजा इस प्रजा को मान तुम कैसे उद्बुद्ध करते हो, कैसे इस प्रजा का उत्थान करते हो? मेरे प्यारे देखो राजा ने कहा हे प्रभु! ऋषिवर। मैं अपने जीवन में मानो देखो स्वयं अपने जीवन का उत्थान करना जानता हूँ। जब अपने जीवन का उत्थान करता हूँ तो प्रजा का जीवन स्वतः मानो देखो ऊर्ध्वा में गति करने लगता है। उसका जीवन उत्थानमय बन जाता है। मेरे प्यारे देखो ऋषि ने पुनः यह प्रश्न किया कि महाराज तुम इस प्रजा की रक्षा कैसे करते हो? राजा ने कहा हे भगवन्! ऋषिवर मेरी जो यह पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ है। मैं मानो अपनी इन्द्रियों पर साम्राज्य करता हूँ। पाँच कर्मेन्द्रियाँ है, जो मानो देखो इन्द्रियों के ऊपर शासन कर लेता है। वह जनक कहलाता है और जो अपने पर शासन कर लेता है तो प्रजा की तो मानो देखो रक्षा मानो स्वतः हो गयी, वह उसके अनुकूल बरतने वाली बन जाती है। मेरे प्यारे देखो ऋषि प्रसन्न हो गये। उन्होंने पुनः यह प्रश्न किया है कि हे राजन्! तुम इस प्रजा को अग्रणी कैसे बनाते हो? उन्होंने कहा प्रभु

सूर्य है, यह सूर्य प्रातःकाल में उदय होता है। प्रकाश को ले करके आता है और प्रकाश को लेकर के जब गति करता है तो मानो अन्धकार स्वतः समाप्त होता चला जाता है। रात्रि इसके गर्भ में परिणत हो जाती है। इसीलिए प्रजा और राजा दोनों मानो देखो अपने में संलग्न हो करके क्रिया कलाप प्रारम्भ कर देते हैं तो मानो देखो प्रजा का जो आलस्य और प्रमाद है वह नष्ट हो जाता है। विवेकी और प्रकाशित कर्म करते हुए राष्ट्र को प्रकाश में ले जाते हैं। तो मेरे प्यारे जब राजा ने ये वृतियाँ प्रकट की तो ऋषि ने कहा धन्य हैं। राजन तुम वास्तव में वीरत्व को प्राप्त होने वाले हो। तुम तो वास्तव में जनक हो। जनक उसी को कहते हैं जो अपने को जान लेता है। जैसे इस शरीर में मेरे पुत्रों आत्मा चेतन बना हुआ है। वह इस शरीर का राजा है। चेतनावत है उसी के कारण इन्द्रियाँ गति कर रही हैं। महाराजा ज्ञानश्रुति ने कहा हे ऋषिवर! प्रव्हाण आप तो जानते ही हो कि उपनिषद् में कथा हैं कि एक समय मानव की देखो इन्द्रियों में विवाद हो गया अर्थात् इन्द्रियों और प्राणों में भयंकर विवाद हुआ और वह विवाद इतना पराकाष्ठा पर चला गया कि मानो देखो वे आपस में ईर्ष्या करने लगे और जब ईर्ष्या द्वेष की घृणा बलवती हो गयी तो मुनिवरों देखो इन्द्रियों की एक सभा हुई, उनमें यह हुआ कि मैं बलवती हूँ मैं बलवती हूँ, मैं बलवती हूँ। मेरे प्यारे देखो। उनसे यह विवाद हुआ तो प्यारे सबकी मध्यस्था प्राण करने लगे तो उन्होंने कहा समझाओ तुम कैसे बड़े हो? मुनिवरां! चक्षु ने कहा हम इसलिये बड़े हैं क्योंकि हमारे नहीं रहने से यह शरीर नहीं

रहेगा। उन्होंने कहा तो तुम चले जाओ वह एक वर्ष के लिये मेरे प्यारे देखो नेत्र चले गये, मानो देखो शरीर नेत्रें से हीन रहा परन्तु फिर भी शरीर जीवित रहा, मेरे प्यारे श्रोत्रें से कहा तुम कैसे बलवती हो? वह बोले इसलिये अग्रणी हैं, क्योंकि हमारे चले जाने पर यह शरीर नहीं रहेगा। उन्होंने कहा तुम भी चले जाओ एक वर्ष के लिये श्रोत्र चले गये परन्तु देखो मानो शरीर अपने में क्रिया कलाप करता रहा, मेरे प्यारे देखो आत्मा ने कहा चक्षु श्रोत्र आ जाओ तुम आश्चर्य करो वो उसका अभिमान नष्ट हो गया। मेरे प्यारे देखो घ्राण ने कहा मानो मैं बलवती हूँ। अब घ्राण भी चला गया इसी प्रकार मेरे प्यारे रसना भी चली गयी, मानो देखो रसना के न रहते हुये भी शरीर जीवित रहा। मेरे प्यारे मन चला गया। निकल्पना बन गया परन्तु जीवित रहा। जब सब इन्द्रियों की परीक्षा हो गयी और उनका अभिमान समाप्त हो गया तो मेरे प्यारे अब प्राण कहता है। मैं रहा माना, सतो गुण अन्न को पान करके मैं राष्ट्र की सेवा और राष्ट्र का कार्य कलाप करता हूँ, मानो नित्यकर्म करता हूँ। जिससे मेरा राष्ट्र ऊर्ध्वा में गति करता रहता है। मेरे प्यारे देखो महाराजा ज्ञानश्रुति ने जब यह वाक्य प्रकट किया तो महर्षि प्रव्हाण ने कहा धन्य है। हे ऋषिवर तुम्हारा राष्ट्र मुझे बहुत प्रियतम लगा मानो तुम्हारे नाम का मैं उच्चारण श्रवण करता रहा कि तुम्हारा राष्ट्र तो मुझे बहुत प्रियता में दृष्टिपात आ रहा है। मेरे प्यारे देखो उन्होने राष्ट्र में भ्रमण किया प्रातःकालीन महाराज ज्ञानश्रुति और मुनिवरों प्रव्हाण दोनों देखो ऋषिवर जब राष्ट्र में प्रातःकालीन भ्रमण करने लगे बेटा प्रत्येक गृह

में से सुगन्धि आ रही थी? प्रत्येक गृह सुगन्धित बना हुआ तो उन्होंने देखा मानो देखे प्रत्येक गृह में प्रातःकालीन वेद पूजा हो रही थी। मानो देखो उससे पूर्व ब्रह्म मुहूर्त में, देखो सूर्य उदय होने से पूर्व जब उन्होंने भ्रमण किया तो देखा प्रत्येक गृह से वैदिक ध्वनि का प्रसार हो रहा है। मानो देखो विवेकी पुरुष विवेक में गान गा रहे हैं। प्रत्येक माता अपना गान गा रही है। वैदिक ध्वनियों के द्वारा गृह को पवित्र बनाया जा रहा है। मानो देखो उन गृहों में से शब्दों की जो ध्वनियाँ मानो ध्वनित हो रही थीं, उससे ये वायु मण्डल बेटा, राष्ट्र की प्रतिभा की महानता का जन्म होता रहता था। विचार-विनिमय क्या राजा ज्ञान श्रुति ने प्रव्हाण ऋषि से पूछा कहो भगवन मेरा राष्ट्र आपको कैसा लगा? उन्होंने कहा ऋषिवर तुम्हारा राष्ट्र बहुत प्रिय है।

परन्तु उस माता को धन्य है जिस माता के गर्भ स्थल से तुम्हारा जन्म हुआ। बेटा उच्चारण करने का अभिप्राय यह, मेरे प्यारे महाराजा ज्ञानश्रुति और प्रव्हाण अपने आसन को चले गये। ऋषियों ने घोषणा कर दी कि महाराज ज्ञानश्रुति की परीक्षा लेना व्यर्थ है। वह महान और पवित्र है। (5 नवम्बर, 1982, रासना (मुजज्फरनगर)

मदालसा पुत्रों का ऋषिसभा में उद्बोध

पृथ्वी की नाभियज्ञ

मुझे स्मरण आता है। एक समय बेटा! महर्षि प्रव्हाण ऋषि के आश्रम में एक सभा हुई थी। उस सभा में महर्षि शिलक और महर्षि दालभ्य, महर्षि रैवक, महर्षि शाण्डिल्य और महर्षि मुदगल, महर्षि

जमदग्नि, महर्षि सुकेता, ब्रह्मचारी कवन्धि, यज्ञकेतु, यज्ञः, महर्षि पनपेतु, महर्षि विभाण्डक आदि ऋषियों का एक समूह एकत्र था, जिसमें महर्षि दधीचि भी विद्यमान थे। महर्षि दालभ्य, शिलक, प्रव्हाण तीनों ऋषि जो एक पंक्ति में विद्यमान थे और एक पंक्ति में महर्षि अङ्गिरस और ब्रह्मचारी कवन्धि और भी नाना ऋषि थे। तब वहाँ यह प्रश्न उत्पन्न होने लगा कि इस पृथ्वी की नाभि क्या है? पृथ्वी की नाभि के ऊपर प्रश्न आ गया।

मुनिवरों! देखो, उन्होंने कहा- कि पृथ्वी की नाभि शकुन्तका है। विचार आया शकुन्तका क्या है? यह वेदमन्त्र का एक शब्द, एक आख्यायिका है। शकुन्तका कहते हैं पृथ्वी के मध्य को, शकुन्तका कहते हैं यज्ञवेदी को, शकुन्तका लक्ष्मी को भी कहते हैं। परन्तु इसके और भी नाना पर्यायवाची शब्द हैं और शकुन्तका नाम प्रकृति को भी कहते हैं, तो वेद में बहुत से पर्यायवाची शब्द आते हैं परन्तु यहाँ यह विचार आया कि शकुन्तका नाम यज्ञवेदी है, जिस यज्ञवेदी पर यजमान विद्यमान हो करके याग करता है और उसमें स्वाहा देता है तो होताजन भी स्वाहा देते हैं। अध्वर्यु, उद्गाता इत्यादि यज्ञवेदी के समीप विद्यमान हो करके साकल्य की आहुति देते हैं। इसी प्रकार यह सप्त होता है जो शकुन्तका को सजातीय बनाते हैं, नाभि को ऊँचा बनाते हैं। नाभि यज्ञवेदी को कहा गया है। परन्तु देखो, विचार आता है कि यज्ञवेदी नाम शकुन्तका का है जिससे एक यजमान के चित्र और शब्द का विमान बन करके द्यु-लोक को चला जाता है। वह इस प्रकार की आभा बन करके अन्तरिक्ष में गति करने लगते है।

मुनविरां! देखो, यहाँ वेद का ऋषि यह कहता है, मन्त्र यह कहता है, इस पृथ्वी की जो नाभि है वह यज्ञवेदी है। जैसे यज्ञवेदी पृथ्वी की नाभि है। इसी प्रकार मानव के शरीर में ये जो नाभि हैं। इस मानव शरीर की यज्ञवेदी है। इस शरीर में पंच-प्राण होता हैं, वे होता साकल्य ला ला करके नाभि को परिणत करते हैं और यह कहते हैं कि हे नाभि! तू हमारा केन्द्र है, तू शकुन्तका है। नाना साकल्य होते हैं और नाभि के द्वार पर वे स्थिर हो जाते हैं। जैसे पहिए में नाना प्रकार के आरे लगे रहते हैं वह चक्र बन जाता है। इसी प्रकार सूर्य से नाना प्रकार की किरणें आती हैं। कोई पृथ्वी से, सूर्य से उर्ध्वा में गमन करती है, कोई मंगल के गमन करती जाती है, कोई चन्द्रमा से आती है परन्तु वह नाभि में स्थिति है, एक नाभि में से नाना प्रकार की किरणें चलती हैं।

इसी प्रकार हमारे इस शरीर में नाभि केन्द्र हैं। उस नाभि से नाना प्रकार की धाराएँ चला करती हैं। इस पृथ्वी से इनका सम्बन्ध होता है। इसमें नाना प्रकार की नाड़ियाँ हैं और वे जो नाड़ियाँ है, वहाँ एक यन्त्र लगा हुआ है इस नाभि केन्द्र में जो नाना प्रकार की धातुओं का निर्माण करता रहता है और वह निर्माण किससे करता है? वह जो स्वाहा हेता है, वह जो नाना प्रकार के साकल्य को ला करके नाभि को, यज्ञ-वेदी को अर्पित कर देते हैं, यज्ञ वेदी में स्वाहा कर देते हैं शकुन्तका को। 6 अगस्त, 1985, अमृतसर, (पंच माहयज्ञ)

पितृ कौन

बहुत पुरातन काल में महर्षि प्रव्हाण, शिलक और दालभ्य इन तीन ऋषि मुनियों का एक समूह विद्यमान होकर विचार करने लगा। उन्होंने सर्वप्रथम देवपूजन किया इसके पश्चात् वह विचार करने लगे कि यह पितृ कौन है? इसमें महर्षि लोमश, महर्षि वशिष्ठ, महर्षि कागभुषण्ड जी, महर्षि जमदग्नि, महर्षि विश्वामित्र, महर्षि पिप्पलाद, महर्षि रेणकेतु, महर्षि सोमकेतु, महर्षि भारद्वाज, महर्षि व्रतकेतु, गाड़ीवान रैवक महाराज, महर्षि स्वाति, महर्षि श्वेताश्वेतर और सोमवृत्तिका तथा ब्रह्मचारियों में ब्रह्मचारी कवन्धि, सुकेता, यज्ञदत्त और रोहणीकेतु एकत्र थे।

प्रव्हाण, शिलक और दालभ्य का आध्यात्मक चिन्तन पर जन्मसिद्ध अधिकार था। वे ब्रह्म की उड़ान उड़ते रहते थे। मेरे प्यारे! देखो, माता ने पाँच वर्ष की आयु में ही इनको ब्रह्मवेत्ता की उपाधि प्रदान कर दी थी। यह तो ऐसे महान ब्रह्मवेत्ता थे।

महर्षि प्रव्हाण ने ऋषि मुनियों से यह प्रश्न किया कि हे ब्रह्मवेत्ताओं, आज हम सब इसलिए विद्यमान हैं कि यहाँ हम कुछ विचार विनिमय करें और आगे आने वाला जो समाज है उसको कुछ दे जाएं, क्यों कि हम सब तपस्वी हैं, अनुष्ठानवेता हैं। आयु को दीर्घ बनाने वाले ब्रह्मवेत्ता हैं। हम ब्रह्म की आभा में सदैव रत हो चिन्तन करते हैं। हम यह विचारना चाहते हैं कि यह सभी पितृ कौन हैं?

महर्षि कागभुषण्ड जी उपस्थित हुए और उन्होंने कहा कि मेरे विचार में तो यह आता है कि जो भी हमें देते रहते हैं वह पितृ

कहलाते हैं। पिलाद मुनि ने कहा कि ऋषिवर इसकी विवेचना क्या है? हमें देने वाले तो सर्वत्र ही देते रहते हैं। वह सभी पितृ कहलाते हैं।

इतने में पिलाद मुनि ने कहा कि ऋषिवर इसकी विवेचना है, हमें देने वाले तो सर्वत्र ही देते हैं। जब हम विज्ञान में अपने को ले जाते हैं तो सर्वत्र संसार ही हमें पितृ की दृष्टि से दृष्टिपात आता है क्योंकि वह हमें देते हैं। मानव शरीर की रचना ऐसी है कि उसका ब्रह्माण्ड से समन्वय रहता है और जितना भी लोक-लोकान्तरवाद है वह सर्वत्र हमें कुछ न कुछ देते हैं। माता के गर्भ स्थल में जब शिशु हेता है उनमें प्रत्येक माह में लोक लोकान्तरो से आवश्यकता के अनुसार अनुपम धारायें प्रवेश हेती रहती हैं। माता के समीप जब मैं पहुँचता हूँ तो पाता हूँ कि वह मात्र अन्न से गर्भ शिशु की रक्षा नहीं करती वह अपने विचारों से सबसे ऊर्ध्वा में उसकी रक्षा करती है।

विज्ञान में जाने पर तो यह सर्वत्र संसार की हमें पितृ की दृष्टि से दृष्टिपात आता है, क्योंकि वह भी हमें देते हैं। देने का अभिप्रायः यह है कि हमारे मानव शरीर की रचना ऐसी है कि उसका सदैव ही ब्रह्माण्ड से समन्वय रहता है। जितना भी लोक-लोकान्तरवाद है, वह सदैव हमें कुछ-न-कुछ देता रहता है। पिप्पलाद मुनि ने आगे व्याख्या करके कहा कि एक समय मेरे हृदय में यह विवेचना आयी कि माता के गर्भ स्थल में जो शिशु होता है उस शिशु के सन्दर्भ में विचारा जाये कि उसके कौन-कौन पितृ हैं? प्रत्येक माह में प्रत्येक लोक-लोकान्तरों की अनुपम आवश्यकता के अनुसार उसमें धारायें प्रवेश

होती रहती हैं। धाराओं के रूपों का वर्णन करते हुए कहा कि माता के गर्भ स्थल में जब शिशु अष्टमाह में होता है तो दो मण्डल जिन्हें अरुन्धति और वशिष्ठ कहते हैं, उन दोनों मण्डलों की धीमी छाया माता के गर्भ से आती है, जिससे प्रकाश की आभा उसे प्राप्त होती है। उस काल में वे उसके पितृ कहलाते हैं। पिप्पलाद जी ने कहा कि हम तो केवल यह स्वीकार करते हैं कि माता-पिता के सन्निधान मात्र से ही शिशु का गर्भ में प्रवेश हुआ है इसलिए वह माता-पिता भी पितृ कहलाते हैं?

प्रव्हाण ऋषि ने कहा कि प्रश्न यह है कि पितृ याग करना है तो वह पितृ याग कौन सा होता है?

महर्षि लोमश ने कहा कि हमारे यहाँ दो प्रकार के पितृ कहलाते हैं। एक पितृ वह जो चेतन्यता में रहते हैं और दूसरे वह जो जड़वत् में रहते हैं। वैसे तो पितृ के रूप में सर्वत्र ब्रह्माण्ड है। पितृ का अभिप्रायः केवल एक ही है कि जो रक्षा करने वाला है जो रक्षक है। लौकिकता में माता इसलिए पितृ है क्योंकि उसके गर्भ स्थल में शिशु विद्यमान रहता है और पिता इसलिए पितृ क्योंकि उनके सान्निध्य से शिशुओं में आवृत्तों का उदय हो जाता है।

माता पितृ क्यों कहलाती है? क्योंकि माता रक्षा करती है। माता अपने गर्भ से लेकर के पाँच वर्ष तक की आयु तक बालक को ऊँचा बना देती है। जो माता गंभीर होती है और यह कहती है कि मैं पिता हूँ, मुझे रक्षा करना बहुत अनिवार्य है। माता केवल अन्न से रक्षा नहीं कर सकती, अपने विचारों की जो रक्षा है वह सबसे ऊर्ध्वा में है, वह

ऊर्ध्वा में रत्ता कहलाती है। महर्षि लोमश ने कहा कि जब मैं माता के आंगन में क्रीड़ा करता था तो माता मुझे ब्रह्मज्ञान की आभा में परिणत कराती रहती थी। मैंने ऐसा श्रवण किया है। माता की लोरियों का तो मुझे स्मरण नहीं है परन्तु उसके पश्चात के काल में जब-जब माता अपने आंगन में प्रवेश कराती तो भोज्य कराती रहती। तन्दुलों का भोज्य करा करके गौ घृत के द्वारा मुझे प्रारम्भ में जब अन्नादि को प्रदान किया तो कहती थी कि वह जो प्रथम ग्रास है वह तेरे ब्रह्मज्ञान का है, तू ब्रह्मज्ञानी बनना। परन्तु द्वितीय जो ग्रास प्रदान किया गया वह प्राण के लिए किया। कि तू प्राण को जानने वाला बन। तृतीय जो ग्रास प्रदान कराया तो कहा, तेरा जो मन है वह पवित्र हो जाए। तो माता तीन ग्रास देकर कहती है हे बालक तू ब्रह्मवेत्ता बन, प्राण की प्रक्रिया को जान और यह तो मन है इसकी आभा में ऊर्ध्वा में ले जा। वह मेरी प्यारी माता भी है पितृ भी है। वह पितृ क्या चाहता है कि मेरे द्वार से उत्पन्न होने वाला ब्रह्मचारी ब्रह्मवेत्ता बन जाए, प्राणों का निदान करने लगे। यह मन प्रकृति का तन्तु है। यह अन्नाद में निहित रहता है। इस लिए विचारा कि मानव समाज को ऊंचा बनाने के लिए, हमें पितृयागी बनने के लिए, हमें अन्न को पवित्र बनाना है। अन्न माता की भावना से पवित्र होता है और उस अन्न को जब पान किया जाता है तो मन में विशुद्ध तरंगों का जन्म होता है। यदि माता यह चाहती है कि मेरे गर्भ से ऊर्ध्वा में एक राजकुमार का जन्म हो जो राष्ट्र को ऊँचा बनाने वाला हो तो माता उसी प्रकार के विचार प्रदान कर देती है। लोमश मुनि ने कहा

कि माता ने मुझे ब्रह्मवेत्ता की शिक्षा दी और यह कहा कि ब्रह्म को जानने वाला ही महान बनता है। हम माता के समीप विद्यमान हों, वह हमारी पितृ है हमें उसकी सेवा करनी है। हमें पितृ यागी बनना है। याग का अभिप्राय यह कि हम पवित्र अन्न को उन्हें ग्रहण कराते रहें और उनकी सेवा में सदैव ही रत रहें।

हमारे जो पूर्वज हैं वह भी पितृ कहलाते हैं। उनके सुन्दर-सुन्दर आशीर्वाद उनके सुविचारों को जब हम ग्रहण करेंगे तो उनके विचारें की शुभ विचारधारा हमारे अन्तःकरण में प्रवेश होगी। वह प्रकाशित हो सुआभा में परिणत होती रहेगी। ब्रह्मचारी आचार्य को पितृ कहता है क्योंकि वह आचार्य लौकिकवाद में ब्रह्मचारी को ले जाते हैं। लौकिकवाद में सर्व प्रथम लोकाचरण शिक्षा का प्रारम्भ वह इसी माध्यम से होता है। 4 अगस्त, 1985, अमृतसर, (पंचमहायज्ञ)

महर्षि दालभ्य ऋषि ने यह कहा कि मेरे विचार में तो यह आता है कि पितर उन्हें कहते हें जो हमें देते हैं। मानो पितरश्चम् ”वेदप्राम् लोकाः“ पितर उन्हें कहते हैं, जो देवता बनते हैं। उसमें आचार्य भी पितर रूप में है। मेरे प्यारे! महर्षि दालभ्य मुनि महाराज के प्रवचन जैसे ही समाप्त हुए, वहाँ ब्रह्मचारी सुकेता और ब्रह्मचारी रेणु केतु दोनों ने एक स्वर में कहा कि हमारे विचार में तो यह आता है कि यह जो सर्वत्र जगत है यह पितर मण्डल कहलाता है। जहाँ पितर मण्डल की चर्चायें आयीं इन्होंने कहा परमात्मा का नाम पितर हैं। सूर्य, चन्द्रमा इत्यादि लोक लोकान्तर सभी हमारे पितर हैं। इसलिए यह सर्व ब्रह्माण्ड एक पितरों का बन गया। परन्तु इसमें दो वाक्य

आते हैं एक में लौकिकता आती है एक में पारलौकिकता आती है। मेरे प्यारे! लौकिकता उसे कहते हैं जहाँ लोक की चर्चाएं हों। पारलौकिक उसे कहते हैं जहाँ परलोक की चर्चाएं हों। इसमें आध्यात्मिक और परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन आता है। मेरे पुत्रों देखो उन्होंने लौकिकता के पितरों का वर्णन किया कि लौकिकता में हमारे यहाँ राजा को भी पितर कहते हैं। पिता, पितर है, पितामह भी पितर हैं, आचार्य भी पितर हैं, माता भी पितर कहलाती है देखो ऋषि मुनि भी पितर कहलाते हैं। सूर्य भी पितर है, चन्द्रमा भी पितर है। मेरे पुत्रों! देखो, उन्होंने पितरों की भिन्न-भिन्न प्रकार से विवेचना की।

कौन सा राजा पितर कहलाता है? मेरे प्यारे! देखो समाज को कर्त्तव्यवाद में ले जाने वाला जो राजा होता है वह समाज का पितर कहलाता है और जो राजा बनकर स्वार्थवादी बन जाता है, आलसी और प्रमादी बन जाता है मुनिवरों! देखो, वह पितर नहीं होता। उसे कोई पितर नहीं कह सकता यह वैदिक साहित्य में आता है। एक पितर वह भी होता है जिसके आंगन में मानव पनपता रहता है। सबसे प्रथम माता पितर कहलाती है। कौन सी माता पितर है? जो माता अपने गर्भ स्थल में अपने बालक का निर्माण करना जानती है। मेरे प्यारे जो विदुषी है, जिसे ज्ञान होता है। जब ज्ञान होता है तो उसे अधिकार भी होता है। 8 जुलाई, 1978, अमृतसर, पुष्प-35

एक समय महाराजा अश्वपति के यहाँ ब्रह्मवेत्ताओं का एक समाज एकत्र हुआ। महाराजा अश्वपति ने अपने मन्त्रियों सहित विद्यमान हो करके सभा का नेतृत्व किया और यह कहा कि हे

ब्रह्मवेत्ताओ! अश्वमेध याग किसे कहते हैं? मैं अश्वमेध याग को जानने के लिये उपस्थित हुआ हूँ। यह सुनकर ब्रह्मवेताओं में एक प्रकार की क्रान्ति सी आयी। महर्षि जालवी ने कहा कि हे प्रभु! हे राजन्! हे अश्वपति! जिस राजा से सब प्रसन्न रहने वाले हां, जिसकी प्रजा में प्रसन्नता हो और वह प्रजा राजा का गुणगान गाने वाली हां। वह राजा अश्वमेध यागी बन सकता है। जिस राष्ट्र में ज्ञान-विज्ञान और कर्मकाण्ड से प्रत्येक मानव अलंकृत हो तो ऐसा राजा अश्व है और प्रजा मेध है। जहाँ प्रजा मेध और राजा अश्व, दोनों ऊर्ध्वा में जाते हैं वह राजा अश्वपति है। मेरे प्यारे! जब ऋषि ने इस प्रकार अपना उद्गीत गया तो राजा ने पुनः प्रश्न किया कि मैं अश्वमेध याग करना चाहता हूँ। परन्तु अश्वमेध याग किसे कहते हैं? मेरे पुत्रों! उस सभा में महर्षि प्रव्हाण जी उपस्थित हुए और उन्होंने कहा कि हे राजन्। मेरे विचार में तो यह आता है कि मानो मेध नाम यहाँ ज्ञान को कहा जाता है और अश्व नाम आत्मा का कहा जाता है। जब आत्मा, मन और मस्तिष्क ज्ञान में रत हो तो वह अश्वमेध यागी बनते हैं। तुम इसलिए अश्वमेध यागी बनना चाहते हो कि जिससे तुम्हारे राष्ट्र में एक महानता का प्रतिपादन हो, जिससे राष्ट्र अपने में महानता को प्राप्त हो। उनके उद्गीत गाने पर महाराजा अश्वपति ने कहा कि प्रभु! अश्व के हमारे यहाँ नाना पर्यायवाची हैं? यहाँ कि अश्व नाम घोड़े का, राजा का, आत्मा का है। अश्व नाम परम पिता परमात्मा का है, सूर्य का है, चन्द्रमा का है और अश्वनाम वायु को भी कहा जाता है। यह संसार उसी में गतिशील होता है। गतिशील होने का नाम अश्व कहा

जाता है और गति करने वाली वृत्ति का नाम मेध कहा जाता है। 27 मार्च, 1992, ग्राम करनावल (मेरठ), (मोक्ष प्राप्ति का मार्ग)

१० योग साधना एवं आत्म-विज्ञान

आध्यात्मिक याग पर चर्चा

आज हम आये हैं कुछ वैदिक सम्पदा पर विचार-विनिमय करने के लिये। वैदिक सम्पदा क्या है? वैदिकता क्या है? इसके ऊपर हमें विचार-विनिमय करना है। वैदिकता कहती है कि मानव का अन्तरात्मा जब लोकों में विचारने लगता है, तो जैसे मानव के शरीर में मस्तिष्क होता है और उस मस्तिष्क में भी ब्रह्मरन्ध्र हेता है, यह इस शरीर रूपी यज्ञशाला का द्यौ कहलाता है। यहाँ हृदय की प्रतिभा भी मानी गई है। जब साधक उसका अनुमोदन करने लगता है, उनको जानने के पश्चात् द्यौ-लोक में ऐसी सुन्दर आभा विराजमान रहती है, जिस आभा को जानने के पश्चात् मानव का जीवन ऐसा नहीं रह पाता, जिसको मानव नहीं जानता। आध्यात्मिक यागी, बेटा! हृदय रूपी वेदी में याग करता है। यह कैसा सुन्दर यज्ञ है? द्यौ-लोक के मानव को कितनी सम्पदा होती है कितनी सुगन्ध को प्राप्त करने के पश्चात मानव का जीवन सुगन्धिमय हो जाता है। वह स्वयं सुगन्धित बन जाता है। महर्षि दालभ्य, महर्षि शिलक और महर्षि प्रव्हाण शरीर रूपी यज्ञ पर यह तीनों ही मदालसा माता के पुत्र थे। तीनों का जीवन संसार में अग्रणी रहता था।

इन्द्रियाँ प्राण में ओतप्रोत

महर्षि प्रव्हाण से एक समय महर्षि शिलक ने कहा कि महाराज! इस हमारे मानव शरीर में पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं और पाँच कर्मेन्द्रियाँ कहलाती हैं। दस प्राण कहलाते हैं मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार। यह सब किसमें ओतप्रोत रहते हैं। उस समय महर्षि प्रव्हाण ने उत्तर देते हुए कहा 'श्मअवृत्तम् प्राणः' वेद ऋषि कहता है कि यह सब प्राण में ओत प्रोत रहते हैं। क्योंकि प्राण ही गति कर रहा है। "अन्नादम् भूतम् प्रव्हेः लोकाः" अन्न आदि उस प्राण का भोज्य बन रहा है। प्राण भोक्ता बन करके उसको भोग रहा है। मुनिवरों! देखो, यह ज्ञानेन्द्रियों के विषय अपने में अपने को ही बरतते रहते हैं। 28 सितम्बर, 1989, लाक्षागृह वरनावा, पुष्प-35

प्राणों का बिछौना जल

आचार्य कहता है कि इस प्राण का बिछौना क्या है? तो ऋषि ने उत्तर दिया है कि प्राण का बिछौना जल माना गया है, जिसको हम आपो कहते हैं। प्राणों के आंगन में रमण करने वाला जल ही ऐसा है जो विद्युत को शान्त करने वाला है, अग्नि को सान्त्वना देने वाला है। अग्नि का बिछौना भी जल माना गया है। जब परमपिता परमात्मा ने सृष्टि का प्रारम्भ किया था तो पृथ्वी को रचने से पूर्व मेरे प्यारे प्रभु ने समुद्र रूपी मेखला बनाई। यदि समुद्र न होता तो आज मानव जीवन भी नहीं होता। इसीलिये हमें अनुसंधान करना है कि वह जो अनन्त प्रभु है उसने मानव जीवन के लिए, पृथ्वी की रक्षा करने के

लिये इस यज्ञशाला के निकट एक सुन्दर मेखला बनाई। पृथ्वी जो भी विष उगलती है उस विष को निगलने वाला यह समुद्र कहलाता है, जल कहलाता है, आपो कहलाता है। आज हमें आपो को जानना है।

मानव के द्वारा श्वांसों की गति प्राणों से रमण कर रही है। हे मानव! तेरी जो श्वांसों की गति चल रही है, उसमें नाभि केन्द्र से प्राणों का उद्गार उत्पन्न होता है, घ्राण के द्वारा वह समाप्त हो जाता है, जहाँ प्राण का ब्राह्मरूप बन जाता है। परन्तु इन प्राणों का बिछौना क्या है? एक समय जब महाराजा शिलक ने महर्षि दालभ्य जी से कहा था कि महाराज मैं यह जानना चाहता हूँ कि इन प्राणों का बिछौना क्या है? प्राणों के द्वारा रमण करने वाली कौन सी सत्ता है? उस समय ऋषि ने कहा कि ब्रह्माआपो लोकाः वह आपो है, जल है। यही तो प्राणों का बिछौना कहलाता है। अन्नदाम् ब्रह्मे लोकाः, अन्न में सत्ता प्रदान करने वाला वह आपो ही कहलाया जाता है। आचार्यजनों ने कहा है कि जिसको हम जल कहते हैं, यह प्राणों का बिछौना इसलिये कहलाता है क्योकि श्वांसों की गति में जो परमाणु आता है उसमें जल के परमाणु विशेष होते हैं। यदि केवल अग्नि के ही परमाणु हों, केवल वायु के ही परमाणु हों तो मानव जीवित न रह सकेगा। वायु का जो अपना मौलिक गुण है यह तो ऊषाग्र कहलाया जाता है। प्राणों का बिछौना इसलिए जल कहलाया गया है।

ऋषि ने कहा कि प्राणों का ओढ़ना क्या है? ऊपर लेने का वस्त्र

क्या है? उसे अन्न कहा है क्योंकि अन्न और जल दोनों ही प्राणों की संरक्षणता में हैं, परन्तु प्राणों का शोधन करने वाला सर्वरूप से आपो कहलाया जाता है। जहाँ भी ऊँचे से ऊँचा उद्योग कार्य चलता है वहाँ नाना प्रकार के परमाणुओं से नाना प्रकार की आकर्षण शक्ति लेकर के यन्त्रलय बनाये जाते हैं। वह विद्युत का स्वरूप हेता है, परन्तु जल की उसमें पुट होता है, जल उसको शीतल बनाता है। यदि जल उसको शीतल नहीं बनायेगा तो वह संसार में उस योग्य भी नहीं रह सकेगा।

तप

हमारा वेद क्या कह रहा है कि मानव को तपना चाहिए। जैसे प्राण अपनी गति से रमण कर रहा है, आपो तप है, सूर्य अन्तरिक्ष में तप रहा है, चन्द्रमा तप रहा है, पवित्र माता तपा करती है इसी प्रकार प्रत्येक मानव को संसार में तपना चाहिये। जब मानव तपस्या में परिणत हो जाता है तो उसके जीवन में उद्बुद्धता आती है, तो तपा हुआ प्राणी हेता है वही तो उद्गीत गाता है, वही यज्ञशाला में उद्गाता कहलाया जाता है, अध्वर्यु कहलाता है। ब्रह्मा कहलाता है। इसीलिए आज हमें संसार में तपस्या में परिणत हो जाना चाहिये। जब समुद्र तपायमान होते हैं तो समुद्रों से सुन्दर-सुन्दर आभा उत्पन्न होती है, तप से मानव का जीवन सुन्दर हो जाता है।

माता का पुत्र माता की ही सम्पत्ति नहीं

जब मेरी प्यारी माता विचार-विनिमय करने लगती हैं कि मेरे

गर्भ से उत्पन्न होने वाला बालक मेरा ही पुत्र है तो संकीर्णता है। हे मेरी प्यारी माता! यह तेरा ही पुत्र नहीं है, वह समाज का है, राष्ट्र है, संसार का है और अन्तरिक्ष में भी जाने वाला प्रिय बालक है। मेरी प्यारी माता अपने पुत्र को जन्म दे सकती है परन्तु मृत्यु को प्राप्त नहीं कर सकती क्योंकि उसका अधिकार कुछ नहीं रह पाता। यह सम्पदा केवल माता की ही नहीं है, वह भी प्रभु की सम्पदा है, जनता जनार्दन की भी सम्पदा कहलाता है। इसलिए माता को केवल तपने का अधिकार है। तप करके तप का खण्डन करना, अपराध करना माता का अधिकार नहीं हो पाता। हे मेरी प्यारी माता! जब तू अपने कर्त्तव्य का पालन करती है, महानता का पालन करती है, तो उस समय तेरा जीवन, तेरी महानता सूर्य के सदृश प्रकाशमान हो जाती है। मुझे माता मदालसा का जीवन स्मरण आता है। माता मदालसा ने अपने प्यारे पुत्रों को अपने गर्भ-स्थल में ही तप करके ब्रह्मवेत्ता बना दिया था।12 अगस्त, 1970, फिरोजपुर, पुष्प-14

आपो अमृत याग

एक समय महर्षि प्रव्हाण, महर्षि शिलक और महर्षि दालभ्य महर्षि ऋतकेतु और देव ऋषि नारद, यह पाँचों महर्षि अपनी-अपनी विचारधारा प्रकट करने लगे। परमपिता के सम्बन्ध में प्रत्येक अपनी-अपनी आभा में रमण करने लगे। प्रव्हाण ने कहा कि माता मदालसा यह कहा करती थी कि जिस भी काल में तुम अपने को तपस्वी बनाना चाहते हो। तो उस काल में तुम आत्म याग करने लगो। यदि

आत्म याग को ऊँचा बनाना चाहते हो तो पहले वहाँ का वायुमण्डल पवित्र बनाओ। प्रव्हाण जी ने यह कहा, "माता यह कहा करती थी कि आत्म याग से पूर्व तुम आपो याग करने का प्रयास करो।

आपोमय याग क्या है? आत्म याग क्या है? यह वाक्य ऋषि मुनियों के मस्तिष्कों में परम्परागतों से ही नृत्य करते रहे हैं। एक ही धारा वाले वेद मन्त्र सूक्त कहलाते हैं। हमारे यहाँ वेद में भिन्न-भिन्न प्रकार के सूक्त आते हैं। जैसे आपो सूक्त है, इसी प्रकार वायु सूक्त है अग्नि सूक्त है और ब्रह्म सूक्त भी कहलाता है। विष्णु सूक्त और शिव और भी भिन्न-भिन्न प्रकार के सूक्तों का वर्णन हमारे यहाँ वेद में आता रहता है। आपो सूक्त उसे कहते हैं जो प्राण को प्रिय होता है और आपो को प्राण प्रिय है। आपो किसे कहते हैं? आपो अमृत को कहते हैं; परन्तु आपो जल को भी कहते हैं। जल अमृत उस काल में बनता है जब वह प्राण से पिरोया हुआ है। आपो बिना प्राण के अमृत बन ही नहीं पाता।

हमारे ऋषि मुनि नाना प्रकार की औषधियाँ एकत्र करके एक पिचाद बनाते रहे हैं और वह पिचाद कहीं अग्नि के रूप में, कहीं आपो अग्नि के रूप में बनता है। अग्नि के रूप में आपो कैसा है? जल का तो आपो बन ही जाता है। ऋषि अग्नि का आपो बनाना चाहता है। आपो का अभिप्राय तो अमृत है। अब अमृत अग्नि कैसे बन सकता है?

माता मदालसा के तीनों पुत्र और देवर्षि नारद अपने में विचार विनिमय करते रहे कि अब हमें पिचाद बनाना है। आपो बनाना है

अमृत बनाना है जो माता के गर्भ स्थल में आपो होता है। वही आपो सूर्य की किरणों में रहता है। वही आपो चन्द्रमा के सोम में रहता है। वही आपो वनस्पतियों की लताओं में रहता है। वही सोम माता वसुन्धरा के गर्भ में वसु बन करके रहता है। याज्ञिक पुरुष यज्ञशाला में विद्यमान है, आत्मा ब्राह्य चिन्तन करता हुआ ब्रह्मवर्चोसि आपो की रक्षा करता हुआ याज्ञिक बन रहा है। याग कर रहा है। वह अग्नि के अमृत को जानना चाहता है उसके समीप आपो रहता है। यज्ञमान की संसार में एक ही कामना होती है कि किसी प्रकार ब्राह्य जागत के नाना साकल्य को लाकर के घृतमयी श्रद्धा को करके यज्ञशाला में आनन्द, अग्नेय, आपो को जानना चाहता इसे यजमान कैसे जानता है? श्रद्धामयी धृत साकल्य की आहुति दे करके। जानता है। नाना साकल्यों में जो वनस्पतियाँ होती है उसी प्रकार आपो बनती है। जैसे आयुर्वेदाचार्यों के गृह में उनके आसन पर नृत्य करती हुई रुग्णों का विनाश कर देती है। इसी प्रकार यजमान यह चाहता है कि मैं श्रद्धामयी घृत के द्वारा अग्नि में अमृत को जानना चाहता हूँ। मैं अग्नि के द्वारा अमृत को बिखेरना चाहता हूँ। वह ब्रह्मवर्चोसि अपनी शुभ कामनाओं, शुभ संकल्प के साथ वेद के प्रकाश और ज्ञान के साथ में, मुनिवरों! जब साकल्य से स्वाहा कहता है तो वायु मण्डल में अन्तरिक्ष में वह आपो (अमृत) की तरंगें ऐसी गति करती हैं जैसे प्रातःकाल का सूर्य पृथ्वी पर आने के लिए लालायित होता है और वह प्रकाश देता है और पृथ्वी का शोधन करता है। इसी प्रकार यजमान का वह जो शब्द है, होता जनो, उद्गाता ब्रह्मा के सहित

स्वाहा कह कर तरंगित किया जा रहा है। वह वायु मण्डल के अशुद्ध परमाणुओं को निगलने लगता है। जब परमाणु जब विशुद्ध रूप का होकर गति करने लगता है तो उससे शुद्ध वायु मण्डल का निर्माण होता है।

आधुनिक काल का जो वायुमण्डल है उसमें दोषारोपण आ गया है। अनावृष्टि और अतिवृष्टि का सदैव सन्देह बना रहता है इसके मूल में यह है कि प्रत्येक गृह में जो दम्पति होते हैं वह अपने गृह को पवित्र नहीं बनाते हैं। आज गृहपति गृह का निर्माण तो कर लेते हैं परन्तु उन गृहों में जो होना चाहिए, वह नहीं हो रहा। गृहों में सात्विक वातावरण और अमृत आज नहीं बनाया जा रहा है। प्रत्येक गृह का वायुमण्डल अशुद्धवाद में जब परिणत हो जाता है तब यह जो परमात्मा का पवित्र भवन दूषित हो जाता है। यह जो मनुष्य है जिसमें चौबीस खम्बों वाला एक ब्रह्माण्ड है, जिसमें प्राण के दस भाग बने हुए हैं। इन्द्रियों के एक-एक विषय के दस-दस भाग बने हुए हैं, हृदय रूपी प्रचण्ड अग्नि जागरुक हो रही है उस हृदय में जो तरंगें उत्पन्न हो रही है, उसके नाना विभाजन हो रहे हैं वहाँ मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार हैं। इसके भिन्न-भिन्न प्रकार के विभाजन हो रहे हैं। यह शरीर चौबीस खम्बों वाला ब्रह्माण्ड कहलाता है। जो इस जगत में विद्यमान है यह जगत परमात्मा का चित्त कहलाता है। मानव के चित्त का समन्वय परमात्मा के चित्त से होता है। तो वह भी दूषित हो जाता है। इसे हमें पवित्र बनाना आवश्यक है उसको पवित्र बनाये बिना इस मानव रूपी ब्रह्माण्ड को नहीं जान पायेंगे। 14 अप्रैल,

1983, माडल टाऊन, दिल्ली, पृष्प्-52

आत्म विज्ञान

प्रव्हाण, शिलक दालभ्य नारद इत्यादि आत्मा की चर्चा करने लगे। यह आत्मा तो अखण्ड रहने वाली है जो शरीरों में वास कर रही है। आत्मा के आनन्द प्राप्ति के लिए प्रभु ने एक शरीर रूपी यन्त्र का निर्माण किया है। वेद के ऋषि ने कहा कि आत्मा का लोक क्या है? तो वहाँ लोकों की चर्चा आयी और वेद में इसका उत्तर दिया कि आत्मा का लोक पंचमहाभूत है। आगे उच्चारण किया कि आत्मा का कर्म क्या है? तो वेद मंत्र कहता है कि इस आत्मा का कर्म याग है। याग की मीमांसा करते हुए आचार्य कहता है जितनी सुविचारों की अग्नि के ऊपर हम प्रसारण करेंगे तो उतना ही वायुमण्डल पवित्र बन जायेगा। जैसे माता अपने पुत्र को विचार देती है कि हे बालक! तू महान बन, तू मेरा नामकरण ऊर्ध्वा में ले जा। हे बालक तू मोक्ष को चल तू संसार के वैभव को अपने में न ले जा।

जब यह वार्ता (मदालसा के ऋषि पुत्र) प्रकट करते तो माता के (गर्भ काल में दिये) विचार उनके अन्तःकरण में स्थापित थे। आनन्द के लिए तू आयी है उसके लिए प्रभु की गोद में चल इस संसार के वैभव में तुझे आनन्द प्राप्त नहीं होगा। पृथ्वी पर रेंगने वाले सर्पराज और भी नाना हिंसक योनियाँ भी शान्त होकर के उनके विचार उनके गम्भीर चिन्तन, परमात्मा की प्रतिभा को वह श्रवण करते रहते और आनन्दित होते रहते। 14 अप्रैल, 1983, माडल टाऊन, पुष्प-52

देवर्षि नारद ने एक समय प्रव्हाण से यह प्रश्न किया कि क्या कारण है जिस समय तुम प्रातःकाल में याग करते हो, बाह्मजगत में जो रेगनें वाले प्राणी सर्पराज इत्यादि वह तुम्हारे अंग-संग भ्रमण करते रहते हैं। तुम्हारी उस वैदिक ध्वनि को आत्मा की ध्वनि को यह श्रवण करते रहते हैं। उस समय तुम्हें कैसा अनुभव होता है? तब प्रव्हाण और शिलक ने यह कहा, "जिस समय हम माता की लोरियों का पान किया करते थे तो माता यह कहती थीं, यह आत्मा तो अखण्ड है, इस आत्मा का विनाश नहीं होता है। इसे अग्नि भी प्रकाश में ले जाती है अग्नि भी इसे भस्म नहीं करती, जो संसार को भस्म कर देती है। आपो से तेरा शरीर बनता है। आपो से ही गुथा हुआ तेरा शरीर है यह आपो तेरे आंगन में आ कर, तुझे नष्ट और अस्वत नहीं कर सकता।" माता लोरी पान कराते समय यह कहा करती तो वह माता के वाक्य आज भी हमें स्मरण हैं। माता तो यह कहती थी किन्तु हमें यह अनुभव होता है कि यह सब आपो ही है, सब प्राणी आपो हैं, आपो का अभिप्राय यह है कि यह चेतना महतत्व की, एक सत्ता है यह आपो में रमण करने वाली है। यह आपो ही कहलाती है यह अखण्ड रहने वाली हैं, हम भी अखण्ड रहने वाले हैं। इसके पश्चात् भी इनसे दूरिता और आत्मग्लानि हमारे में क्यों आ जाये? यह आत्मा का लोक है। हम ऐसे लोक में हैं जहाँ हमारा कर्म ही हमारा कर्त्तव्य याग है। जब यह वाक्य उन्होंने प्रकट किये तो नारद मुनि ने कहा यह तुम्हारी माता का उपदेश है परन्तु तुम्हारा चिन्तन क्या है? उस समय महर्षि प्रव्हाण ने बहुत ऊर्ध्वा में एक शब्द

कहा था कि माता तो ममता है; वह एक दूसरे का मिलाने कराने वाली है। उसका विचार और हमारा विचार कोई द्वितीय भाव में नहीं रहता। एकता में रमण करता है। क्या सुन्दर शब्द ऋषि ने कहे। उनके शब्दों में कितनी महानता थी? वह कहते हैं कि माता वसुन्धरा है जिसके गर्भ में हम विद्यमान थे। जब इस स्वरूप में शरीर विद्यमान नहीं था तब उसके गर्भ में उसके पश्चात आज भी उसके गर्भ में है। उसका तारतम्य किया हुआ शरीर पृथ्वी माता को उसने प्रदान कर दिया। पृथ्वी नाना प्रकार के व्यजंनों को दे रही है। वह भी वसुन्धरा बन रही है। जब हम वैज्ञानिक बनते हैं तो पृथ्वी माता के गर्भ में प्रवेश करते हैं। नाना प्रकार की धातु को जानने वाले बन जब हम इसके रजों में प्रवेश करते हैं। उनमें आकुंचन, प्रसारण शक्ति को दृष्टिपात करके हम परमात्मा का निर्णय कर लेते हैं। अणु और परमाणु के विज्ञान में रमण करने लगते हैं। उस वसुन्धरा के हम तो जिस भी आंगन में विद्यमान हैं वही वसुन्धरा है। याज्ञिक यजमान यागशालाओं में विद्यमान यज्ञशाला में याग कर रहे हैं। यज्ञशाला का अभिप्रायः यह है कि हम माता वसुन्धरा की गोद में हैं जहाँ हम साकल्य जाना वनस्पतियों से स्वाहा कहकर आनन्द को प्राप्त होना चाहते हैं।

इस प्रकार के विचार ऋषि-मुनियों के मस्तिष्क में नृत्य करते हुए जब गतिशील बन जाते हैं तो वही आपो बन जाता है। आपो का अभिप्राय हम सब आपो है। आपो वनस्पतियों में रहता है, वनस्पतियों से ही वही आपो माता के गर्भ स्थल में रहता है। उसी आपो से

आसन है उसी से वृत्ति है और वही आपो पिण्ड बनकर भिन्न-भिन्न प्रकार के शरीरों में परिणत हो जाता है। कोई योगी बन रहा, कोई वैद्यराज बन रहा है और उन्हीं वनस्पतियों को ले उस आपो की आभा में अग्निष्टोम यज्ञ कर रहा है। अग्नि से अग्न्याधान कर स्वाहा कह रहा है। मानव के शब्दों को, वही आपो परमाणु बना करके, महत्व की आभा में रमण करता चाहता है। जिस एक सूत्र में यह ब्रह्माण्ड, एक-एक लोक लोकान्तर, सूर्य, एक जातियता के नाना मनके पिरोये हुए है उस सूत्र का नाम ही आपो है। 14 अप्रैल, 1983, मॉडल टाऊन, दिल्ली, पुष्प-52

एक समय महर्षि भारद्वाज, महर्षि प्रव्हाण, महर्षि दालभ्य, महर्षि शिलक चारों ऋषियों ने अन्तरिक्ष पर विचार किया कि यह जो अन्तरिक्ष है यह वाणी का क्षेत्र है। यह जो वाणी है, यह जो शब्द है यह मानव से उत्पन्न होकर अन्तरिक्ष में रमण करते हैं। अन्तरिक्ष में कैसे शब्द हैं यह हम विचारें। मुनिवरों! कुछ शब्द तो ऐसे होते हैं जिन शब्दां को वायु छिन्न-भिन्न कर देती है, कुछ स्वाभाविक प्रकृति के क्षेत्र में नष्ट हो जाते हैं। परन्तु शब्दों का जो मौलिक गुण है वह बना रहता है। जैसे संस्कृत का शब्द स्वाकृति है, वेद वाणी का शब्द 'यस्य अस्तम्' है इसी प्रकार देवनागरी में 'यस्वास्वाकृति का अभिप्रायः' 'आओ विराजो तो यह जो शब्द है इन शब्दों की प्रतिष्ठा अन्तरिक्ष में ऋषि मुनियों ने स्वीकार की है। यह शब्द अन्तरिक्ष में प्रतिष्ठित हो जाते हैं।

महर्षि दालभ्य, प्रव्हाण शिलक जी और महर्षि भारद्वाज, इन

चारों ऋषियों ने एक यन्त्र का निर्माण किया था जिसको शब्दकेतु, भामकेतु यन्त्र कहा जाता था। जो वेदों में भी आता है। उस यन्त्र में यह विशेषता थी कि उस यन्त्र में पंच महाभूतों से कणों को एकत्रित किया जाता था। शब्दों का समन्वयन यन्त्र होने पर यन्त्र में उनका चित्र आता था। जिनके वह राष्ट्र थे। अब से एक सहस्र वर्ष पूर्व या पाँच सौ वर्ष पूर्व मानव का शब्द किस प्रकार का था, कैसे उस काल में विचार विनिमय होते थे यह उस यन्त्र में जाता था।

महर्षि भारद्वाज के सौ वर्ष पूर्व जो पुरखे समाप्त हो चुके थे उनके दार्शनिक समाज में किये विचार विनिमय और उनके शब्दों के साथ चित्र और भी नाना ऋषियों मुनियों के शब्द और उनके चित्र उस यन्त्र में प्रकाशित हो जाते थे। यह तो हमारा वैदिक सिद्धान्त भी स्वीकार करता है। 14 अक्टूबर, 1972, जम्मू, (यागमयी साधना)

मृत्युञ्जयी कैसे बनें?

एक समय महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज महर्षि प्रव्हाण के द्वार पर पहुँचे। महर्षि प्रव्हाण ने वशिष्ठ मुनि महाराज से कहा कि महाराज हम धर्म को जानना चाहते हैं। यह धर्म क्या है? जिस धर्म को लेकर के हम अपने को धार्मिक मर्मज्ञ और महान बना सके। धर्म के मर्म को जानने वाला इस संसार में महान् कहलाता है। जब यह वाक्य महर्षि वशिष्ठ ने श्रवण किया, तो वशिष्ठ मुनि महाराज बोले कि मेरे विचार में तो यह आता है 'वेदाम ब्रह्मणः इन्द्रास्थम् चक्षु सोगामी गथम प्रवाह वृते देवम् रथः'। हे प्रव्हाण! यह धर्म ही है मानव की

इन्द्रियों में समाहित रहता है। धर्म कोई बाह्य जगत की वस्तु का नाम नहीं है। बाह्म जगत की दृष्टिपात करने वाला जिसका बाह्यजगत आयतन कहलाता है वह जिससे दृष्टिपात कर रहा है धर्म में समाहित रहता है। प्रत्येक मानव परम्परागतों से ही अपनी इन्द्रियों पर अनुशासन करता रहा है, क्योंकि जब तक मानव अपनी इन्द्रियें पर अनुशासन नहीं कर पाता तब तक मुनिवरों! वह धर्म के मर्म को नहीं जान सकता। आज कोई भी मानव धर्म का जानना चाहता है, धर्म की बेला में जाना चाहता है तो वह मौन हो करके प्रत्येक इन्द्रियों पर विचार विनिमय प्रारम्भ कर दे।

इसी प्रकार महर्षि प्रव्हाण, महर्षि शिलक, महर्षि दालभ्य, महर्षि श्रुतकेतु और भी नाना ऋषियों ने गाड़ीवान रैवक से प्रश्न किया कि महाराज हम मृत्यु से पार होना चाहते हैं? इससे महर्षि सुकेता और कृतिधानु गोत्र में जन्म लेने वाले ब्रह्मचारी करन्धिजन, रैवक मुनि के द्वार पर पहुंचे और उन्होंने भी धर्म को जानने की जिज्ञासा प्रकट की। मुनिवरों देखो! एक ऋषि से प्रश्न कर रहा है कि धर्म क्या है? एक ऋषि से कहता है कि महाराज मैं मृत्यु को जानना चाहता हूँ क्योंकि प्रत्येक मानव प्रयास करता है कि हमारी मृत्यु नहीं होनी चाहिए। एक मानव यह प्रयास कर रहा है कि मैं जब तक धर्म को नहीं जानूँगा तब तक मृत्यु से पार नहीं हो सकता। तो मेरे प्यारे जब वह वाक्य महर्षि रैवक मुनि महाराज उनके समीप आया तो उन्होंने कहा कि मृत्यु से मानव को पार होना है तो उसे प्रत्येक इन्द्रियों पर अनुशासन करना होगा। महर्षि वशिष्ठ भी यही वाक्य कह रहे हैं।

रैवक मुनि भी यही वाक्य कह रहे हैं। मृत्यु से वही मानव पार होता है जो अपनी प्रत्येक इन्द्रियों को मृत्यु से पार करा देता है। मृत्यु से इन्द्रियों को पार होना क्या? संकीर्ण्ाता को त्यागना। पापमय संकीर्ण भावना को त्यागना है और अपने को व्यापकता में लाना है। 24 अप्रैल, 1980, अमृतसर, (धर्म का मार्ग)

आध्यात्मिक और भौतिक विज्ञान का समन्वय

महाराजा अश्वपति के यहाँ एक समय महर्षि कवन्धि, महर्षि प्रव्हाण महर्षि शिलक, महर्षि दालभ्य, महर्षि सोमकेतु और ब्रह्मचारी कृतिभानु और अष्टावक्र का विचार विनिमय हुआ। अष्टावक्र जी ने यह कहा कि ब्रह्माण्ड का आध्यात्मिकवाद से समन्वय करो। इस पर कुछ ऋषियों ने कहा कि यह जो याग है यह ब्रह्माण्ड की एक सूक्ष्म कल्पना है। इसकी आध्यात्मिकवाद, भौतिकवाद दोनों से समन्वय करके अपने हृदय, अपने समाज में एक शान्ति की स्थापना करो। महर्षि प्रव्हाण ने कहा कि यदि हम आध्यात्मिकवाद और भौतिकवाद दोनों का समन्वय नहीं करते तो दोनों भिन्न-भिन्न होकर अज्ञानता का मूलक बन जायेंगे। महर्षि प्रव्हाण ने महाराजा अश्वपति से भी यह कहा कि हम दोनों (विज्ञान) को एक दूसरे का पूरक जब तक स्वीकार नहीं करते तब तक हमारा कल्याण नहीं होगा। हम राष्ट्र और समाज में एक महत्ता का दर्शन नहीं कर सकते। 14 अक्टूबर, 1984, खतौली, (पुष्प-46)

महर्षि वाजश्रवा ने अपने में निश्चय करके ऋषि मुनियों की सभा

एकत्रित की। जिसमें महर्षि विभाण्डक, महर्षि प्रव्हाण, महर्षि शिलक, महर्षि दालभ्य, महर्षि रेणकेतु, महर्षि वैशम्पायन, महर्षि श्रृंगी, महर्षि मिन्डी इत्यादि को निमन्त्रित करके उन्होंने प्रस्ताव किया कि आज मैं न्यौदा में वेद मन्त्रें का अध्ययन कर रहा था। तो वेद की आख्यायिकायें मुझे स्मरण आई जो कहती हैं कि मुझे तप करना चाहिए। मानो तप के लिए मुझे प्रेरित कर रही हैं। प्रत्येक मानव प्रेरणा को पाकर के अपने में कुछ जानना चाहता है। मैं तो प्रेरणा को प्राप्त हो रहा हूँ और वेद मन्त्र मुझे प्रेरणा दे रहा है कि तुम तपस्वी बनो। क्या मैं तप को प्राप्त हो जाऊँ?

वाजश्रवा महर्षि ने जब ऐसा उद्गीत गाया तो महर्षि प्रव्हाण जी ने कहा कि हे ऋषिवर! आप का विचार बहुत प्रिय है कि आप तप करने की प्रबल इच्छा रखते हैं। आप तप अवश्य कीजिए परन्तु तप किसे कहते हैं? वेद का आचार्य कहता है कि ”तपो ब्रह्मण तपाय हृदयानि गच्छतम् ब्रह्मः“। यह जो हृदय है इसको पवित्र बनाने का नाम तप है। जब तक हृदय पवित्र नहीं हो जाता, मन मस्तिष्क, मानो प्राण की प्रतिष्ठा में प्रतिष्ठित नहीं हो जाते, तब तक तप में परिणत नहीं हो पाओगे। इसलिए तप किया जाना आवश्यक है। महर्षि प्रव्हाण ने आगे कहा कि तपम ब्रह्मे, प्रत्येक इन्द्रियों को तपाने का नाम तप है। देखों उसी में यम है, उसी में नियम है, उसी में ईश्वर प्राणीधान की प्रबलता का नृत्य होने लगता है। आप तप अवश्य कीजिए।

महर्षि वाजश्रवा के मन में यह विचार भरण होने लगा कि तू

तपों में परिणत हो जा। द्वितीय उन्होंने कहा कि प्रभु! जितना भी मेरे द्वारा द्रव्य है, गौ है, सर्वस्व को याग के माध्यम से समर्पित करना चाहता हूँ। हे प्रभु! आपकी क्या इच्छा है? महर्षि प्रव्हाण ने कहा, ”यह तो प्रिय है क्योंकि हमारे ऋषि मुनि जब भी साधना में परिणत हुए हैं तो उन्होंने अपने अंगसंग के वायुमण्डल को याग के द्वारा पवित्र किया है। वेद मंत्रें द्वारा वेद की ध्वनि में ध्वनित होते हुए शुद्ध परमाणुवाद का उन्होंने प्रसार किया और नाना प्रकार का साकल्य, अग्नि देवता के मुख में परिणत किया है।“

वह वायुमण्डल में प्रसारित होने से वायुमण्डल अपने में अनुकूल हो जाता है, तब मानव तपस्या में परिणत हो जाता है। महर्षि प्रव्हाण ने वर्णन करते हुए कहा कि एक समय कागभुषंडी जी ने महर्षि को पवित्र बनाना चाहता हूँ। महर्षि लोमश कहा कि बहुत प्रियतम। मेरे प्यारे देखो, वे प्राण के माध्यम से मन को पवित्र बनाने का प्रयास करने लगे। बेटा! मुझे उनका जीवन स्मरण आता रहता है। वह जब तपस्या में परिणत हो याग के माध्यम से, अनुष्ठान करने लगे तो याज्ञिक विचार, यौगिक तरंगें, द्यौ लोक को जाती दृष्टिपात होने लगी। वह योगाभ्यास के द्वारा उनका साक्षात् दर्शन करते रहे। महर्षि कागभुषण्डी जी सांयकाल को लोमस मुनि के समीप विद्यमान हो करके अपनी योगाभ्यास प्रगति का वर्णन करते कि प्रभु! आज मुझे याग की तरंगों में से अमुक देवता का भान हुआ। आज अग्नि की धाराओं पर मेरा शब्द विद्यमान हो करके भुव में, स्वः में प्रतिष्ठ हो करके सत में परिणत हो गया। कागभुषंडी जी इस प्रकार अपनी

वार्ताओं अपने अनुभव को प्रकट करते रहते।

एकता पर चर्चा

मुझे स्मरण आता है पुत्रों! एक समय महर्षि प्रव्हाण मुनि महाराज के यहाँ एक सभा हुई। महर्षि प्रव्हाण, महर्षि शिलक, महर्षि दालभ्य, महर्षि रैक्क, महर्षि सोमकेतु, महर्षि सुकेता, महर्षि सोमपान, महर्षि श्वेत केतु, महर्षि पनपेतु, महर्षि शाण्डिल्य, महर्षि मुग्द महर्षि दधीचि और भी नाना ऋषि उपस्थित हुए। एक ही प्रसंग उनके मध्य आया। यह संसार एकता में दृष्टिपात आता है और एकता ही अनेकता में दृष्टिपात आती है। संसार में एकता क्या और अनेकता क्या है? इसके ऊपर बेटा! यह 'सुत्रमाणाम' की विवेचना चल रही थी। वह सभी वेद द्रष्टा थे बेटा! हमारे यहाँ नाना ऋषि हुए है। जो एक-एक वेद वाक्य का एक एक मन्त्र का अध्ययन करते रहते थे। 8 जुलाई, 1987, अमृतसर, पुष्प-35

मन के कार्य-कलापों पर दालभ्य और गद्गद् ऋषि का विचार

एक समय महर्षि दालभ्य मुनि के आश्रम में महर्षि गद्गद् का आगमन हुआ। वहाँ पर महर्षि शिलक और महर्षि प्रव्हाण तथा महर्षि रेवक भी उपस्थित थे। महर्षि गद्गद् और महर्षि दालभ्य दोनों का विचार विमर्श होने लगा। उन्होंने कहा कि इस मानव-शरीर में आत्मा के कितने आवास माने जाते हैं। तब ऋषि ने कहा कि वेद का ऋषि कहता है कि आत्मा इस शरीर में आवास करता रहा है परन्तु यह मनस्तत्त्व प्रकृति का सूक्ष्मतम कण है विचारों का एक अनुपम वृद्ध

उत्पन्न होता है। जब मानव स्वप्नावस्था को प्राप्त होता है, जैसे एक बीज का अंकुर वृक्ष उत्पन्न कर देता है, उसी प्रकार यह मानव शरीर में विचारों के वृक्ष उत्पन्न कर देता है।

सवप्नावस्था में नस-हड्डियाँ नहीं होती, परन्तु मानव ऐसी नस नाड़ियों का समूह बना लेता है, जिसको बनाता हुआ अपने में अनुभव करता है कि मैं क्या रचना कर रहा हूँ? स्वप्न में नदियाँ नहीं होती, कोई भी गृह नहीं होता, परन्तु अंकुर रुपों के अवशेष संस्कार मानव शरीर में विराजमान रहते हैं। उन्हीं चित्त के संस्कार के आधार पर आत्मा के प्रकाश में, स्वप्न में उस चेतना में इस संसार की रचना कर लेता है। नदियों का निर्माण कर लेता है। पत्नियों के गृह में पति नहीं होते परन्तु पति-पत्नी के निर्माण हो जाते हैं क्योंकि आत्मा चेतनावादी है। जागरुक अवस्था में यह मन संसार का विभाजन करता है। मानव शरीर में यह मन कुटुम्ब का भी निर्माण देता है और इसी प्रकार की तरगें मस्तिष्क में ओत-प्रोत हो जाती हैं। जैसे एक पिता अपनी पुत्री का जब परिचय देता है, तो उसके हृदय में करुणा है, स्नेह रहता है। पत्नी का परिचय देते समय अन्य प्रकार का स्नेह प्रकट करता है। पिता का परिचय देते समय और प्रकार की तरंगों का जन्म हो जाता है। माता का परिचय देते समय हृदय में ममतामयी तरंगें उत्पन्न हो जाती है। उस समय प्रकृति और ही प्रकार की हो जाती हैं। जब पुत्र का निर्णय देता है तो और प्रकार की तरंगे। हैं।

प्रकार यह जिस शरीरों का विभाजन कर रहा है। उसी प्रकार

विश्वभान मन बन करके यह इस संसार को विभाजनवाद में परिणात कर रहा है। पृथ्वी माता वसुन्धरा के गर्भ में रसों का आदान-प्रदान कर रहा है, जैसे कहीं कसैला, कहीं मधु। कहीं कटु कही तीखा रस प्रदान कर रहा है। यह विश्व मान पहाड़, नदी का निर्माण कर रहा है। यह ब्रह्माण्ड लोक-लोकान्तरों मे विभक्त हुआ दृष्टिपात आ रहा है। यह सब मन का कार्य है। यह मन सर्वत्र ब्रह्माण्ड का विभाजन कर रहा है।

यह मन ऐसा विचित्र है कि जब यह ज्ञान और विवेक में जाता है, तो उसे यह संसार न होने के तुल्य प्रतीत होता है। विवेचनामय बन जाता है। जब यह विडम्बना में जाता है तो भयभीत होने लगता है इस मानव शरीर में जितने पापों के अवशेष हो सकते हैं वे मानव के मन से उत्पन्न होते हैं। यह ऐसा विचित्र है कि इसमें इस की प्रकृति के अनुरूप वायु की ऐसी तरंगें भरण कर जाती हैं। जहाँ उसे इन वायु की तरंगों वाला विचार प्राप्त हो जाता है वहाँ इस मन की प्रतिक्रियाएँ होने लगती हैं और यह मन वहीं ओत-प्रोत होने लगता है। जब तक इस वायु के क्षेत्र में यह मन नहीं आता, इतना विभाजन हो जाता है, इसके मन के साथ में आत्मा बलिष्ठता में इतना विभक्त हो जाता है, इतना दूर चला जाता है कि तरंगें उसकी तरंगित नहीं हो पातीं, तब तक द्वितीय क्षेत्र में उनके मन की विभिन्न कृतियाँ प्राप्त नहीं हो पाती।

हमें इस मन की तरंगों को जानना चाहिये, इससे विवेक उत्पन्न होता है। यही मन इन्द्रियों का सारथी बना हुआ है क्योंकि इन्द्रियों

का इसका सम्बन्ध रहता है। बुद्धि इस शरीर का सारथी बना हुआ है। बुद्धि के द्वारा मन को स्थिर किया जाता है। उस मनस्तत्त्व में आत्मा के प्रकाश में बुद्धि विराजमान है। यह मन आत्मा का प्रकाश लेकर इस संसार को विभक्त कर रहा है। इस मन को जानने के लिये मानव को बहुत तपस्या की आवश्यकता है। हमें विचारना है कि मन से प्राणों को विभक्त न होने दें। हम आत्मा से इतना इसे प्रभावी न होने दें जिससे हमारा यह जो पंचभौतिक शरीर है, इसकी इन्द्रियों में नाना प्रकार के अवशेष द्वारा पापाचार की उत्पत्ति न हो। यह रुग्ण न होने पाये। एक योगी मानव की आत्मा मन की इच्छा को प्रकृति तथा परमात्मा को जानने के लिये जागरुक हो जाती है।

भौतिकवाद में परमाणुवाद की इतनी पिपासा जागरुक हो जाती है कि यह मन आत्मा के प्रकाश में सदैव परमाणुओं को ही खोजता रहता है, परमाणुओं को जानता रहता है। उसकी इतनी प्रबल इच्छा बन जाती है कि वह इस इच्छा के आधार पर नाना परमाणुओं को लेकर इतना भौतिकवाद में रमण कर जाता है कि उसकी उड़ान इस पृथ्वी से लेकर ऊर्ध्वागति को चली जाती है जहाँ सहस्रों सूर्य प्रकाश देते हैं, वहाँ चले जाते हैं। वहाँ जाकर इसी प्रकृति के अपने प्रकाश से ही, यह प्रकाशमान होता रहता है, शरीर धारण रखने की इच्छा नहीं रह पाती।

हम इस मन को जानें कि यह कैसा मृतक बना हुआ है। पापाचरणों में आ करके जब पाप अधिक एकत्रित हो जाते हैं, उसी काल में यह मन ऐसे भयंकर अंकुर इस प्राकृतिक में से ले लेता है,

जिससे उसके पापी अवशेष मन के द्वारा उसके अन्तःकरण में छा जाते हैं। अन्तःकरण में छा करके ऐसे विचार उत्पन्न होते हैं, जिससे मानव आत्मा अपने शरीर को त्याग देता है और भी नाना प्रकार के अङ्कुरों की उत्पत्ति हेती रहती है। ज्ञान की आभा जब मनस्तत्त्व के द्वारा जाती है तो यह मनस्तत्त्व विचित्र बन करके मानव शरीरों में प्रवाह से कार्य करता है। परन्तु जब अज्ञान आता है तो अपने आनन्द को जो स्वशरीर में प्राप्त होता है, द्वितीय स्थानों पर दृष्टिपात् करता है। यह मन के कारण ही है, क्योंकि हमने मन को इतना आवरण वाला बना लिया है कि हम आन्तरिक सुखों को जगत में दृष्टिपात करते हैं। अतः हमें मन की तृष्णा को स्थिर करना चाहिये।

महर्षि पतंजलि तथा आदि ऋषियों ने कहा है कि यदि तुम मन को जानना चाहते हो तो विभक्त करने वाली प्रक्रिया का मिलान प्रारम्भ कर दो। मन और प्राण का मिलान करने वाला प्राणी ही संसार में योगी बनता है। अतीत के दर्शन भाग-1

विचार व्यापक हो

एक समय महर्षि दालभ्य ने शिष्यगणों के मध्य में विराजमान होकर कहा कि हे ब्रह्मचारी! तुम अपनी मानवीयता को ऊँचा बनाने में संलग्न बनो क्योंकि संसार में जो धर्म है वह मानव की व्यापकता में विराजमान होता है। जितना भी मानव अपने विचारों को व्यापक बना लेता है, उतना ही मानव के द्वारा धर्म, मानवीयता और कर्त्तव्य उसके समीप होता है। यदि मानव अपने विचार बहुत सूक्ष्म बना लेता

है, अपने तक ही सीमित उसके विचार होते हैं तो धर्म मानवीयता और कर्त्तव्य उसके द्वार से चले जाते हैं। आज हमें अपने मानवत्व को धर्म के आसन पर लाना चाहिए।17 अक्टूबर, 1967, लखनऊ, (पुष्प-9)

ओ३म् प्रत्येक वेदमन्त्र से पूर्व क्यों?

एक समय महर्षि रेवक मुनि महाराज के आश्रम में, महर्षि विभाण्डक, महर्षि पिप्पलाद, दालभ्य इत्यादि ऋषि विराजमान थे। उनमें एक विचार चला। जिसमें महर्षि दालभ्य ने रेवक मुनि से एक प्रश्न अपने वाक्यों में प्रकट किया। उन्होंने कहा कि हम यह जानना चाहते हैं कि जब वेद मन्त्रें का उच्चारण होता है तो वेद मन्त्रें के प्रारम्भ में ओ३म् का उच्चारण क्यों किया जाता है? वाक्य बहुत सुन्दर था ऋषि मुनियों में इस पर विचार होने लगा। शौनक ऋषि ने एक वाक्य कहा, ''सोमागृहि अप्रणान्तचे आवभ्राणी गृतों ओमांग व च प्रति अस्ति ऋचाः वेद के ऋषि ने कहा, आचार्यजनों ने कहा कि हमारे यहाँ वेद मन्त्र के आरम्भ में ओ३म् का उच्चारण करने से वेद की युक्तियाँ शुद्ध होती रहती हैं। दालभ्य जी से रेवक जी ने भी ऐसा ही कहा किन्तु काककेतु ऋषि ने कहा कि भाई ओ३म् का उच्चारण जब वेद पाठ के प्रारम्भ में हो जाता है तो पुनः प्रत्येक वेद मन्त्र के साथ इसे क्यों कटिबद्ध किया जाता है? यहाँ महर्षि शौनक मुनि ने उत्तर दिया कि यह इसलिए किया जाता है कि इसकी विद्वमता घृष्टता इस की जो मस्ती है वह प्रत्येक वेद मंत्र के साथ संलग्न होनी चाहिए।

विचारकों में जब यह वाक्य स्वीकार हो गया तो उस समय आदि ऋषियों ने एक स्वर होकर, यह कहा कि भाई ओ३म् का उच्चारण इसलिए किया जाता है क्योंकि वेद की जितनी ऋचायें हैं, वेद का जितना ज्ञान है, वह ज्ञान, विज्ञान और कर्म में ही निहित रहता है। जितना भी ज्ञान, विज्ञान है कर्म में ही निहित रहता है। जितना भी ज्ञान, विज्ञान है, वह एक मन्त्र में ऐसा है जैसे एक मनका और धागा है। मनके जब धागे में पिरोये हुए होते हैं उस समय यह माला कहलाई जाती है। ऋषि-मुनियों ने इसकी युक्ति देते हुए ऐसा कहा कि ओ३म् रुपी धागा है और जितनी वेद ऋचाएं हैं वह एक प्रकार के उसके मनके है। वह ओ३म् रुपी धागे में पिरोये हुए मनके होते हैं। वेद के पठन पाठन का जो कर्म है, वह बिना ओ३म् के शुद्ध पवित्रता में परिणात नहीं होता, न हमें इसकी युक्ति ही सुन्दर प्रतीत होती है।

आत्मा-परमात्मा प्रकृति। तीन अनादि पदार्थ की व्याख्या इस संसार में होती है। प्रकृति की जितनी व्याख्या है उसमें सर्वश जितना उसका ज्ञान है विज्ञान है, जितना परमाणुवाद आता है, उसकी कितना ही ऊँचे से ऊँचा वैज्ञानिक हो वह जो व्याख्या करता है वह ऋत की व्याख्या है। जिसको हम प्रकृति कहते हैं। इसे प्रकृति की व्याख्या की जाती है, चाहे कृषक हो, भूगर्भ को जानने वाला हो, अन्तरिक्ष को जानने वाला हो, वायु की तरंगों को, विद्युत को जानने वाला संसार का जितना ज्ञान विज्ञान है वह जो दृष्टिपात आता रहता है, जिनको हम यन्त्रें के द्वारा परिणात करते हैं, यन्त्रें के द्वारा खोजा

करते हैं वह सब देखो प्रकृति के ऊपर उनका निदान स्थिर रहता है। परन्तु जितना भी ऋतवाद है, व्यापकवाद है, वह सब आत्मा की व्याख्या में आता है। जितना भी इसके ऊपर कर्ता भोगता है, जो भोगवाद है वह सब जीव आत्मा के ऊपर आता है। जो कर्ता है। इस प्रकृति की तरंगों को जानने वाला है परन्तु जैसे मध्य प्रकार से रमा हुआ होता है। इसी प्रकार वह जो परमपिता परमात्मा है जिसे ओ३म् उच्चारण करते हैं। कोई उसे परमात्मा कहता है, कहीं ईश्वर के रूपों में परिणत किया जाता है, विष्णु भी कहा जाता है, राम रमेती भी कहा जाता है। भिन्न-भिन्न प्रकार से उसका विवेचन आता है, प्रकृति के एक-एक कण में रमण होने से, क्रियाशील बनाने से प्रभु शब्द बनता है, ओ३म् शब्द बनता है। इसलिए वेद की जितनी भी ऋचायें आती हैं प्रत्येक के प्रारम्भ में ओ३म् का उच्चारण किया जाता है। वह इसलिए किया जाता है क्योंकि जैसे वह जो परमदेव (परमात्मा) है, व्याहृति है वह प्रकृति के कण-कण में ओत-प्रोत है। ओत-प्रोत होने के नाते जैसे माला में मनका और मनकों में धागा होता है, इसीलिए प्रकृति का जितना कर्म है, वह परमात्मा से कटिबद्ध है वह ओ३म् रूपी धागे में पिरोई हुई होने के नाते वेद मंत्र के पूर्व ओ३म् के उच्चारण करने में किसी प्रकार का संकोच या विवाद का विषय नहीं है।

वह विषय बहुत ही गम्भीरता से विचारणीय रह जाता है। जब हम ओ३म् को व्यापक शब्दों में परिणत कर देते हैं और यह कहा करते हैं कि ओ३म् रूपी जो धागा है यह प्रकृति में, इस संसार में

ओत-प्रोत है। हमारा जो यह ओ३म् प्रकृति के कण-कण में ओतप्रोत होने के नाते प्रत्येक वेद की ऋचाओं में रमण करने के नाते बेटा! वह "रमेती ब्रह्मा अस्ति' वह संसार में रमण करने वाला संसार में व्याप्त होने के नाते ओ३म् रूपी धागा कहलाया जाता है और इस धागे में वेद रूपी ऋचायें ज्ञान विज्ञान कर्मकाण्ड निहित रहते हैं। नवैद में त्रिविद्या का वर्णन आता है। ज्ञान, कर्म, उपासना यह त्रि विद्या है यह जितनी भी विद्या है सब ओ३म् रुपी धागे में पिरोई हुई है। पिरोई न होती तो वेद मंत्र के प्रारम्भ में ओ३म् का उच्चारण न होता। हम ओ३म् रुपी उस धागे को परमदेव को अपने में धारण करने वाले बनें। क्योंकि संसार में जो सर्वशक्तिमान है, वह ओ३म् है उसमें तीन प्रकार की व्याहृतियाँ बनती हैं। ओ३म् व्याहृतियों के आधार व्यापक से जितना विज्ञान है, जितना ज्ञान है वह सब उसी के ऊपर निर्धारित रहता है।

हम वास्तव में ओ३म् रूपी धागे को जानने का प्रयास करें। ओ३म् को जानने का प्रयास करें कि ओ३म् क्या है? वेद के प्रारम्भ में ओ३म् का उच्चारण किया जाता है। ओ३म् एक ऐसा शब्द है ऐसी ध्वनि है, चाहे मानव किसी सम्प्रदाय में चला जाये किसी भी रुढ़िवाद में चला जाये। परन्तु ओ३म् का उच्चारण मानव से दूर नहीं होता। यह इतना व्यापक शब्द है कि उसकी व्यापकता प्रकृति के कण-कण में ओतप्रोत है परन्तु यह शब्दों में निहित रहती है क्योंकि मानव की वाणी का निर्माण परम पिता परमात्मा माता के गर्भस्थल में मानव शरीर के निर्माण करते हुए निर्माणवेत्ता, मेरा प्यारा प्रभु

वाणी को इस प्रकार बनाता है इस प्रकार के शब्दों के उससे उच्चारण कराता है कि सबसे प्रथम जो ओ३म् शब्द का उच्चारण होता है। किसी भी राष्ट्र या किसी भी लोकान्तर में रहने वाला प्राणी हो यह ओ३म् शब्द प्रत्येक मानव की वाणी से स्वतः उच्चारित हो जाता है।
7 अप्रैल, 1968, आगरा, पुष्प-10

भारद्वाज ऋषि आश्रम

भारद्वाज मुनि के आश्रम में जो ब्रह्मचारी अध्ययन करते थे, वे प्रातःकालीन याग करते थे और यन्त्रें के द्वारा याग करते हुए अपने चित्रें का दर्शन करते रहते थे यज्ञशाला में विद्यमान हो करके अपना आत्मीय जो चिन्तन है, उसे प्रकट करते रहते हैं। उस उपदेश मंजरियों को सब श्रवण करके अपनी-अपनी महानता में रत रहते। एक समय सबसे पूर्व में ब्रह्मचारी सुकेता का उपदेश हुआ, फिर महर्षि वैशम्पायन के विचार श्रवण किए और इसी विचार श्रृंखला में महर्षि प्रव्हाण ने ब्रह्मवेत्ता होने का विचार व्यक्त किया। उसके पश्चात् महर्षि दालभ्य उपस्थित हुए। महर्षि दालभ्य मुनि बोले कि संसार में जैसे यह भौतिक याग चल रहा है और जैसे भौतिक याग में मानव परिणत हो रहा है। इसी प्रकार मानव को आध्यात्मिक याग में प्रवेश करना चाहिए। आध्यात्मिक चिन्तन करने वाला याज्ञिक यह विचारता है कि प्रकाश कहाँ से प्राप्त होता है? प्रकाश के लिए वह सदैव तत्पर रहता है, अन्धकार को नष्ट करने में तत्पर रहता है और प्रकाश को

लाने का प्रयास करता रहता है।

यह जो वेदों के मंत्र हैं, वेदों की जो ध्वनियाँ है जो भिन्न-भिन्न प्रकार से जो वेदों का उद्गीत गाने वाले हैं। जटापाठ, मालापाठ, घनपाठ, ऋदम्पाठ, उदात्त और अनुदात्त पाठ में वेदों का गान गाया जाता है। वेदों के प्रत्येक मंत्रें की माला बना करके वह ब्रह्मवर्चस्वी किसी सूत्र में पिरो देता है और उस माला को धारण करने लगता है अपने हृदय में मानव अपने कण्ठ में आलिंगन करके अपने में धन्य बन जाता है। उसके पश्चात् अपने में वह प्रकाशित हो जाता है। प्रकाशित वह कहलाता है। जो प्रकाश दे, जो मानव के मानवीय प्रकाश में रत हो जाता है। जैसे प्रातः काल से सूर्य उदय हो करके हम सबको प्रकाश देता है, नाना प्रकार की ऊर्जा देता है, प्रकाश मे रत हो जाते हैं। सूर्य नेत्रें का देवता बन जाता है। वह नेत्रें को प्रकाशित करने वाला है। इसी प्रकार वेदों का जो अनुपम प्रकाश है वह मानव के अन्तःकरण को पवित्र बना देता है। दालभ्य ऋषि ने कहा हमें वेद के एक-एक शब्द को अपने में चिन्तन में लाते हुए उसके प्रकाश में जाना चाहिए। जैसे सूर्य से ऊर्जा लेकर नाना यन्त्रें में वैज्ञानिक प्रवेश कर जाते हैं इसी प्रकार जब वेदरुपी सूर्य से प्रकाश को लेकर जब अपने अन्तःकरण में दृष्टिपात किया जाता है तो वह प्रकाश मानव को एक अद्वितीय रूप धारण कराके उस मानव को अनुपम बना देता है। वेद के प्रकाश में रत हो करके उस प्रभु के गुणगान गाता रहता है। हिंसक भी प्राणी उसके समीप नहीं आते। वह प्राणी भी अहिंसा में परिणत होते हुए अपनी आभा में नियुक्त हो

जाते हैं। 11 अप्रैल, 1986, शिवपुरी (मध्य प्रदेश), पुष्प-53

निद्रा पर विजय

योगी निद्रा पर विजय कर लेता हैं, निद्रा क्या है? बेटा! प्रकृति में जड़ता है और यह जो शरीर है यह भी जड़ तत्वों से बना हुआ है। उसमें भी जड़ता का स्वभाव बना हुआ है। वह जो जड़ता का स्वभाव है वही निद्रा का कारण है। जब तक हम उस जड़ता को नहीं जानेंगे, उस जड़ता की उपरामता तक नहीं पहुँचेंगे। तब तक हम निद्रा को विजय नहीं कर सकते। बेटा! निद्रा उस काल में विजय होती है जब हम जड़ता के कारण को जान लेते हैं। आलस्य और प्रमाद के स्वरूप को हम भिन्न-भिन्न रुपों में दृष्टिपात करने लगते हैं। जबकि वह जो प्रकृति की जड़ता (पंचतत्व) है। यही इसका कारण है। तुम्हें यह तो प्रतीत है कि गर्भ से सबसे प्रथम प्रकृति आती है उसके पश्चात आत्मा। क्योंकि हमारे यहाँ माना गया है तथा ऋषि मुनियों का सिद्धान्त भी यह स्वीकार करता है कि प्रकृति सत्् है और जीवात्मा सत्-चित्त है। अर्थात वह सत्य और चित्त दोनों है। इसी प्रकार "चितं भ्रवे कृतः अवृद्धि" ऐसा ऋषिजन कहते हैं कि जो प्रकृति सत् में दृष्टिपात आ रही है जो योगी आत्मा इस प्रकृति के ऊपर विश्राम कर लेता है, प्रकृति से निश्चय बन जाता है। निद्रा को विजय कर लेता है। निद्रा का स्वरूप केवल जड़ता में बना हुआ रहता है। चेतना में कदापि नहीं रहता। चेतना तो सदैव एक रस बनी रहती है। इसीलिए आत्मा में चेतना है प्रकृति में जड़ता है। मुनिवरों

तब जड़ता के स्वरूप को यह आत्मा जान लेता है तो आत्मा अपने स्वरूप चेतना को भी जान लेता हैं तो मेरे प्यारे उसको निद्रा कदापि भी प्रभावित नहीं कर सकती। क्योंकि उसने प्रकृति के स्वरूप को जान लिया है। किन्तु जब तक वह प्रकृति के स्वरूप को नहीं जानता तो प्रकृति की स्मरण शक्ति भी उससे अर्न्तध्यान होने लगती है। वह जो प्रकृति की शक्ति है जिसके कारण जो रचना होती है वह रचना भी गर्भ में लुप्त हो जाती है परन्तु उसकी स्मरण शक्ति बनी रहती है। आत्मा का स्वभाव ज्ञान और प्रयत्न बना रहता है। इसके कारण मुनिवरों। वह प्रक्रिया बनी रहती है। मुझे स्मरण है एक समय बेटा। महर्षि दालभ्य मुनि महाराज ने चौरासी वर्ष तक निद्रा का पान नहीं किया। महर्षि व्यास ने एक सौ एक वर्ष तक निद्रा का आहार नहीं किया। वह वेदान्त में बहुत परायण थे। महर्षि पतंजलि ने भी लगभग पिच्चासी वर्ष तक निद्रा पर विजय प्राप्त करने का प्रयास किया। 11 नवम्बर, 1972, रोहतक, पुष्प-25

दालभ्य के पुत्र श्वेतकेतु का अहंकार

महर्षि दालभ्य ने एक समय श्वेतकेतु से कहा, हे ब्रह्मचारी! अब तुम बारह वर्ष के हो गये हो अपने गृह को त्यागने का प्रयत्न करो। योग्य बन करके जब गृह में पुनः प्रविष्ट होगे तो उस काल में तुम्हारा जीवन वास्तव में सम्पन्नता को प्राप्त हो सकता है। श्वेतकेतु ने ऋषि दालभ्य के कथानुसार अपने गृह को त्याग दिया। गृह त्याग करके महर्षि उद्दालक कुल में उत्पन्न होने वाले शानकेतु ऋषि महाराज के

आश्रम में, गुरु के चरणों में ओत प्रोत होकर के पवित्र विद्या का अध्ययन करने लगे। पच्चीस वर्ष तक अखण्ड ब्रह्मचारी रहकर और सम्पन्न विद्याओं को ग्रहण कर जब वह अपने पिता के कुल में आये तो दालभ्य ऋषि ने कहा कि हे श्वेतकेतु! क्या तुम तपस्या में सम्पूर्णता को प्राप्त हो गये हो? क्या ब्रह्मचर्य का तुमने पालन किया है और बुद्धिमान बन गये हो परन्तु मैं यह जानना चाहता हूँ कि क्या तुम्हारे द्वारा कोई अभिमान की मात्र तो नहीं है? उस समय श्वेतकेतु ने कहा कि हे पिता! मैं तो सब विद्याओं का अध्ययन किया है और अपने जीवन की धाराओं को अपनाते हुए मुझे यह प्रतीत हो रहा है कि मैं एक महान बुद्धिमान् बन चुका हूँ।

दालभ्य ऋषि ने कहा कि हे पुत्र! तत्वेमसि ब्रह्माणा व्यापनोति कर्मणाः यह तत्वेमसि क्या है? यह ब्रह्म क्या है? श्वेतकेतु ठीक उत्तर नहीं दे पाये, तब दालभ्य ऋषि ने कहा कि जब तुम ब्रह्म को नहीं जान पाये तो तुम्हें अभिमान किसका है? क्या इस शरीर का अभिमान है? जो तुम्हें दृष्टिपात आ रहा है? इस मानव शरीर के कण जिससे यह उत्पन्न होता है शरीर में आने से पूर्व यह कण कहाँ थे?

श्वेत केतु ब्रह्मचारी ने कहा प्रभु! जब हमारा यह मानव शरीर इस रूप में नहीं था तो उससे पूर्व यह माता के गर्भ में था।

दालभ्य :- परन्तु जब माता का गर्भ नहीं था तो उससे पूर्व परमाणु कहाँ थे।

श्वेतकेतु :- माता-पिता के रज और वीर्य के रूपों में थे।

दालभ्य :- उससे पूर्व कहाँ थे।?

श्वेतकेतु :- नाना प्रकार की वनस्पतियों के रूप में थे।

दालभ्य :- परन्तु जब वनस्पति भी नहीं थी तो उससे पूर्व वह कण कहाँ थे?

श्वेतकेतु :- पृथ्वी में यह कण बिखरे हुए थे।

दालभ्य :- इन बिखरे हुए कणों को एकत्रित करने वाला, इनको धारण करने वाला कौन है? जिस शरीर पर आज तुम्हें महान् अभिमान है।

श्वेतकेतु :- प्रभु! मुझे इसका ज्ञान नहीं है। मैं तो यही जानता था कि 'तत्वाम् ब्रह्म व्यापम् ब्रहण अशर्त' मुझे ज्ञान कराओ कि तत्वेमसी क्या है?

दालभ्य ऋषि ने तत्वेमसी का ज्ञान कराते हुए कहा कि जैसे वट वृक्ष के सूक्ष्म से बीज में एक वट वृक्ष निहित रहता है इसी प्रकार वह परमात्मा, जिसे हम नित्य रूपों से वर्णन किया करते हैं, प्रकृति के कण-कण में ओत-प्रोत हो रहा है। हे ब्रह्मचारी! इसी प्रकार तुम्हें भी अपने जीवन को बना लेना है। जैसे प्रकृति और ब्रह्म दोनों का मिलान होकर के यह संसार क्रियाशील हो रहा है। इसी प्रकार संसार में हमारा जीवन भी क्रियाशील होना चाहिए। जहाँ ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी सुन्दर विचारों में परिणित होते हैं, कर्त्तव्य पालन करने की महान् इच्छा होती है वहीं धर्म की मानवीयता में रमण करता है और धर्म में उसकी विलक्षण गति होती है। संसार में पाँच प्रकार के कर्म होते हैं। व्यापक, आकुंचन, ऊर्ध्वा, ध्रुवा और क्रिया। (गति)।

श्वेतकेतु ने महर्षि दालभ्य से पूछा कि प्रभु! क्या वट वृक्ष को जानना ही ब्रह्म ज्ञान है? दालभ्य ऋषि ने कहा, कदापि नहीं जैसे लवण युक्त जल होता है, वह मध्य से, अग्रणों से ऊर्ध्वा से भी धुरवा से जिस स्थान से दृष्टिपात करोगे वही से लवण युक्त होता है। इसी प्रकार ब्रह्मनिष्ठ वह किसी भी आंगन में जाता है, किसी भी क्रियात्मकता में विचार विनिमय करता है तो उसे वही ब्रह्म ही ब्रह्म प्रतीत होने लगता है। हे श्वेतकेतु। आज तुम लवण युक्त जल में लवण की भांति संसार में ब्रह्म को व्यापक दृष्टिपात करो।

जिस प्रकार वट वृक्ष के सूक्ष्म बीज में सर्वश वृक्ष अंकुर रूप में निहित रहता है इसी प्रकार परमपिता परमात्मा भी सभी के हृदयों में विराजमान है। मानव में जब दूसरों के प्रति नाना प्रकार के कुविचार आते हैं तो वह बेटा! परमात्मा को अपने से दूर कर देता है। नाना प्रकार के पापों से संलंग्न हो जाता है। यदि प्रत्येक मानव, प्रत्येक देवकन्या, जब परमात्मा को अपने सम्मुख स्वीकार करते हैं तो पाप करने के लिए किसी भी काल में तत्पर नहीं होते।

ब्रह्मचर्य आश्रम हो या गृहस्थ आश्रम हो परन्तु वह जो परमपिता परमात्मा है वह हमसे दूर नहीं होना चाहिए। यदि वह दूर हो जायेगा तो हमारे में कोई सार्थकता न रहेगी। इस संसार में हमारी अपनी सार्थकता नहीं। नाना प्रकार की सामग्री प्राप्त होती है वह परमात्मा का प्रसाद है इसे हम पाते हुए संसार सागर से पार होते चले जायें।

जिस प्रकार वट वृक्ष के बीज में सूक्ष्म सा अंकुर होता है। इसी प्रकार मानव के शरीर में सूक्ष्म सा अन्तःकरण होता है और जिसके

आंगन में जिसे हम चित्त कहते हैं जब चित्त और जीवन का संघात होता है, मिलान होता है तो विचारों की उत्पत्ति होती रहती है। उन्हीं विचारों से इस संसार में हमारा जीवन एक मानवीयता के ऊँचे-ऊँचे क्षेत्रें में चला जाता है। कहीं वाणी पर अनुसंधान है कहीं पृथ्वी के गर्भ में अनुसंधान है। कहीं सूर्य मण्डल का, कहीं चन्द्रमा मण्डल पर अनुसंधान है और उस पर अनुसंधान करने वाला अनुसंधान वेत्ता विशेषज्ञ बनता चला जाता है। प्रभु से केवल यही उसकी आराधना रहती है कि हे परमात्मन्। संसार को मिथ्यावाद से दूर ले चल, सत्यवाद में हमारी प्रवृत्ति होनी चाहिए जिससे हम संसार में महापुरुषों का आशीर्वाद लेकर इस संसार सागर से पार होते चले जायें। 17 अक्टूबर, 1967, लखनऊ, पुष्प-9

सूर्य के वास्तविक स्वरूप पर महर्षि दालभ्य का निर्णय

एक-एक वस्तु कई कई नामो से प्रतीत और दृष्टिपात आती है जैसे सूर्य है, सूर्य में कही तेज शक्ति है, कहीं देखो शीतल शक्ति है कहीं सूर्य में आकर्षण शक्ति है, कहीं दूसरी वस्तु को निगलने की शक्ति है सूर्य कहीं वह अग्नि देता है तो कहीं अवरित देता है, कहीं वह तेजों का समूह माना गया है कहीं प्रकाश का। तो सूर्य को प्रकाशक कहें, अन्धकार कहें क्या उच्चारण करें? कहीं प्रकृति की नाना धाराएं उसके वशीभूत प्रतीत होने लगती हैं, कहीं सूर्य की किरणों शोधन करने वाली शक्ति बन कर प्रदूषण को निगल लेती हैं। कहीं सूर्य विष को देता है अपनी किरणों द्वारा विषैले प्राणियों को

अर्पित कर देता है। इस सूर्य को वास्तविकता में क्या उच्चारण कर सकते हैं?

हमारे ऋषि मुनियों ने महर्षि दालभ्य और रेवक मुनि आदि ने इसका निर्णय दिया और कहा 'सूर्य ब्रह्म कृतिः विश्वन्ति सुकृताः वेद के आचार्यों ने कहा कि सूर्य को किरणों के भिन्न-भिन्न रूपों में दृष्टिपात करने लगते हैं। यह कहीं ऊषा नाम से है, कहीं कान्ति नाम से है, कहीं तेज नाम से है। इसलिए उसे वेद का आचार्य कहता है, सुग्रति ऊषा नाम रेणास्तिः महर्षि अंगिरा जी ने कहा कि सूर्य को सूर्य इसलिए कहा गया क्योंकि सूर्य शब्द में सभी वह गुण आ जाते हैं जो सूर्य में होते हैं। इसलिए सूर्य की नाना किरणों के समूह का नाम सुग्रित कहलाता है। सूर्य कहा गया है। इसमें आकर्षण शक्ति भी है इसमें शोषण करने की, भेदन करने की और भी नाना प्रकार की शक्ति होने के नाते हमारे यहाँ इस शक्ति समूह का नाम सूर्य कहा गया है। यदि हम इसके भिन्न-भिन्न भेदों का वर्णन करने लगते हैं तो हमें इसके नाम की वास्तविकता अथवा सार्थकता प्रतीत नहीं होती। 7 नवम्बर, 1968, आगरा, (पुष्प-10)

११ मार्कण्डेय पुराण के अनुसार मदालसा का विवरण

शत्रुजित नाम के महापराक्रमी राजा थे उनका पुत्र ऋतध्वज भी बुद्धि, पराक्रम और लावण में बृहस्पति, इन्द्र और अश्वनीकुमारों का सामना करता था। महर्षि गालव के आश्रम की रक्षा के लिए राजा शत्रुजित ने राजकुमार ऋतध्वज को मुनि के साथ भेज दिया। ऋषि आश्रम में पाताल केतु का वध किया। जहाँ श्रिवासु नाम के राजा की विदुषी कन्या मदालसा से उनकी भेंट हुई। कुल गुरु तुम्बरु ने उनके विवाह की स्वीकृति दे कन्यादान करके वैवाहिक विधि सम्पन्न की। ऋषि पत्नी कुण्डला ने आशीर्वाद देकर कहा कि पति को चाहिए कि सदा अपनी पत्नी का भरण पोषण करे। जब पति-पत्नी प्रेम वश एक दूसरे के वशीभूत होते हैं, तब उन्हें धर्म अर्थ काम तीनों की प्राप्ति होती है। स्त्री की सहायता के बिना पुरुष किसी देवता, पितर, मृत्यु और अतिथियों का पूजन नहीं कर सकता। स्त्री भी पति के बिना धर्म, अर्थ काम एवं सन्तान नहीं पा सकती।

विवाह के पश्चात राजकुमार अपनी पत्नी मदालसा के साथ अपने पिता के राज्य में आये। प्रिय वचन कहकर राजा ने पुत्र और पुत्र वधू का स्वागत किया और राजकुमार को आज्ञा दी। ब्राह्मणों की रक्षा का वेश धार कर तालकेतु नाम का कपटी आश्रम बना कर रहता था। उसने राजकुमार से कहा कि मैं धर्म के लिए यज्ञ करूँगा। मेरे पास दक्षिणा नहीं है आप अपना स्वर्ण का हार मुझे देकर मेरे आश्रम की रक्षा करो। मैं चयनित कर शीघ्र आता हूँ। वह कपटी, राजकुमार ऋतकेतु के राष्ट्र में जाकर कहा कि राजकुमार युद्ध करते हुए मृत्यु

को प्राप्त हो गये उनका अन्तिम संस्कार ऋषियों ने मिलकर कर दिया तथा उनका यह कण्ठ का हार आप स्वीकार करें। मदालसा ने पति को मरा मानकर अपने प्राणों को त्याग दिया। दुःख पूर्ण समाचार सुनकर लोग विलाप करने लगे तो राजा ने कहा कि मेरे पुत्रों ने ब्राह्मणों की रक्षा के लिए अपने प्राण त्याग कर अपनी माता की शिक्षा, वंश की निर्मलता तथा पराक्रम का त्याग नहीं किया है। अतः हमें उसका शोक नहीं करना है। ऋतध्वज की माता ने कहा, "राजन्! मेरी माता और बहिन को भी ऐसी प्रसन्नता प्राप्त नहीं हुई जैसी मुनि की रक्षा के लिए पुत्र की मृत्यु का समाचार सुनकर मुझे हुई है। जो बन्धु-बान्धवों के सामने रोगी हो कर प्राण त्यागते हैं उन माताओं को सन्तान उत्पन्न करना व्यर्थ है। पुत्रों के जन्म काल में माता को क्लेश उठाना पड़ता है। वह तभी सफल होती है जब उसका पुत्र शत्रुओं पर विजय प्राप्त करे अथवा युद्ध में मारा जाये। कपटी ऋषि ने वापस अपने आश्रम में पहुँच कर राजकुमार से कहा कि अब तुम घर जाओ। घर पहुँचकर राजकुमार को सारी बातें बताई गयीं तथा मदालसा की मृत्यु (गृहत्याग) की वार्ता सुनकर वह लज्जा और शोक में डूब गये और कहने लगे यदि इस जन्म में मेरी पत्नी मदालसा मुझे न मिल सकी तो दूसरी कोई स्त्री मेरी जीवन संगिनी नहीं बन सकती? नागराज महात्मा अश्वतर जो पातालपुरी के राजा ने सरस्वती और महादेव भगवान की आराधना की कि ऋतध्वज की पत्नी मदालसा पहले की अवस्था में प्रकट हो। प्रकट हो गयी जिसे नागराज के पुत्रों ने गुप्त रूप से स्त्रियों के संरक्षण में रख दिया।

एक दिन ऋतध्वज को नागराजकुमार अपने पिता के पास ले गये। जहाँ उनका सत्कार में नागराज ने उपदेश दिये। ”गुणवान का ही जीवन प्रशंसनीय है।“ गुणहीन मनुष्य तो जीते जी ही मरे के समान है। गुणवान पुत्र पिता माता को शान्ति सन्तोष प्रदान करता है। नागराज ने घर में छिपायी मदालसा को ऋतध्वज को प्रदान कर दिया। शत्रुजित की मृत्यु के पश्चात् ऋतध्वज राजा बने। तदन्तर मदालसा के गर्भ से उत्पन्न प्रथम पुत्र का नाम विक्रान्त रखा। मदालसा यह नाम सुनकर हँसने लगी। महारानी मदालसा ने जन्म से ही अपने पुत्र को ऐसा उपदेश दिया, जिससे ज्ञानी एवं ममता शून्य होकर उसने गृहस्थ आश्रम के प्रति अपने मन को नहीं जाने दिया।

मदालसा के दूसरे पुत्र का नाम सुबाहु रखा उस बालक को भी पहले की भांति उपदेश दिया वह परम ज्ञानी हो गया। तृतीय पुत्र का नाम शत्रुमर्दन रखा। उसको भी पहले के समान ज्ञान का उपदेश दिया। पहले पुत्रों की भांति वह निष्काम कर्म करने लगा सकाम कर्म की ओर उसकी रूचि नहीं रही। चतुर्थ पुत्र का नाम मदालसा ने स्वयं अलर्क रखा। तदन्तर उसने पहले पुत्रों की भांति उसको भी ज्ञान जनक बातें सुनानी प्रारम्भ की तब राजा ने कहा कि इसे भी ज्ञान का उपदेश देकर मेरी वंश परम्परा का उच्छेद करने पर क्यों तुली हो? इस पुत्र को प्रवृत्ति मार्ग पर लगाओ।

मदालसा ने अलर्क को राजनीति का उपदेश दिया। चारों आश्रम के कर्त्तव्य, सदाचार तथा कर्त्तव्य का वर्णन किया।

माता से इस प्रकार उपदेश ग्रहण करके अलार्क का युवावस्था में विधि पूर्वक विवाह किया। उनसे अनेक पुत्र उत्पन्न हुए। माता-पिता सन्यास को चले गये उससे पूर्व मदालसा ने एक आदेश लिखा हुआ दिया।

१२ विशेष परिशिष्ट-१

मातृ-योगदान से राष्ट्रोत्थान

देखो, मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमंत्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेदमंत्रों का पठन- पाठन किया, उनमें हम उस देव, परमपिता परमात्मा की उपासना करते चले जा रहे थे और उस देव से हम एक ही वस्तु प्राप्त करना चाहते हैं और वह है, ज्ञान द्वारा बुद्धि का निर्माण। हम बुद्धि को चेतना में दृष्टिपात करना चाहते हैं, क्योंकि मानव के द्वारा जब बुद्धि होती है, तो इस संसार का जानना इसके लिए सहज हो जाता है। बुद्धि को हम अपना साथी बनाएं और बुद्धि को महान बनाना है। बुद्धि उस काल में उफंची बनती है, जब इसके द्वारा ज्ञान होता है और मन की स्थिरता होती है।

बुद्धि के लिए याचना :

आज हम अपने प्यारे प्रभु से याचना कर रहे थे कि- हे प्रभु! हमें बुद्धि प्रदान कर, क्योंकि जब हमारी बुद्धि ऊर्ध्वा में रमण करने लगती है, तो मानव की उड़ान, मानव का विचार, महत्ता में परिणात होने लगता है। जब मस्तिष्क में बुद्धि ही नहीं होगी, तो प्रभु की जानकारी क्या हो सकती है? अथवा इस संसार के जनसमूह को अथवा समाज में जो प्रतिक्रियाएं होती है, उसे हम बिना बुद्धि के निर्णाय नहीं कर पा सकते, इसीलिए प्रभु से याचना करते हैं।

परम्परागतों से हमारे ऋषियों ने संसार के वैभव को स्वीकार नहीं किया। संसार का चक्रवर्ती राज्य मानव को प्राप्त हो जाए, परन्तु यदि बुद्धि नहीं, तो राष्ट्र भी उसके लिए अराष्ट्र बन जाता है। यदि बुद्धि होती है, तो सर्वत्र कार्य करने में दक्ष हो जाता है। बुद्धि से ही मानव अपनी इन्द्रियों का मन्थन करता हुआ यह चित्त-मन, दोनों को अपना माध्यम बना करके उसमें अपने को समाहित कर देता है। तब चित्त अपनी गति प्रारम्भ कर देता है, केवल आत्मा के सन्निधान मात्र से। यह जो मानव का चित्त है, यह सदैव महत्ता में रमण करना चाहिए।

राष्ट्र में बुद्धिमानों की आवश्यकता :

मेरे प्यारे महानन्द जी आज मुझे कुछ राष्ट्रवाद की प्रेरणा दे रहे हैं। मैं राष्ट्रवाद की चर्चा तो करने नहीं आया हूँ, संक्षिप्त वाक्य अवश्य प्रकट करता हूँ, क्योंकि आज का वेदपाठ कह रहा है। मुनिवरो! राजा के राष्ट्र में बुद्धिमान पुरुष होने चाहिए अथवा विवेकी पुरुष होने चाहिए। जब तक राजा के राष्ट्र में विवेकी पुरुष नहीं होंगे, अथवा समाज में बुद्धिमान पुरुष नहीं होंगे, तब तक वह राष्ट्र और वह मानव समाज अपने में अपंग रहता है। तो इसीलिए आचार्यों ने कहा है कि, 'ब्राह्मण बाचांग धृति अस्ताः वाचन नमो{सि।' वेद का ऋषि कहता है कि- हे राजन तेरे राष्ट्र में ऊर्ध्व गति वाले प्राणी होने चाहिए। आध्यात्मिकवेत्ता पुरुष होने चाहिए, जिससे आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता तेरे राष्ट्र को ऊँचा बनाने वाले हों। क्योंकि जिस राजा के राष्ट्र में

विवेकी पुरुष होते हैं, पुरोहित, ऊँचे बुद्धिमान होते हैं, तो उस राजा के राष्ट्र में रूढ़ि नहीं होती, और जब रूढ़ि नहीं होती तो समाज में समानता रहती है।

रूढ़ियों का कारण :

रूढ़ि को हमारे यहां अशुद्ध कहा है। रूढ़ि उसे कहते हैं, जैसे कोई महापुरुष हुआ और उस महापुरुष ने एक विवेचना दी, उसके जो अनुयायी पुरुष होते हैं, उनमें इतना तप न रहने के कारण बुद्धि का माध्यम सीमित है, वे उतने याज्ञिक नहीं होते, वेद के कुछ अंश को लेते हैं, और जब वह एक अंग को लेता है, सर्व अंगों को नहीं ले पाता, क्योंकि उसका अध्ययन एक ही अंग पर रहता है। उस अंग को ले करके वह तो संसार से चला जाता है और उसके अनुयायी जो होते हैं, उनमें आरूढ़ता न रह करके, इतना तप न रह करके, जिन सिद्धांतों को वह स्वीकार करते थे उनमें त्रुटियां आ जाती हैं और उन अशुद्धियों को जो उच्चारण करता है, उन्हें वही दृष्टिपात आता है, और जो उनके अनुकूल होता है, उसे अपनाने का प्रयास करते हैं, इसलिए वह रूढ़ि बन जाती है। अब वह जो रूढ़िवादी है, वह राष्ट्र के ऊपर अपना आधिपत्य करना चाहता है, क्योंकि वह रूढ़ि राष्ट्र से पृथक हो करके बनी, उसका निर्माण हुआ। परन्तु अब अधिक समय हो जाता है, तो वह राष्ट्र पर आक्रमण करना प्रारम्भ कर देता है और राष्ट्रवाद भी अशुद्ध हो जाता है। जो विचारक पुरुष होते हैं, राष्ट्रवेत्ता होते हैं, वे विचारते हैं कि इस समस्या को कैसे

सुलझाएं? जब राजा के राष्ट्र में महापुरुष नहीं होते, तो उस राजा को कोई मार्ग प्राप्त नहीं होता कि हम राष्ट्र को कैसे ऊँचा बनाएं? परन्तु विवेकी पुरुष ही ऐसे होते हैं, जिनसे राष्ट्र ऊँचा बनता है।

मुझे स्मरण है, एक समय महाराजा अश्वपति के यहां एक रूढ़ि बन गयी। जब रूढ़ि बन गयी, तो राजा और मंत्री का उन रूढ़ि के आचार्यों के द्वारा गमन हुआ। उन्होंनें कहा कि तुम राष्ट्र में रूढ़िवाद में न जाओ, धर्म को अपनाओ। उन्होंने यह वाक्य स्वीकार नहीं किया। उन प्राणियों का हम कैसे "ास कर सकते हैं? राजा अश्वपति और मंत्री इसी बात को विचार-विनिमय करते हुए आचार्य मुदगल के द्वार आये और कहा कि- महाराज! यह जो रूढ़ि बनी है, इसका विनाश कैसे होगा? रूढ़ि धर्म का विनाश कर देती है। उस समय महाराज मुदगल ने कहा कि- भाई! इनको ज्ञान से शिक्षा दो और राष्ट्रीय नियम को अपनाने का प्रयास करो कि तुम विद्या का अध्ययन करो। आचार्य ने मध्य में उन्हें बुद्धि के निर्माण का उपदेश दिया। आचार्यों को लाया गया और उन्हें निर्णीत कराया। आचार्यों के मस्तिष्क में वह वाक्य आ गया। आचार्यों ने इस रूढ़ि को त्याग दिया।

रूढ़ि उस काल में नहीं होती, जब महापुरुष होते हैं, विवेकी पुरुष होते हैं। जब रूढ़ि आती है, तो क्रान्ति भी होती है, और यदि वह क्रान्ति रूढ़िवादियों के विपरीत होती है, तो रक्तभरी क्रान्ति भी होती है। इसीलिए राष्ट्र को चाहिए कि वह बुद्धिमानों, विवेकी पुरुषों, योगियों, संयमी पुरुषों को महत्वपूर्ण पद प्रदान करे। राजा के राष्ट्र में

समय- समय पर शिक्षण शिविर लगने चाहिए और वे जो शिविर होते हैं, वे राष्ट्र को ऊँचा बनाने के संबन्ध में विचारते हैं।

विवेकी कौन है?

राष्ट्र के संबन्ध में ही नहीं, वैदिक प्रकाश में विवेकी होते हैं। विवेक जो होता है, वह निष्पक्ष होता है, क्योंकि आत्मा का जो ज्ञान है, वह निष्पक्ष होता है। आत्मा का ज्ञान कैसे निष्पक्ष होता है? क्योंकि उसमें रूढ़ि नहीं होती। जैसे मन है, बुद्धि है, चित्त है, अहंकार है। किसी भी रूढ़ि का प्राणी क्यों न हो, परन्तु वह जो अरूढ़ि के प्राणी हैं,जो चित्त वहां कार्य करता है, वह यहां भी करता है। जैसे, नेत्र हैं। नेत्र संसार को दृष्टिपात करने का कार्य करते हैं। परन्तु नेत्रवान, बुद्धिमान हो, वेद का ऊँचा ज्ञान हो, अपठित हो, तो नेत्र अपना दृष्टि का कार्य करते रहें, इसका नाम धर्म है। रूढ़ि उससे निचले स्थली पर रहती है। रूढ़ि कहां होती है? जहां राष्ट्र में द्रव्य को प्रधानता दी जाती है। राष्ट्र और द्रव्य को प्रधानता दे करके और अपने को उसमें संलग्न करना और यह जानना कि मैं जितना जानता हूं, उतना यह संसार है, तो उसका नाम रूढ़ि कहलाता है। वह रूढ़ि नहीं होनी चाहिए।

रूढ़ि शमन में योगियों की आवश्यकता :

बुद्धिमानों का कर्तव्य होता है, राष्ट्र का कर्तव्य है कि यदि वह रूढ़ि निपटारे में नहीं आती हो, तो उनके आचार्यों को, प्रवर्तकों को अपनाना चाहिए और उन आचार्यों को ले करके उनका एक संगठित

समाज बनाना चाहिए और समाज बना करके अपनी रूढ़ियों की विवेचना प्रकट करें और उनका समर्थन करने वाला सभापति, वेदों का पण्डित होना चाहिए, विवेकी पुरुष होना चाहिए। वेदों का पण्डित भी हो, विवेकी भी हो और विवेक में सार्थकता होनी चाहिए। ऐसा अध्यक्ष होना चाहिए, जो रूढ़ियों का निर्णय करने वाला हो। अपनी-अपनी रूढ़ि की चर्चा प्रत्येक करता है, तो वह जो योगी पुरुष है, उसका सर्वत्र आदर करते हैं। जब वह अपना निर्णय देता है, और राजा उसको स्वीकार कर लेता है, कि यह निर्णय यथार्थ है। आचार्यों से जब यह निर्णय हो जाता है, तो उस नियम को, विचार को, राजा अपने राष्ट्र में निर्धारित करने वाला हो, तो रूढ़ि समाप्त हो जाती है। रूढ़ियों के समाप्त होने पर समाज और राष्ट्र ऊँचे बन जाते हैं।

राष्ट्रवाद के रक्षक- योगी पुरुष :

विवेकी पुरुष इसलिए भी होने चाहिए, क्योंकि राजा के राष्ट्र में विज्ञान का दुरुपयोग न हो। ऋषि जो होते हैं, वे दोनों विज्ञान के वेत्ता होते हैं। आध्यात्मिकवाद को भी और भौतिकवाद को भी जानते हैं। आत्मा में लीन होने वाला ब्रह्मवेत्ता जो पुरुष होता है, वह भौतिकवाद के मार्ग से ही हो करके जाता है। भौतिकवाद को वह निचली स्थली में त्याग देता है और स्वयं ऊर्ध्व चला जाता है। वह जो विवेकी अथवा योगी पुरुष है, वह राजा के राष्ट्र में राजा की स्थली को ऊँचा बनाने वाले हों और राजा के राष्ट्र में जो विज्ञान है, उस विज्ञान का सदुपयोग कराने वाले हों। क्योंकि ऐसे राजा के राष्ट्र

में क्रान्ति नहीं होती, रक्त भरी क्रान्ति नहीं होती और यदि क्रान्ति होती है, तो वह बुद्धिवर्द्धक क्रान्ति होती है।

गर्भावस्था में माता की दक्षता :

बुद्धिवर्धक क्रान्ति कैसे होती है? बुद्धिवर्धक क्रान्ति ऐसे होती है कि अपने-अपने विकास का कार्य, अपने जीवन के संबन्ध में विचारते हैं। जैसे विज्ञान है, एक मानव ऊर्ध्व गति में जा रहा है। जैसे मेरी एक प्यारी माता है, वह अपने गृह के कार्यों में दक्ष है, अपने गर्भस्थल में पुत्र को उत्पन्न करने में दक्ष है। अब यह विचार आता है कि माता दक्ष कैसे होती है? माता के गर्भस्थल में जब जीव प्रविष्ट हो जाता है, तो उस समय माता को यह विचारना चाहिए कि अब उसे अपने जीवन को कैसे व्यतीत करना है? वह शिक्षा गृह में प्राप्त न हो, तो महापुरुषों का अपने गृह में आदर करे और महापुरुषों से नम्र हो करके यह प्रश्न करे कि मैं अपनी जीवनचर्या के संबन्ध में जानना चाहती हूँ। मेरे गर्भस्थल में आत्मा प्रविष्ट हो गया है, अब मैं जीवनचर्या को जानना चाहती हूँ, जिससे मेरे गर्भ से ऐसे बालक का जन्म हो, जे बुद्धिमान भी हो, और राष्ट्र का नायक भी बने। यदि राष्ट्र का नायक न भी बने, तो प्रभु! मैं आध्यात्मिक महापुरुष को चाहती हूँ। जब यह प्रश्न आचार्य से करते हैं तो आचार्य उत्तर देता है- हे पुत्री! आज तू अपनी जीवनचर्या के संबन्ध में जानना चाहती है, तो नौ माह की नौ औषध होती हैं, उन नौ औषधियों को तुझे पान करना है। जितना तुम्हारा चित्त शांत होगा, उतना ही तुम्हारे गर्भ में

प्रविष्ट होने वाला जो बालक है, आत्मा है, अथवा जरायुज है, वह बुद्धिमान होगा। उतना ही तुम्हारा गर्भाशय पवित्र बनता चला जाएगा और उत्पन्न होने वाला जो बालक है अथवा पुत्र है, वह सदैव ऊँचा बनता रहेगा।

शाण्डिल्य मुनि की माता की दक्षता :

बेटा! मुझे एक वाक्य स्मरण आ गया है। जब महर्षि शाण्डिल्य मुनि महाराज की पवित्र माता त्यक्तवृत्ति मानो उसका नाम 'पुष्पांजलि' था। उसके पति का नाम सुसिद्ध ऋषि था, वह माता सदैव विचारती रहती थी। वह माता पुष्पांजलि सदैव अपने आंगन में विराजमान रहती। जब माता के गर्भ में शाण्डिल्य मुनि का आत्मा प्रविष्ट हो गया। जब यह आत्मा प्रविष्ट हो गया, तो पति से बोली कि- प्रभु! मेरे गर्भस्थल में आत्मा प्रविष्ट हो गया है। अब मुझे अपने जीवन को सुन्दरता से व्यतीत करना चाहिए, क्योंकि मैं ऋषि कन्या हूँ और ऋषिगृह में मैं प्रविष्ट हुई हूँ। तो प्रभु! मैं यह चाहती हूं कि मेरे गर्भ से भी ऋषि बालक का जन्म होना चाहिए। पति ने कहा- बहुत सुन्दर देवी! तो उसने ब्रह्मचर्य का संकल्प लिया। एक समय वह पति से बोली कि- प्रभु! मैं अश्विनी-कुमारों के द्वार जाना चाहती हूँ, जिससे मैं अपने जीवन के संबन्ध में और आयु के संबन्ध में कुछ वार्ता प्रकट कर सकूं। उन्होंने कहा कि चलते हैं। तो पति- पत्नी, दोनों अश्विनी कुमारों के मध्य में विराजमान हो गये। अश्विनी कुमारों ने ऋषि का आदर किया और उनके चरणों को स्पर्श किया। नम्र हो

करके बोले कि- भगवन्! हमारे लिए कोई आज्ञा है? उन्होंने कहा- हाँ आज्ञा है, और वह यह कि इनके शरीर में आत्मा प्रविष्ट हो गया है, अब हमें कौन- कौन सी औषधियों का पान करना है।

अश्विनी कुमारों का गर्भावस्था-औषध विज्ञान :

अश्विनी कुमारों ने ऋषि के वाक्यों को पान करते हुए कहा कि- हे माता! हे पितर! मैं उन औषधियों का वर्णन कर रहा हूँ, तुम अपनी लेखनीबद्ध करते रहो।

प्रथम मास :

प्रथम मास में आचार्य को निमंत्रण देकरके व्रती संस्कार होना चाहिए। पुष्पांजलि ने कहा कि- वह संस्कार हो गया है। तो मातेश्वरी! जिस समय द्वितीय मास प्रारम्भ हो, उस समय, वह जो निर्माणवेत्ता प्रभु है, वह माता के गर्भस्थल में निर्माण करता है। उस निर्माणवेत्ता को हमें स्वीकार करते हुए अपने चित्त को सांत्वना देनी है और कर्म को विचारना है, प्रत्येक इन्द्रिय के विषय को विचारना है।

द्वितीय मास की औषधि विद्या :

हमारे इस मानव शरीर में दस इन्द्रियां कहलाती हैं, जिनमें पांच ज्ञानेन्द्रियां और पांच कर्मेन्द्रियां हैं। प्रत्येक इन्द्रिय का अपना- अपना विषय भिन्न है। जैसे, नेत्र का विषय है दृष्टिपात करना, घ्राण का विषय है मन्द सुगन्ध को पान करना और श्रोत्रों का विषय है शब्दों को ग्रहण करना। इसी प्रकार रसना का विषय रस को पान करना, त्वचा का विषय स्पर्श है। उपस्थ का विषय अपने शरीर में जो नाना

प्रकार के यंत्र हैं, उन यंत्रों में जो जल रमण करता है, उसे त्यागने का। नाना प्रकार की औषधियां, विष आदि को पान करता है, अपान के द्वारा गुदा उसे त्याग देती है। हस्तां का कार्य, संसार को क्रिया में लाना और पदों का कार्य है शुभ मार्ग पर विचरण करना। तो देवी! प्रत्येक इन्द्रिय का भिन्न दृष्टिकोण है। उनकी विचारधारा, उनका जो विषय है, वह भिन्न है और भिन्न- भिन्न विषय की भिन्न- भिन्न प्रकार की औषधियां हैं। इसी आधार को लेकर प्रभु ने नौ द्वारों का निर्माण किया है। दो श्रोत्र के द्वार, दो नेत्रों के द्वार, दो घ्राण के द्वार, एक मुखरविन्द, एक उपस्थ और एक गुदा। ये नौ द्वार कहलाते हैं। नौ मास ही माता के गर्भ स्थल में आत्मा प्रविष्ट रहता है।

ये नौ द्वार हैं, इन नौ द्वारों के भिन्न- भिन्न नाम हैं। जैसे हमारे नेत्र हैं। एक नेत्र को हम जमदग्नि कहते हैं और एक नेत्र को विश्वामित्र कहते हैं। एक श्रोत्र को हम वशिष्ठ कहते हैं, तो एक श्रोत्र को हम भारद्वाज कहते हैं। घ्राण के एक छिद्र को हम सूर्य छिद्र कहते हैं, तो एक को चन्द्र छिद्र कहते हैं। रसना का जो अग्रभाग है, उसमें अश्विनी विराजमान हैं। और गुदा और उपस्थ है, उसमें एक में ब्रह्मा और दूसरे में शिव विराजमान हैं। तो प्रत्येक इन्द्रिय का प्रत्येक देवता है। प्रत्येक द्वार का एक देवता कहलाया गया है। प्रत्येक देवता की भिन्न प्रकार की औषधि है। जैसे हमारे यहां कश्यप शब्द भी आता है और कश्यप का स्थान हमारे यहां उपस्थ को भी माना गया है। इसी प्रकार हमारे यहां विश्वामित्र और जमदग्नि 'जगरिता वृतं ब्रह्मे', मेरे प्यारे! जमदग्नि की जो औषधि है, उसमें अग्नि कुछ प्रधान

हो, और जो विश्वामित्र, जो मित्रता की औषधि है, वह कौन सी है? एक-दूसरे को संगठित करने वाली औषधियों को हमें पान करना है। जैसे, ब्रह्म बूटी है हमारे यहां जैसे ब्रह्म जड़ी है, जैसे हमारे यहां शंखपुष्पी है शंखाहुली है। इसका हम संग्रह कर लेते हैं। द्वितीय माह में माता को गौदुग्ध के साथ में इसको पान करना चाहिए।

तृतीय मास में औषधि-पान :

इसी प्रकार जब तृतीय माह आता है। तृतीय माह में शरीर में कश्यप देवता की प्रधानता होती है, तो उस समय माता को प्रायः 'स्वाति, शैलखण्डा, अर्वनी, मानकेतुऋ इन चारों औषधियों का चूर्ण बना लेना चाहिए और ऋतु अनुसार दुग्ध के साथ में पान करना चाहिए। उससे माता का जो स्वास्थ्य है, वह बलशाली होता रहता है और माता के गर्भस्थल में जो बालक है, वह पनपता रहता है। मानो उसे देवताओं की प्राप्ति होती रहती है।

चतुर्थ मास में औषधि-पान :

अब जब चतुर्थ मास आता है, तो गर्भाशय में इन्द्रियों का निर्माण पूर्ण हो जाता है, उसके सर्वत्र अंगों का निर्माण हो जाता है। अपनी-अपनी स्थली में परमाणु अंकित हो जाते हैं और उनका निर्माण हो करके लेपन भी हो जाता है। अस्थियों का निर्माण हो करके उनके ऊपर त्वचा का लेपन हो जाता है। चतुर्थ माह में स्वाति और पीपल के पंचांग का पान करना चाहिए। माता को पीपल का फल, मानो उसकी कृति, उसके पत्र, उसकी पिपराणी, छाल, जड़

का अग्रभाग मानों उसकी पांचों वस्तुओं का पान करके उसकी कृति बना करके प्रातःकाल में जल के द्वारा उस कृति को पान करना चाहिए। जब पूर्ण गर्भाशय बन जाता है, तो माता के शरीर में अग्नि मंद हो जाती है, उससे (पीपल के पंचांग से) अग्नि तीव्र बन जाए। माता के गर्भ में, चतुर्थ माह में, बालक में और कुछ प्रतिभा आती है, तो उसे पंचांग पान करना चाहिए।

पंचम मास की औषधियाँ :

जब पंचम माह आता है, तो शुद्ध हृदय हो और जैसे हमारे यहां पारा धातु है, सिद्ध धातु का पान, इसका हमारे यहां शिव कहते हैं, और गन्धानी गन्धक को हमारे यहां पार्वती औषधि कहते हैं। इसको ले करके, जब दोनों का अग्नि में शोधन होता है, जब तक पार्वती रहती है, तो शिव भी रहता है। उसको आयुर्वेद के वैद्यराज हैं, वे जानते हैं कि उसमें जो गऊ के कण्डे होते हैं, गऊ का जो करीप्प ;गोमय गोबरद्ध होता है और गउफ के पुत्र ;बैलद्ध की भी करीप्प ले करके और देखो पीपल में दस प्रकार की जाति होती हैं, हमारे यहां एक पीपल की जो 'क्रीड़ा अवरेत' जाति होती है, और जो स्वाति जाति है, उसकी कन्दरियों का हम चूर्ण बना करके और गन्धेनी, पार्वती को और शिव को, दोनों को पृथ्वी में मथ करके पृथ्वी के परमाणुओं को मानो देखो, उसका सम्पुट बना करके उसको अग्नि में प्रदान करना चाहिए और जब उसका शोधन हो जाता है, तो वह औषध, स्वाति औषध, ब्रह्म दण्डी, इन तीनों का चूर्ण बना करके

गोदुग्ध के साथ में मानो देखो इसको अग्नि में तपा करके और घृत का उसमें पात बना करके ऋतु के आधार पर पान करना चाहिए। मैं इस विज्ञान को इसलिए प्रकट कर रहा हूँ कि जब हमारे यहां ऋषि-मुनियों की उत्पत्ति होती थी, तो प्रायः यह आयुर्वेद की दृष्टि से पात बनाये जाते थे। माता- पिता इतने बुद्धिमान होने चाहिए। अभक्ष्य पदार्थों का पान करने वाले न हों। वे शुद्ध औषधियों को पान करने वाले हों। पंचम माह में जब यह पान कराया जाता है, तो बालक माता के गर्भाशय में बुद्धिमान बनता रहता है।

षष्ठ मास की औषधियाँ :

अब छठे माह में बालक का निर्माण हो करके बुद्धि के तन्तुओं में वायुमण्डल में से परमाणुओं का भरण होना प्रारम्भ हो जाता है। मानो चन्द्रमा की कान्ति के द्वारा वह जो बालक की बुद्धि का माध्यम धड़ है, उसको ऊँचा बनाने के लिए माता- पिता को विचारना है कि अपने बालक को किस प्रकार का बनाना है। यदि उसे राजा बनाना है, तो राष्ट्र की औषधियों का पान करना है, बालक को महापुरुष बनाना है, तो महापुरुषों की औषण का पान करना है। महापुरुष का औषध तो ;1द्ध स्वाति है, ;2द्ध कुंभ प्रीति, ;3द्ध घ्राण, ;4द्ध अचनेरू है। ये ले करके और वट वृक्ष का पंचांग ले करके इसको पान कराना है। इसको माता पान करती रहे। और देखो सांख्यवाद और जैसे हमारे यहां योग का जो मीमांसा दर्शन है, उसका अध्ययन करना चाहिए। देखो, और वेदांत का अन्तिम, जो प्रभु का चरण है,

उसका अध्ययन जब माता करेगी, तो छठे माह में बालक की बुद्धि से तारतम्य हो करके और उसी प्रकार जब माता, पिता के द्वारा विराजमान हो, तो वह ऊँचे- ऊँचे दर्शनों की चर्चा, पारलौकिक चर्चाएं, ऋषि- तपस्वियों की चर्चाएं होनी चाहिए।

मेरे प्यारे! तुम्हें स्मरण होगा, जब अभिमन्यु माता के गर्भ में था, तो छठे माह में उससे चक्रव्यूह से बाहर आने की बात प्रारम्भ की गयी, तो माता को निद्रा आ गयी। तो अभिमन्यु चक्रव्यूह का सर्व विज्ञान उसने माता के गर्भ में ही परीणत कर गया था, परन्तु उससे बाहर निकलने का नहीं। देखो यह विज्ञान हमारे यहां दर्शनों में प्राप्त होता है।

सप्तम मास की औषधियाँ :

सप्तम माह होता है। सप्तम माह में माता का गर्भाशय पूर्ण हो जाता है। बुद्धि का निर्माण भी हो जाता है, चित्त का निर्माण भी हो जाता है। उस समय माता को सदैव बुद्धिवर्धक, शरीर को पोषण करने वाली औषधियों को पान करना चाहिए। जैसे स्वाति, घृणी, आस्वातन, और हड़ बूटी है। इन चारों का कूर्च ;चटनीद्ध बना करके दुग्ध के साथ में पान करना चाहिए, तो बालक का स्वास्थ्य उफंचा बनेगा।

अष्टम मास की औषधियाँ :

अष्टम माह में बुद्धि का संबन्ध ज्येष्ठा नक्षत्र, और अरुणी नक्षत्र से, और वशिष्ठ नक्षत्र से होता है। एक वशिशा नाम की औषधि होती

है, उसे पान करना चाहिए। उस समय यदि माता के गर्भ से बालक का जन्म होता है, तो या तो माता की मृत्यु हो जाती है, या बालक की मृत्यु हो जाती है। इसलिए अष्टम माह का बालक कोई जीवित नहीं रह पाता। सप्त माह का बालक जीवित रह पाता है। इसका मूल कारण यह है कि उसका स्वानकेतु नक्षत्र से संबन्ध होता हैॠ और स्वानकेतु नक्षत्र का संबन्ध पृथ्वी से होता है। इसलिए उस बालक का जन्म होने से उसमें कोई किसी प्रकार की हानि नहीं हो पाती।

नवम मास का औषध व्यवहार :

तो विचार यह है कि नवें माह में माता शयन करते हुए गुणवन्तन, आस्वेती। इन दो औषधियों का पान करते हुए, माता अपने गर्भाशय को सदैव पूर्ण करके नौ माह में अपने बालक को जन्म देती है। परिणाम कि वह जो बालक है, वह माता के ऊँचे संस्कारों को ले करके जन्म लेता है और जहां वह जाता है, वहां उसकी कीर्ति होती है, वहां उसका नामोकरण होता है। आचार्य उससे प्रसन्न रहता है। राष्ट्र में वह जाता है, तो राष्ट्र उससे प्रसन्न रहता है, आध्यात्मवेत्ताओं में जाता है, तो वह प्रसन्न रहते हैं।

गर्भकाल में शिक्षा :

मुझे आधुनिक काल का तो प्रतीत नहीं है, परन्तु हमारे यहां परम्परा का जो जगत रहा है, उस जगत में ऋषि- मुनियों के यहां क्या, राष्ट्रगृहों में भी शिक्षा प्रदान की जाती थी। माता जब अपने बालक को इसी प्रकार जन्म देने वाली बनती है, तो माता का

गर्भाशय सदैव ऊँचा रहता है, माता का मस्तिष्क ऊँचा रहता है। जब माता को भक्ष्य- अभक्ष्य पदार्थों का विचार नहीं होता और बालक उसके गर्भाशय में है, तो माता को बुद्धि की आवश्यकता है। उस समय यदि माता चिन्ता में संलग्न है और ऐसी चिन्ता है, जो उसके चित्तवत ;बालकद्ध को नष्ट कर रही है। अभक्ष्य पदार्थों को, दूसरे जीवों का हिंसक बन करके उन्हें पान करना, पिता को भी पान करना, यह दोनों के लिए गृहदूषित करना है। उस गृह में जो बालक उत्पन्न होता है, और यह मानो कि हम उसे नारकिक बना रहे हैं और आगे हमारा गृह भी नारकिक बनेगा। इसलिए उन वस्तुओं का जैसा मैंने जिस विद्या का तुम्हें अध्ययन कराया है, उस विद्या पर विचार- विनिमय होना चाहिए।

मेरे प्यारे! मुझे स्मरण है कि जब पुष्पांजलि माता ने यह प्रश्न किया, तो उन्होंने इस विद्या को दक्षता से प्रकट कराया। माता ने वही कार्य किया। उस समय माता के गर्भ से शाण्डिल्य का जन्म हुआ। महर्षि शाण्डिल्य मुनि महाराज, हमारे यहां प्रथम आचार्यों में महर्षि कहलाते हैं। तो परिणाम यह कि माता ही निर्माण करने वाली है।

ब्रह्मचारी का जीवन और विज्ञान- उपयोग :

बेटा! आज मैं कहां चला गया हूँ। जिस विद्या में मैं पुनः जाना चाहता था, जाना नहीं हुआ। यह जो विज्ञान है, इसको हमें सूक्ष्मता से साकार रूप में लाना चाहिए। जब माताएं दक्ष होती हैं, तो उनके

गर्भ से उत्पन्न होने वाले बालक भी विज्ञान का दुरुपयोग नहीं करते। विज्ञान का दुरुपयोग उसे कहते हैं, जिस विज्ञान को हम दृष्टिपात करते हैं, श्रवण करते हैं, यदि उन वैज्ञानिक यंत्रों की वाणी को श्रवण करके, हमारा चरित्र भ्रष्ट होता है, हममें अमानवता आती हो। वह विज्ञान तो है, परन्तु इसका दुरुपयोग हो और वह दुरुपयोग ब्रह्मचारियों के चरित्र को भ्रष्ट कर दे, तो उसमें छात्रों का नाश अधिक हो जाता है। राजा के राष्ट्र में जब विज्ञान को दुरुपयोग होना प्रारम्भ हो जाता है, तो छात्रों का चरित्र भ्रष्ट हो जाता है और जानो कि राजा का राष्ट्र अब नष्ट होने जा रहा है। राजा के राष्ट्र में महत्ता नहीं रहेगी।

चित्रावली विज्ञान टी0वी0

हमारे यहां ऋषि- मुनियों का कथन है कि ब्रह्मचारियों को माता के गर्भ से ले करके 25 वर्ष की आयु तक ऐसे अश्लील चित्रों का दर्शन नहीं करना चाहिए, जिनसे उनका ब्रह्मचर्य दूषित हो जाए, जिससे जीवन की प्रतिभा नष्ट हो जाए। इन वाक्यों पर विचार- विनिमय करना चाहिए, अनुसंधान करना चाहिए। राजा के ऐसे राष्ट्र में ऐसे आचार्य, ऐसे विवेकी पुरुष होने चाहिए। वह विज्ञान होना चाहिए। यह जो विज्ञान हमारे यहां परम्परा से रहा है। यदि उन चित्रवली विज्ञान में ऋषि- मुनियों के जीवन चरित्रों का दिग्दर्शन कराया जाएगा, और ऋषि- मुनियों की वाणी को श्रवण कराया जाएगा, तो चरित्र उफंचा बनता है और विज्ञान का सदुपयोग होगा।

यदि उससे विपरीत होगा, तो राजा के राष्ट्र में वह रक्तभरी क्रान्ति आ जाएगी।

महर्षि भारद्वाज का चित्रावली विज्ञान :

परम्परा में मुझे स्मरण है कि जब महर्षि भारद्वाज ने नाना प्रकार की चित्रावलियों का निर्माण किया और उन चित्रावलियों में लाखों वर्षों से जो मानव की वाणी अन्तरिक्ष में भ्रमण कर रही थी, उन यंत्रों में उनके चित्र आते थे, उनकी वाणी आती थी। उनके वाक्य होते थे और वाक्य के साथ में उनका चित्र होता था। क्योंकि बिना चित्र के, बिना आकार के वाणी का अपना कोई अस्तित्व नहीं रहता। इसलिए वाणी के साथ में परमाणुओं का और मानव का चित्र भी आता है। इसलिए वे ऋषि- मुनियों के शब्द, ऋषि- मुनियों के विचार और उनका आकार उन चित्रों में आते थे। तो वैज्ञानिकजन ब्रह्मचारी श्रवण करते, विद्यार्थी श्रवण करते, और पठन- पाठन करते हुए अपने स्थलों को त्याग करके उनके चित्र-दर्शन करते थे। मुझे स्मरण आता रहता है, राजा रावण ने यही कार्य किया। परन्तु जब वह नियमावली भंग हो गयी, रक्तभरी क्रान्ति आ गयी, क्योंकि चरित्र न रहा।

अश्वपति के राज्य में टी0वी0 विज्ञान :

मेरे प्यारे! महाराजा अश्वपति के यहां चित्रवली रहती, उनका सदुपयोग होता। उनके यहां राजपुरोहित मंत्री, त्यागी और तपस्वी होते। अश्वपति के जो महामंत्री थे, वे 50 वर्ष तक अन्न को न पान करके सदैव प्रभु का चिन्तन करते और बुद्धि की याचना करते हुए वे

त्यागी बने, जिससे उन्हें महामंत्री का पद प्राप्त हुआ, जिससे वह राष्ट्र को सुबुद्धि प्रदान कर सके।

मेरे प्यारे! राष्ट्र तपस्या से ऊँचा बनता है, क्योंकि उसके लिए ब्रह्मज्ञान और त्याग की आवश्यकता है, जिससे वह प्रजा के वैभव को, प्रजा के शृंगार को अपने में संग्रह न करने वाला हो। जब राजा के राष्ट्र मेंः संग्रह करने की प्रवृत्ति आ जाती है और राजा, प्रजा के शृंगार को और प्रजा के वैभव को संग्रह करने वाला हो जाता है, वह राष्ट्र आज नहीं तो कल, अवश्य नष्ट होने वाला है। उस राजा के राष्ट्र में रक्त भरी क्रान्ति आ जाती है।

आज मैं अधिक विवेचना देने नहीं आया हूँ। मैं प्रकट करने आया हूँ कि- 'पुत्र! हमें अपने विज्ञान को, अपनी विद्या को सदैव धारण करना है और उस विद्या को ले करके रूढ़ि को नहीं पनपने देना है। जब राजा के राष्ट्र में रूढ़ि पनप जाती है, तो राजा का राष्ट्र भ्रष्ट हो जाता है, राजा के राष्ट्र में स्थिरता नहीं रहने पाती। राजा, प्रजा को सांत्वना नहीं दे सकता। मैं कौन सी रूढ़ि की चर्चा करूँ? कौन सी रूढ़ि को राष्ट्र प्रकट करेगा? वही, रूढ़ि विवाद में परिणत हो जाएगी और राजा का समाज और राष्ट्र में विवाद नहीं रहना चाहिए। वह विवाद उस काल में नहीं रहेगा, जिस काल में एक धर्म होगा, एक मर्यादा होगी और विज्ञान भी उसके अधिकृत होगा। यह हो सकता है कि उस काल मे, जब विवेकी पुरुष होंगे, तपस्वी पुरुष होंगे, वैदिक पुरुष होंगे। क्योंकि वेदों का ज्ञान निष्पक्ष माना जाता है। सदैव निष्पक्ष वह ज्ञान होता है, जिसमें विज्ञान भी हो, ज्ञान भी हो,

विवेक भी हो, मानवता का उपेदश हो। वही ज्ञान, राष्ट्रनायक बना सकता है। राष्ट्रनायक बन करके, राष्ट्र को उफर्ध्व गति को ले जा सकते हैं। इस प्रकार जब राष्ट्र का निर्माण होता है, तो राजा के राष्ट्र में महत्ता होती है। इसलिए, मेरे पुत्र! राष्ट्र को उत्तम बनाना है।

जो राष्ट्र उत्तम बनता है, वह माताओं से ऊँचा बनता है। हे माँ! तू वास्तव में विद्यारूपी श्रृङ्गार को अपनाने का प्रयत्न कर, जिससे तेरा श्रृंगार ऊँचा बन करके तेरे गर्भ से ऊँची सन्तान का जन्म हो करके तेरी महत्ता, तेरा गृह ऊँचा बन जाए। यह है आज का वाक्य मैं कोई अधिक विवेचना देने नहीं आया। आज के वाक्यों का अभिप्राय यह है कि हम परमपिता परमात्मा की उपासना करते हुए और आयुर्वेद की विद्या को अपनाते हुए, अपने गृहों को ऊँचा बनाएं, महत्ता को ले करके चलें। आज का यह वाक्य अब समाप्त। अब वेदों का पठन- पाठन होगा। 02-08-1973, महाशय कृष्णहाल, जोरबाग, नई दिल्ली

१३ विशेष परिशिष्ट-२

माता निर्माता भवति

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेदमंत्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा कि आज हमने पूर्व से जिन वेदमंत्रों का पठन- पाठन किया, हमारे यहां परम्परागतों से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है। जिस पवित्र वाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है, क्योंकि वह परमपिता परमात्मा शिशु रूप में परिणत रहते हैं। वे एक रस रहने वाले हैं। इसलिए उस परमपिता परमात्मा को शिशु के रूप में स्वीकार किया गया है। हमारे आचार्यों उफंची- उफंची कल्पनाएं की हैं और उनके उफपर अनुसंधन प्रारम्भ किया तो ऐसा प्रतीत हुआ है कि वे परमपिता परमात्मा विशाल से विशाल हैं और सूक्ष्म से सूक्ष्म, शिशु रूप में रत रहने वाले हैं। तो इसलिए उस परमपिता परमात्मा की उसके ज्ञान और विज्ञान की उफर्ध्वा में प्रायः हम उड़ान उड़ते चले जाएं, जिससे हमारा मानवीयत्व प्रायः उफंचा बना रहे। हे शिशु! तू सृष्टि का मौलिक तत्व माना गया है। जिस भी काल में वैज्ञानिकों ने अथवा दार्शनिकों ने उस शिशु रूप की कल्पनाएं की हैं, तो वह इतना विशाल और इतना सूक्ष्म प्रायः दृष्टिपात आता रहा है कि मानव अन्त में अपनी वाणी से कोई वाक् उच्चारण करने में असमर्थ हो जाता है। तो इसलिए आज हम उस परमपिता परमात्मा की

महती अथवा उसके ज्ञान और विज्ञान की प्रायः हम अपने में उड़ान उड़ते रहे हैं।

यह वेदमंत्र स्मरण आया 'शिशुम् ब्रह्म वरणा स्वस्त प्रहे व्रताम् गतौशन्नः रुद्रिभागा'। वेद का वाक् कहता है कि वह परमपिता परमात्मा जब सृष्टि का सृजन करते हैं अथवा निर्माण करते हैं, तो इस ब्राह्माण्ड में एक शिशु के रूप में अपने को ही सूत्र बना लेते हैं। जैसे माता के गर्भस्थल में एक शिशु है और शिशु के अन्तर्गत नाना नाना प्रकार के परमाणु अपने में परिणत रहते हैं और वह जो शिशु है, वह प्रत्येक परमाणु का सूत्र बना हुआ है। परमाणुओं का ही नहीं, पंचमहाभौतिकता में जो एक सूत्रपात हो रहा है, वह भी उसी में पिरोया हुआ उसका सूत्र कहलाता है। जो आज हमें विचार-विनिमय करना चाहिए, हे शिशु! तू अपने में महान है। इसी प्रकार यह जो ब्रह्माण्ड हमें जो दृष्टिपात आ रहा है, यह ब्रह्माण्ड एक सूत्र में पिरोया हुआ है। और वह सूत्र कौन है? वह चेतना है, वह सूत्र कौन है? वह परमपिता परमात्मा जो सबका सृजनहार है, सबको उत्पन्न करने वाला है। तो विचार क्या चल रहा है? वेद का मंत्र अपने में कितना महत्वपूर्ण है। वह सूत्र की चर्चा कर रहा है।

मुझे स्मरण आता रहता है, एक समय माता मदालसा जब वह पूर्णता के गर्भव्रहा अपने एक समय पति से बोली कि हे प्रभु! मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कुछ प्रतिज्ञाएं की हैं, कि कुछ संकल्प किये हैं, मेरी इच्छा ऐसी है कि मेरे गर्भ में शिशु का प्रवेश हुआ है और में अपने आचार्य कुल में भ्रमण करना चाहती हूँ। उनके मनुवंश

में उत्पन्न होने वाले राजा ने माता मदालसा को अपने वाहन में ले जाकर के कदली वनों में, जहां उनके पूज्यपाद गुरुदव का आसन था, उस आसन पर पहुंचे, विद्यालय में प्रवेश हुआ। विद्यालय में जब प्रवेश हुआ, तो उनके आचार्य ने कहा, देवी! ‘प्रहो सम्भवा कुत्रो’। हे पुत्र! आओ विराजो। वे विराजमान हो गयी तो आचार्य ने यही प्रश्न किया- ‘सहो सम्भवा सुत्रम् ब्रह्मवाचो देवाः’ उन्होंने कहा ‘हे पुत्र! तुमने बड़ा अध्ययन किया है, दर्शनों का और विशेषकर आध्यात्मवाद में तुम्हारी बड़ी विचित्र गति रही है, तो मैं आध्यात्मिक के वांग्मय में प्रवेश हो करके तुमसे यह जानना चाहता हूं कि ‘अकस्मात् सूत्रो भवा सम्भवा’ तुम्हारे अन्दर कौन सूत्र, कौन मानव शिशु है, जो सूत्र बना हुआ है?

तो माता मदालसा ने कहा, हे प्रभु! इस ब्रह्माण्ड का जो सूत्र है, वह परमपिता परमात्मा शिशु रूप में इस ब्राह्माण्ड का सूत्र बना हुआ है। जब भी लोक-लोकान्तरों के उफपर विचार-विनिमय किया जाता है अथवा पृथ्वी के पिण्ड के रूप में भी चिन्तन किया जाता है, अग्नि की प्रदीप्त होने वाली विशालता का वर्णन किया जाता है और समुद्रों में जो जलाशय अपने में सुगठित हो रहा है, उसके उफपर विचार-विनिमय किया जाता है, तो एक शिशु ही दृष्टिपात आता है, वह इन सबको धरण किये हुए है, वह सबका सूत्र बना हुआ है। जैसे माला है, माला में एक सूत्र है, नाना-नाना प्रकार के मनके हैं, जब उसमें पिरोये जाते हैं तो माला दृष्टिपात होने लगती है। इसी प्रकार यह ब्रह्माण्ड एक माला के रूप में ही दृष्टिपात आ रहा है। उस समय

ऋषि ने कहा, देवो! तुम्हारा उत्तर यथार्थ है। परन्तु यहाँ मेरा प्रश्न और है, 'ममत्वाम् ब्रह्मः स्व{स्वताम् सूत्रोभवा शिशु'। वेद के आचार्य ने कहा है, हे पुत्र! तुम्हारे गर्भस्थल में कौन सूत्र है, मनके हैं? मदालसा ने कहा, हे प्रभु! शिशु रूप में तो परमात्मा है, और वह जो नाना- नाना प्रकार के जो परमाणु हैं, कोई परमाणु वायु का है, कोई अग्नि का है, कोई परमाणु अपने में आपोमयी माना गया है। और कोई परमाणु पृथ्वी का है, वह तेजोमयी सूर्य है, अमृतमयी चन्द्रमा है। वह जो सूत्रोभा और अवकाशमयी अन्तरिक्ष माना गया है, उस सर्वत्र जो जितने मनके हैं, इन मनकों का जो सूत्र है, अपने गर्भस्थल में आत्मा है, आत्मा सूत्र बना हुआ है, वह शिशु के रूप में है। जब आत्मा का प्रवेश हुआ, तभी सभी देवता सर्वत्र यह मनके पिरोये जाने से एक माला बन गयी है और वह माला कैसी विचित्र बनी है कि मानव इतना स्थूल रूप बन जाता है। उसी में देखो, सूक्ष्म और कारण भी उसी में निहित हो जाते हैं। माता मदालसा ने कहा, हे भगवन्! हे मेरे पूज्यपाद! आप तो महान हैं, परन्तु देखो दर्शनों में जो अध्ययन किया है, वह दार्शनिक विचार यह कहता है कि माता के गर्भस्थल में आत्मा शिशु है और बाह्य जगत में ब्रह्माण्ड परमपिता परमात्मा शिशु के रूप में रत रहता है। इस ब्रह्माण्ड को जो धरण कर रहा है, नाना प्रकार की माला बना देता है, और वह माला संसार में पांच मनकों में है, पांच ही मनके कहलाते हैं संसार के और पांच ही मनके आत्मा के, सहित रहते हैं। वह पांचों मनके कौन से हैं? मानव के रूपों में तो पांच ज्ञानेन्द्रियां कहलाती हैं और

बाह्य जगत में वही पांचों मनके पंचमहाभूत कहलाते हैं। एक- एक रूप में यह पांच मनकों की माला कहलाती है। इस माला में से भिन्न- भिन्न प्रकार के मनकों का जन्म हो जाता है और वह परमाणु रूप में गूंथे जाते हैं। वही परमणु सूक्ष्म बन करके अन्तरिक्ष में गति करते रहते हैं।

तो विचार-विनिमय है क्या? वह जो गतियां होती रहती हैं, मानव जैसे सांस लेता है, यदि परमाणु नहीं होंगे वायुमण्डल में, तो सांस नहीं ले सकता, इस समय मानव मृत्यु को प्राप्त हो जाता है, मरण के तुल्य बन जाता है, और यदि यह परमाणु अपने जीवाणु रूप में नहीं रहेंगे, क्योंकि जीवनशक्ति इस प्रकृति के एक-एक परमाणु में निहित रहती है। जो वही जीवाणु के रूप में रत रह करके हम रे सांसों को गतियों में गति करने लगते हैं। यही वांग्मय वैज्ञानिकों के मध्य में आता रहा है, माता मदालसा ने जब बुद्धियुक्त दर्शन की चर्चाएं प्रकट कीं, तो ऋषि ने कहा, हे पुत्र! तुम्हें धन्य है, जो तुमने ब्रह्मचर्य आश्रम में पान किया है, वह तुम्हारा ज्ञान ज्यों का त्यों है उसकी आभा एक महानता में सदैव रत रही है। तो मुनिवरों! देखो माता मदालसा मौन हो गयीं। कहते हैं, हे देवी! तुम्हारा वाक् यथार्थ है। एक समय जब हम रा बाल्यकाल का समय था, हम ऋषि-मुनियों की सभा में विचार-विनिमय करते रहते हैं। ऋषि-मुनियों के जो विचार हैं, बड़े सार्थक और गम्भीर कहलाते हैं। एक-एक वाक् पर अनुसंधन और वैज्ञानिक और आध्यात्मिक रूपों से उसका निरूपण करते रहते हैं। माता मदालसा का और ऋषि, दोनों का सर्वत्र दिवस

इस प्रकार का विचार- विनिमय होता रहा है। कैसा विचार है, कैसी गम्भीर मनोवृत्तियां हैं? आत्मा के साथ में चित्त का मंडल होता है और चित्त के मंडल में भी संस्कार निहित रहते हैं, उसी काम से वह संसार में आता है। इसी प्रकार वह पंचमहाभूत अव्रतों में वह रत रहते हैं, तीनों गुण ऐसे, जैसे रथ के पहिए में अरे लगे रहते हैं, इस प्रकार रजोगुण, तमोगुण अरों के सदृश्य वह गति करता है। विचार-विनिमय क्या हैं? वेद का ऋषि कहता है कि परमपिता परमात्मा कितना महान निर्माणवेत्ता है, कैसा वह शिशु सबका सूत्र बना हुआ है और सूत्रों में सूत्रित हो रहा है। तो इसके उफपर हमें प्रायः विचार-विनिमय करना चाहिए, संस्कारों की उद्भूतता कितनी विचित्र रहती है।

हे मेरे पुत्रों! देखो, मुझे स्मरण आता रहता है, जब माता मदालसा अपने पूज्य पाद गुरुदेव से चर्चा कर रही थी तो जो आत्मा शरीर में विद्यमान है, गर्भाशय में वह समादिष्ट हो करके अपने मनस्तत्व, प्राणत्व की आभा को नियुक्त करके, वह उस आत्मा से चर्चा कर रही थी, आत्मा से वार्ता प्रकट करना चाहती है। वह कहती है, हे आत्मा! मेरे शरीर में, गर्भाशय में, तेरा प्रवेश हुआ है। मैं नहीं जानती, इसका मौलिक कारण क्या है, क्या संबन्ध् है, आत्मा तेरे से मेरा। मैं यह नहीं जान पाती। परन्तु देखो, आत्मब्रह्म वाचो वह उसके पश्चात वह और गम्भीर अध्ययन करती रहती और अध्ययन करती कहती है 'शुद्धम् ब्रह्म वाचो प्रहे लोकाम्'। हे आत्मा! तू तो शुद्ध है और बुद्ध है। तो वह आगे के लिए जब शुद्ध का प्रतीक हो गया, 'बुद्धं ब्रह्मा' तू

बुद्ध भी है, और अखण्ड रहने वाली है, तू निरंजन भी है। तो तू तीनों रूपों में रत रहने वाली है। मैं नहीं जान पाती, इसके पश्चात् भी तू नार्किक क्षेत्र में क्यों आ पहुंची है? जब यह कहती है 'नरवद् ब्रह्मः वाचम् ब्रह्म लोकाम्'। वेद का ऋषि यह कहता है कि आत्मा के लिए नार्किकता यही है कि परमाणुओं का सहयोग लेना है, परमाणुओं की उसे तो सूत्र बनना है। तो सूत्र को स्थूल व्याप्य-व्यापक, दोनों का समन्वय हो जाता है। माता मदालसा इस प्रकार अपना अन्वेषण और अनुसंधन करती रहती थीं, विचार-विनिमय करती रहती। एक समय प्रातःकालीन यह चिन्तन कर रही थी, तो कहीं से महर्षि सुकेलकाम सुकेलम् वाचकेतु महाराज भ्रमण करते हुए आ गये। राष्ट्रगृह में उनका प्रवेश हुआ, तो माता मदालसा ने ऋषि के चरणों को स्पर्श करके उन्हें आसन दिया। आइए भगवन् विराजिए! वह विराजमान हो गये। उन्होंने कहा- देवी! कहो अब तुम क्या चिन्तन कर रही हो? उन्होंने कहा- प्रभु! मैं शिशु के उफपर चिन्तन कर रही हूँ, क्योंकि शिशु का बाह्य जगत बना रही हूँ। अन्तर्जगत बना रही हूँ, कहीं बाह्यजगत उसका बनाना है। उन्हांने कहा, हे माताम् ब्रह्मः देवी! बाह्य जगत क्या है और अन्तर्जगत् क्या है? उन्हांने कहा कि अन्तर्जगत् तो मेरा गम्भीरता में एक चिन्तन रहता है और मनन करती रहती हूँ, उससे उस मेरे शिशु का देखो आन्तर्जगत् बनेगा और बाह्यजगत् के लिए मैं यह चाहती हूं कि यह जो संसार की मोह-ममता है, संसार का यह जो विडम्बनावाद है, या प्रपंचवाद है, इस प्रपंच से मेरा बाल्य उपरामता को प्राप्त हो जाए, जिससे वह

आत्मवेत्ता बन करके, ब्रह्मवेत्ता बन करके ब्रह्म की आभा में सदैव रत होता रहे और ब्रह्म में ही वार्ता प्रकट करता रहे।

उन्होंने कहा देवी! यह जो राष्ट्र है, यह कैसे महान बनेगा, क्योंकि राजा होना चाहिए तुम्हारे गर्भ से, तुम ब्रह्मवेत्ता चाहती हो? उन्होंने कहा कि राष्ट्रवेत्ता तो नार्किकवत् कहलाता है, क्योंकि दूसरों के उफपर जो मानव शासन करता है, वह जो शासन प्रवृत्ति है, वह एक नार्किकता का विचार है, क्योंकि वह सदैव इसी आभा में लगा रहता है कि मैं इसके उफपर कैसे अनुशासन करूं? यह राजा है, दूसरे राजा को विजय करके मैं कैसे अनुशासन करूं? प्रजा के उफपर मेरा कैसे आध्पित्य हो? तो उसमें रजोगुण की प्रतिभा को अपनाता है। परन्तु देखो, यह जो आत्मवेत्ता है, आत्मज्ञानी होता है। यह राष्ट्रवेत्ताओं से उफर्ध्वा में गति करता है। यह राजाओं को भी शिक्षा देता है। राजाओं को भी कहता है कि राजन्! तू सच्चरित्रता को अपना करके, तू याग के क्रियाकलाप में परिणत हो जा। माता मदालसा ने कहा, मैं यह चाहती हूं कि जो तत्वों के उफपर अन्वेषण करने वाला हो, अपने मानवीय जीवन को वह परमपिता परमात्मा की प्रतिभा से मिलान करने वाला हो, वह ज्ञान मानव के समीप होना चाहिए। वही यथार्थ में ज्ञान होता है। वही विवेकता में परिणत करा देता है जितना भी ज्ञान और विज्ञान है, वह आभा में रत करके आध्यात्मिकवाद में प्रवेश करता रहेगा।

ऋषि ने कहा कि देवी! यह तो यथार्थ है, परन्तु मैं यह जानना चाहता हूं कि तुम यह कहां से प्रेरणा लेती हो? कहां से तुम्हारे हृदय

में यह आकांक्षा जागरूक हुई है? क्योंकि यह तो राष्ट्रगृह है, राष्ट्र का अन्न भी दूषित होता है, राष्ट्र के अन्न के तुम ग्रहण करती हो, और अन्न से कहते हैं कि मन की उत्पत्ति है। जब मन की उत्पत्ति ऐसी मानी गयी है, तो यह विचारों का प्रादुर्भाव कहां से हुआ? तब माता मदालसा ने कहा कि हे ऋषिवर! तुम्हें यह प्रतीत होता है कि मैं उस अन्न का ग्रहण करती हूँ। मैं उस अन्न को पान करती हूँ, जिस अन्न से मेरी प्रवृत्ति उफंची बनी रहे, जिससे मेरी अन्तरात्मा में घृणात्मक विचार न आ जाएं। मैं सदैव उस अन्न को ग्रहण करती हूं, जिस अन्न पर देखो राष्ट्र का अध्किर नहीं होता। मानव का भी उस पर अध्किर नहीं होता। मैं उस अन्न को ग्रहण करती हूँ। मेरे हृदय की यह आकांक्षा रहती है कि मेरे गर्भ से ऐसे बाल्य का जन्म हो, जो राष्ट्रवेत्ताओं को शिक्षा देने वाला हो, ब्रह्मज्ञानी हो। ब्रह्मज्ञान किसे कहते हैं? जहां प्रत्येक इन्द्रियों का देखो विघटन अप्रताम् ब्रह्मः वह समष्टि और व्यष्टि में प्रवेश हो जाए। समष्टि और व्यष्टि का विचार-विनिमय करने वाला हो। मुझे कुछ ऐसा स्मरण है कि माता मदालसा इस प्रकार की ऋषि से जब वार्ता प्रगट कर रही थी, तो उन्होंने कहा, हे देवी! मैं जानना चाहता हूँ कि यह ब्रह्मज्ञान क्या है? ब्रह्मज्ञान किसे कहते हैं?

उन्होंने कहा कि ब्रह्मज्ञान उसे कहते हैं, जो मानव प्रत्येक इन्द्रियों के साकल्य को बना करके, रूप, रस और गन्ध्, शब्द, स्पर्श, इन सबको एकत्रित करता हुआ। यह उनमें दृष्टिपात करता है और प्रत्येक ज्ञानेन्द्रियों को इनमें दृष्टिपात करके इनका साकल्य बना करके और

जो अपने अन्तर्हृदय में जो ज्ञानरूपी अग्नि प्रदीप्त हो रही है, उसमें इन साकल्यों की जो आहुति देता है, स्वाहा कहता है, और स्वाहा कह करके आहुति देता है, वह मौन हो करके अपने अन्तरात्मा में याग कर रहा है। वह हमारे यहां ब्रह्मज्ञान के लिए, वह मोक्ष की पगडण्डी को ग्रहण करना चाहता है, वह एक-दूसरे को उफंचा बनाना चाहता है। पंचमहाभौतिकता के यह गुण कहलाते हैं, ज्ञान और विज्ञान में जितना भी वह विचरता है कि जितना भी ज्ञान है, संसार में विज्ञान है, इसे हम भौतिकवाद कहते हैं। वह भी पांच इन्द्रियों का ही पंचीकरण कहलाने वाला व्रत कहलाया जाता है। हे भगवन्! जब वैज्ञानिकजन अपने में यह अनुसंधन करता है कि मैं प्रकृति के इस ब्रह्माण्ड के सूत्रों को जानना चाहता हूँ, तो वह पांच सूत्रों में लग जाता है और पांच सूत्रों में जब सूत्रित होता है, तो पंचीकरण बनाता हुआ पांच प्रकार की प्रकृति की गति को जान लेता है। उस पर विज्ञान निहित हो जाता है, पंचमहाभूत उसी में निहित हो जाते हैं, पांच इन्द्रियां उसी में निहित हो जाती हैं। तो जो चित्त के मण्डल को दृष्टिपात करता हुआ यह विचारता है अरे यह आत्मा तो जागरूक भी नहीं है, जो हम जागरूक कहते हैं इसे यह कौन जागता है, यह मनम् ब्रह्माः यह आत्मा ही जागरूक रहता है। आत्मा का प्रकाश आया, नेत्र अपना क्रिया कलाप करना प्रारम्भ करने लगते हैं, नेत्र दृष्टिपात करने लगते हैं, वह 'सम्भूति ब्रह्म लोकाम् वाचो सम्भवा लोकाम् हिरण्यम् बृथा।' वेद की विदुषी ने उत्तर दिया, हे ऋषिवर! मैं जो 'ब्रह्म वाचो प्रहे कृताम् लोकाम् ब्रह्मा वसुसम्भवो लोकाम्' हे

भगवन्! वह जो जागरूक होने वाला कुटुम्ब का परिचय दे रहा है, राष्ट्र का परिचय दे रहा है, नाना पदार्थों का परिचय दे रहा है, नेत्रों से दृष्टिपात कर रहा है, मन की विकल्पता उसके सहित लगी हुई हैॠ तो वह परिचय देता हुआ उफर्ध्वा में गति करता है और उसके पश्चात् जब यह जागरूकता नहीं रहती, तो स्वप्नवत् रह जाता है। यह स्वप्नवत् हमारे चित्त के मण्डल में सूक्ष्म-सूक्ष्म अंकुर रहते हैं और अंकुरों को हम साकार रूप में भोगने लगते हैं। इन साकार रूपों के स्वप्नवत् के भी क्रियाकलाप को आत्मवेत्ता उन्हें नष्ट कर देता है, उन संस्कारों को उपजने नहीं दे रहा है। शरीरों में पत्नी नहीं होती, पति नहीं होते, पतियों का निर्माण हो जाता है। क्योंकि अंकुर रूप से संस्कार विद्यमान है। उसके संस्कार मानव के चित्त के मण्डल में निहित रहते हैं। राष्ट्र और नदियां और समुद्र नहीं होते। उसमें निर्माण होता रहता अंकुर रूप में उसमें विद्यमान है, अंकुरों के रूप से ही वह संस्कार अपने में क्रियाशील होते रहते हैं। वही तो संस्कार है, जिससे माता के गर्भ में प्रवेश करते हैं, वही संस्कार हैं, क्योंकि वह माता को जानते हैं, वह आत्मा के संस्कार और माता के संस्कार एक दूसरे को जानते हैं। दोनों के संस्कारों का जब साम्य होता है, तो पुत्र और पुत्रियों के रूप में उनका मिलन होता रहता है। उनके मिलन की प्रतिभा का जन्म होता रहता है। माता मदालसा ने कहा, जहां तक मेरा विचार है, जैसा मैं आचार्य कुल में अध्ययन करती थी, उनके आश्रम में प्रथम आभा में रत रही हूँ, द्वितीय श्रेणी में भी रही हूँ, क्योंकि मेरा ब्रह्मज्ञान अन्तर्हृदय में समाहित हो गया है। तो

वही आत्मा मेरे समीप आएंगी, क्योंकि जिन आत्मओं से मेरा किसी काल में समन्वय रहा है, संबन्ध् रहा है, वही आत्मा देखो ब्रह्मज्ञानी बन करके मेरे समीप आएगी। जैसे आचार्य कुल में ब्रह्मचारियों को उपदेश देता है, और कोई- कोई ब्रह्मचारी ऐसा संस्कारी होता है, जिस ब्रह्मचारी को आचार्य विशेषकर अपनी विद्या को प्रदान कर देता है, इसी प्रकार माता अपने पुत्र को अपने गर्भ में या बाह्य जगत में सर्वत्र अपना किया हुआ जो पुरुषार्थ है, उसका विचार-विनिमय करने वाले जो संस्कार हैं, उसे वह प्रदान कर देती है।

इसी प्रकार स्वप्न भी नहीं होना चाहिए। यह स्वप्न भी संस्कारों का समूह है और जब स्वप्नवत् भी नहीं रहता, तो यह मन, बुद्धि-चित्त-अहंकार यह अन्तःकरण कहलाता है, यह साम्य अवस्था में जब परिणत हो जाता है, यह मन प्रकृति का इसलिए सिद्ध होता है, इसीलिए यह जड़वत् सिद्ध होता है। स्वप्न में मन को कुछ भी भान नहीं होता, संसार जब यह सुषुप्ति में चला जाता है, तो सुषुप्ति में मन बुद्धि में, बुद्धि चित्त में, चित्त अहंकार में मन बुद्धि चित्त अहंकार बन करके यह अन्तःकरण बन गया। यह अपनी सौम्य अवस्था में विश्राम कर जाता है। परन्तु यह जो शरीर है, ऋषिवर! यह शरीर ज्यों का त्यां जीवित रहता है। वह जीवनसत्ता कौन है? तो वेद का मंत्र कहता है 'प्राणं मम् वृद्ध' आत्मा प्राण के साथ में सांस की गति को ज्यों का त्यां निहित बनाए रहता है। तो यह प्रकृति का जितना मण्डल है, वह समाप्त हो जाता है और मुनिवरो! देखो प्राण के साथ में जो आत्मा गमन करता है, अरे उसी को तो योगी जान करके

ब्रह्म की आभा में रत हो जाता है। वही ब्रह्मज्ञानी है, जो उस प्राणों को और आत्मा दोनों को जान करके वहां स्थिर हो जाता है और वहीं विभूति पाक में परिणत हो करके विभूतियों को जागरूक करने लगता है। तो विचार-विनिमय क्या? मन तो केवल देखो अग्रहा सम्भवा प्रकृति का इतना मण्डल है और इसमें ही चित्त का मण्डल निहित रहता है, वहीं संस्कार रहते हैं। तो मेरी इच्छा ऐसी है ऋषिवर कि मेरे गर्भ से बालक का जन्म हो और वह जन्म ब्रह्मः कृताम् लोकाम्, उसके द्वारा आवागमन का ऐसा ज्ञान हो, ऐसी मेरी उत्कृष्ट इच्छा है कि आवागमन के संस्कार चित्र मण्डल में न रहें तो मेरा जीवन सफल उस काल में होगा। तो माता मदालसा अपने में कितनी विदुषी, कितनी महानता की गति करती रहती थी। विचार-विनिमय क्या? यहां सन्तान ब्रह्मः यागाम लोकाम् यह पुत्र को जन्म देना भी एक याग कहलाया गया है। यह याग है, माता जितना पुरुषार्थ कर सकती है, कितना तपों में रत रह करके अपने जीवन को सफल बना सकती है।

तो आज का मेरा विचार यह क्या कह रहा है कि जैसे शिशु में चित्त का मण्डल, प्रकृति का मण्डल, प्रकृति का मण्डल भी समाप्त हो गया है, संसार का विभु भी समाप्त हो गया, केवल प्राणं ब्रह्मः आत्मा ही मुनिवरो! देखो जागरूक रह करके सांस की गति को गतिमान बनाये रहती है। इसी प्रकार यह जो ब्रह्माण्ड बाह्य जगत में दृष्टिपात आता है, इस सर्वत्र ब्रह्माण्ड का जो शिशु है, वह परमपिता परमात्मा कहलाता है और अन्तर्जगत का मानव के शरीर में जो

आत्मा है, शिशु में भी वह परमपिता परमात्मा शिशु की मानव सूत्रता उसमें भी हमें दृष्टिपाता आ रही है। तो यह कैसा अनुपम जगत है, कैसा अनुपम यह ज्ञान और विज्ञान हमारे यहां वैदिक ऋषियों ने उद्भूत किया है, जिसके उफपर ममत्व धरणा में यहां प्रत्येक आभा में मानव को अभ्युस्त रहना चाहिए। मैं तुम्हें विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ कि हम परमपिता परमात्मा के उस महान रूप को जानने का प्रयास करें, जो सूत्रों में सूत्रित हो रहा है। वैज्ञानिक परमाणुओं में जब एक सूत्र में परमाणु को परमाणु में पिरोया हुआ स्वीकार करते हैं, तो वहां सूत्र दृष्टिपात आता है। इसी प्रकार माता के गर्भस्थल से ले करके वहां शिशु परमाणुओं को पिरो करके वही बाल्य है, वही युवा है और वही वृद्धवत् हो करके वह परमाणु पुनः पृथक-पृथक हो जाता है। 'प्रमाणां' ब्रह्म लोकाम् हिरण्यम् वृथाः'। तो आज का हमारा वाक् यह कह रहा है कि हम परमपिता परमात्मा की आराध्ना करते हुए अपना गम्भीर चिन्तन करते हुए इस संसार सागर से पार हो जाएं। हमारे आने का उद्देश्य माता मदालसा ने अपने पुत्रों को यही कहा था, हे बाल्य! मेरा जीवन तब सपफल होगा जबकि तुम इस ब्रह्माण्ड में आध्यात्मिकवादी बनोगे और तुम आत्मा और ब्रह्म की आभा को निहित करने वाले हो। यह जो राष्ट्र है, यह तो दमन प्रवृत्ति ऋषि ने वर्णन की है और यह कहा कि दमन प्रवृत्ति में ज्ञान नहीं होता, उसमें अज्ञान होता है। उस ज्ञान को, उस विडम्बना को रजोगुणी ज्ञान को लाता है, जिससे एक मानव दूसरे के दमन की प्रवृत्तियों से मेरा अनुशासन बना रहे। अनुशासन यदि करना

है तो मानव को अपनी इन्द्रियों पर अनुशासन करना चाहिए, अनुशासन इन्द्रियों पर करोगे, तो परमपिता परमात्मा के राष्ट्र में पहुंचोगे और यदि मानव मानव पर दमन प्रवृत्ति आ जाएगी, तो नार्किक समाज बन करके इस संसार के रूपां में रत हो जाओगे।

आज का विचार-विनिमय क्या? मेरे पुत्रो देखो ब्रह्म मानव को अपने इन्द्रियों में संयम करना चाहिए। इन्द्रियों के उफपर जब मानव संयम करता है, उनका साकल्य उनके स्वरूप को जान करके ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है। जब यह मानवीय प्रवृत्ति बाह्य जगत में पहुंच जाती है। बाह्य जगत में भी परमात्मा को दृष्टिपात करो। तो वह मानव अपने में महान बन करके सागर से पार हो जाता है। यह है आज का वाक् मैं कोई विशेष चर्चा तुम्हें प्रगट करने नहीं आया हूँ। मैं कोई व्याख्याता भी नहीं हूँ। केवल सूक्ष्म सा मैं परिचय देने के लिए आया हूँ और वह परिचय क्या कि परमपिता परमात्मा को शिशु रूप में स्वीकार करते हुए, आत्मा को शिशु रूप में स्वीकार करते हुए उस शिशु प्रवृत्ति को बनाना चाहिए। इसीलिए ऋषि-मुनि मानव चंचलता को त्याग करके ज्ञान में प्रवेश हो करके मुनि प्रवृत्ति को धरणा करते रहे हैं। वही शिशु प्रवृत्ति होती है। 'अज्ञानाम् प्रवहे वृताम्' माता की लोरियों में पान जब तक करता है, तब तक वह शिशु रूप में रहता है, और जब मुनिवरो देखो बाह्य जगत में चला जाता है, तो माता की लोरियों से विच्छेद हो जाता है। यदि वह मुनि बनना चाहता है, जैसे माता की लोरियों में शिशु है, माता चुम्बन कर रही है, इसी प्रकार वह मानव ज्ञानी बन करके परमपिता परमात्मा की

गोद में चला जाए, तो बेटा वह परमात्मा को अपना सूत्र बना करके मुनि प्रवृत्ति में ज्ञान में रत हो करके इस सागर से पार हो सकता है। यह है बेटा आज का वाक्। अब मुझे समय मिलेगा तो मैं तुम्हें शेष चर्चाएं कल प्रगट करूंगा। आज का वाक् समाप्त, अब वेदों का पठन- पाठन। 20 नवम्बर, 1985, 10 बजे प्रातः कविनगर, गाजियाबाद